जय एकलिंग

[राष्ट्रीय, सामाजिक और पारिवारिक पृष्ठभूमि में आज के युग की समस्याओं से समन्वित, ऐतिहासिक उपन्यास]

परदेशी

अनुराग प्रकाशन, अजमेर

प्रकाशक
वि. स. मिश्र एम. ए.
अनुराग प्रकाशन
सुन्दर विलास, अजमेर

मूल्य
रुपए ८.००

प्रथम संस्करण
१९६६

मुद्रक
प्रतापसिंह लूणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस
ब्रह्मपुरी, अजमेर

जय एकलिंग

'यह एकलिंग का आसन है,
इस पर न किसी का शासन है,
राणा तू इसकी रक्षा कर
यह सिंहासन अभिमानी है !

'अच्छी बात है। फिर तो हम उन्हीं के साथ सभा में आएँगे। आज वे भी पहली बार महाराजेश्वर भगवान् एकलिंग का दरबार देखेंगे।'

तब तक राजकीय उच्चाधिकारियों, महाराणा के अंगरक्षकों सामन्तों और मन्त्रियों की स्वागत मण्डली से घिरा मेदिनीराय आ पहुँचा—

"घणी खम्मा अन्नदाता।" कहकर मेदिनीराय ने सिर झुकाकर हाथ बढ़ाकर महाराणा के चरण छूने का प्रयास किया, किन्तु उसके पूर्व ही महाराणा रायमल्ल ने उसे छाती से लगा लिया—

'आज हमारी पुण्यवती बहन की स्मृति फिर से सजीव हो गई। बिल्कुल माँ-जैसा ही चेहरा है… बहुत वर्षों बाद आए।" इतना कहते-कहते महाराणा की आँखें भर आईं। सामन्तों और मन्त्रियों ने सिर झुका लिए।

उद्घोषक ने घोषणा की—'पधारिए, सर्वजन भगवान् एकलिंग के राजदरबार के मुहूर्त का स्वागत करने पधारिए।"

सुनकर सब लोग राजदरबार की ओर चल दिए। सबके जाने पर, मेदिनीराय के साथ महाराणा ने भी प्रस्थान किया।

महाराणा रायमल्ल का—भगवान् एकलिंग के 'दीवान' का दरबार देखकर, मेदिनीराय देखता ही रह गया! शौर्य, शक्ति, ऐश्वर्य, वैभव, वीरता, त्याग, तप, तेज और तारुण्य का प्रखर प्रदर्शन वहाँ प्रस्तुत था।

महाराणा के प्रविष्ट होते ही चारणों ने अत्यन्त शौर्य-सम्पन्न—वीरों के भुज-दण्डों को फड़कानेवाले गम्भीर किन्तु मधुर स्वर में डिंगल के दोहों और सोरठों का पाठ प्रारम्भ किया।

पृष्ठभूमि में कमनीय, कान्त कंठ से अत्यन्त रूपवती गायिकाएँ संस्कृत के गीतों का गान कर रही थीं। वाद्य-यन्त्रों से अत्यन्त मन्द स्वर उठ रहा था और इन सब के बीच वीरों की तलवारें सुशोभित थीं और मर्दों की मूँछें चमक रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था, मानो

नर सिंहों का मेला लगा है अथवा वनराजों की महफिल है ! मेवाड़ के अत्यन्त मूल्यवान् मणिमुक्ताओं, रत्नों और हीरों से खचित स्वर्ण सिंहासन पर राजमुकुट धारण किए महाराणा रायमल्ल विराजमान था। यह सिंहासन व्यक्ति रायमल्ल का नहीं, मेवाड़ के महाराणाओं का नहीं भगवान् एकलिंग का आसन था। अत महाराणा एक ओर हटकर बैठा था बुद्धिमान् महामन्त्री जिस प्रकार अपने स्वामी नरेन्द्र के आसन पर, आवश्यकता पड़ने पर बैठ कर, राजकाज सँभालता है उसी प्रकार एकलिंग का महामन्त्री या दीवान—महाराणा रायमल्ल सिंहासन पर सुशोभित था। उसके एक हाथ में दुर्गा चण्डी की दी हुई अति कराल कालमुखी तलवार थी, जो अपनी अलौकिक छटा छिटका रही थी।

राणा की आयु कठिनाई से तीस वर्ष की होगी, किन्तु उसके शरीर पर पचास से अधिक घाव विद्यमान थे।

मेदिनीराय भी अपने विशेष आसन पर आसीन था। वह ध्यान से इस देवसभा के सदस्यों और सूरमाओं को देख रहा था। एक सौ आठ प्रधान सामन्त थे, इक्कीस मन्त्री थे, अन्य पण्डितों की मण्डली के प्रकाण्ड पण्डित थे। राजकवि चित्रकार और कलाकार थे। राजगायिका राजनर्तकी और अन्य नर्तकियाँ थीं। सबमें सम्माननीय महाराणा के संग रणांगणा में रहने वाले राजचारण थे। राजपुरोहित थे। राजदूत थे। देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों के प्रतिनिधि और दूत थे। बन्दी म्लेच्छ, बन्दी यवन बन्दी फिरङ्गी और बन्दी राजेन्द्र थे। अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण जन थे।

एक ही वार में मदमत्त गजराज का शुंड काटकर गिरा देनेवाला देवगढ़ का राजकुमार था।

महाराणा का छोटा भाई सूरजमल था। यही प्रणवीर देवलिया—प्रतापगढ़ के भावी शासकों का पूर्वज, महाप्रतापी सूयमल्ल था। यह अकेला ही एक सहस्र सूरमाओं को भगा देता था। उनकी चलती तलवारों के बीच में अपने घोड़े को दौड़ाता निकल सकता था। यह धीर वीर, गम्भीर संयमी और चरित्रवान् था। मेवाड़ की सतत्

रक्षा और उसके निमित्त अपने प्राणों का विसर्जन ही इसका स्वप्न था। व्याघ्र की सवारी करनेवाला इसका कुल-दीपक—बाप रावत भी था जो बाद में 'रावल बापसिंह' के नाम से इतिहासों में अमर हो गया।

बापसिंह की शक्ति से आतंकित म्लेच्छों में दल-बाप्स सबके से पहले ही पलायन का पथ पकड़ते थे।

मेवाड़ की सेना के 'हरावल' में रहने का महान् अधिकारी सलुम्बर का महेन्द्र था। वह अर्जुन सा वीर और कर्ण-सा दानी था। उसका दान म्लेच्छों को भी प्रभावित कर चुका था।

झालाओं का पूर्वज रामसिंह झाला था। वह अपने त्याग के लिए प्रसिद्ध था। महाबली तखसिंह था। प्रचण्ड धनुधर धर्मसिंह था। तलवार का धनी अहारसिंह था।

सुन्दरियों का परम उपासक परन्तु समरांगण का सरल पुजारी प्रतापसिंह था। एक हाथ में यवन प्रिया की पाती और दूसरे में दुधारी तलवार लेकर झूमने वाला कमरसिंह था। शब्दवेधी बाण चलाने में निपुण रूपेन्द्रसिंह था। जिसकी भुजाएं विशाल थीं और हाथों की उँगलियाँ घुटनों से नीचे पहुंचती थीं। वह दस-हाथ लम्बा भाला चलाकर शोणित-सागर भर भर कर चण्डी को रिझाने में तल्लीन रहनेवाला दुर्गसिंह भाग्यवान था।

केसरिया बाना पहनकर अनेकबार म्लेच्छ-दलों को कमल-पत्र की तरह चीर देने वाला चामुण्डराय था।

अपनी विविध मृगयाओं से शत्रुसेना के गयन्द और अश्वों को भ्रमित कर देने वाला मृगपति माणिकचन्द्र गाथा था।

इनके अतिरिक्त नीमसिंह वीरसिंह, पहाड़सिंह भुजबलसिंह विक्रमसिंह, सूर्यसिंह, रूपसिंह अमरसिंह, रामसिंह रघुराजसिंह तवरसिंह और नरवरसिंह—अन्य सेनानायक और दुर्गपाल थे। राजपूतों की सभी शाखाओं उपशाखाओं और उपजातियों के नेता अग्रणी और नायक थे।

चौहानों का विख्यात वीर चरणसिंह था। राठौरों का राजदंड

रक्षक रणवीरसिंह था। कछवाहों का व्यूह विशारद सुरजनसिंह था। हाड़ाओं का हठी हिम्मतसिंह था। परमारों का प्रसरसिंह था।

सबको, महाराजकुमार मेदिनीराय ने एक-एक कर देखा। ज्यों-ज्यों देखता गया, उसका मन प्रसन्न हुआ, चेहरा चमकने लगा और भुजाएँ फड़कने लगीं, किन्तु एक कोने में एक तरुण को देखकर उसकी आँखें वहीं टिकी रह गईं। अनिमेष दृष्टि से उसने उस वीर वेशधारी को देखा।

तभी राणा ने आदेश दिया—'महामन्त्रीजी कल हमने जिन कविराज को मिलने का समय दिया था, उन्हें अवसर दिया जाए। तत्पश्चात् राजकार्य प्रारम्भ हो।'

'जो आज्ञा अन्नदाता!' कहकर, महामन्त्री ने कांठल निवासी कविराजा को बुलाया। कविराजा के स्वागत के लिए, स्वयं महाराणा अपने सिंहासन से उठ खड़े हुए। तुरन्त सर्व सामन्त, मन्त्री और शासक-वर्ग खड़ा हो गया। इस अनपेक्षित, अपूर्व सत्कार से कवि का मन प्रसन्न हुआ और अपने में मस्त, वह गर्जनमय स्वर से कवित्त सुनाने लगा।

सुनकर शान्त सभा, दरबार अनायास पुकार उठा—"साधु! साधु! धन्य! धन्य!! वाह! वाह!!

मेदिनीराय भी तन्मयतापूर्वक सुन रहा था। उसका रोम रोम हिंदू-सूर्य महाराणा की कीर्ति-कथा, सुनकर प्रसन्न था।

महाराणा सुनकर प्रसन्न हुए। तनिक मुसकरा कर उन्होंने महामन्त्री की ओर देखा— कोटि मुद्रा—पसाव और पैरों में पहनने को सोना, राजकीय सम्मान।

इस पर कविराज ने आशीर्वाद के साथ दानवीर सम्राट को दोहे में धन्यवाद दिया।

इसी समय एक वीर सैनिक दरबार में उपस्थित हुआ और आज्ञा पाकर उसने अपने पास के राजकीय पत्र सम्राट की सेवा में प्रस्तुत किए।

तदनन्तर राजनर्तकी मागधी अपने नृत्य का प्रदर्शन करने लगी। उसके सौरभ-सम्पन्न सौन्दर्य और रसवत उल्लासमय लास्य-नर्तन को देख-देखकर दिन रात भालों, बर्छियों, कटारों, शमशीरों तलवारों और तीरों के बीच में रहने वाले वीरों के नयन-मन आनन्द से खिल उठे। सुमन्द संगीत सुमन्द गायन, सुमन्द वादन और सुमन्द नर्तन ने वातावरण को अपनी कला से खिला दिया।

नृत्य और संगीत के विसर्जन पर राज-परिषद् के सदस्य कुछ कहना चाहते थे, अतः उन्हें अवसर दिया गया। सब ने एक स्वर से आन्तरिक एकता प्रजा का सुख-सन्तोष, सेना में अनुशासन, बफादारी और साधन सचयन पर जोर दिया।

वृद्ध पण्डितराज शंकरशास्त्री ने संगठन और राष्ट्रीय एकता की वृद्धि करने और फूट फैलाने वाले तत्त्वों का अन्त करने का आग्रह किया।

पण्डितराज शंकरशास्त्री ने अत्यन्त भावार्द्र वाणी में कहा—

'सम्राट एवं सम्यजन! भारत का इतिहास फूट के दुष्परिणाम और सामाजिक अनेकता एवं व्यक्ति की स्वतन्त्रता की ओट में व्यक्ति की स्वार्थपरता और श्रेष्ठियों के अभिशापण के दुष्परिणाम आज भी भोग रहा है। आप सवजन जानते हैं कि कन्नौज का जयचन्द राठौर हमारे समाज में आज भी एक-न-एक लोभी और कुटिल व्यक्ति के रूप में जीवित है। देश के इतिहास में, अतीत और वर्तमान में इन विभीषणों की कमी नहीं है। कन्नौज के जयचन्द राठौर, काश्मीर के राजा चक्रदेव, मालवा के वर्मा, गुजरात के माधव, बंग के देवपाल देवगिरि के देवपाल, कर्नाटक के बल्लभदेव, मदुरा के सुन्दरपण्ड्य, जालौर के महाराजा सातल और जैसलमेर के मोकल भट्टी जैसे कायर देशद्रोहियों और कुलकलंक कपूतों ने इस स्वर्ग को नरक बनाने का प्रयास किया है—चाँदी के चंद चमकदार टुकड़ों के लोभ में पड़कर माता का चीर खींचा है। अन्त में निवेदन करूँगा कि पार्षद वैरी के चारोओर मित्र के रूप में [illegible] से ।

उस पल राज-दरबार का भव्य भवन बाहर के कोलाहल से भर गया। बाहर राज पथ पर अति विकट एक स्वर जैसे चीत्कार कर रहा था—

"टूटेगा · टूटेगा ! सोमनाथ फिर टूटेगा ! महाकाल के मन्दिर पर फिर प्रहार होगा। गौतमनाथ का भग्न लिंग इस सत्य का साक्षी है कि राजपूत ने अपनी माँ के दूध को भुला दिया है। राजपूत सोया है।" जागो, जागो, आर्य ललनाओ, मैं तुम्हें जगाने आया हूँ, जागो, जागो, यह जानकर कि म्लेच्छों की दासी होने से विधवा होना अच्छा है" जागो जागो तुर्कों का गुलाम होने से रणभूमि में खेत रहना अच्छा है। सोमनाथ के मन्दिर फिर टूटेंगे। गौतमनाथ के महालिंग पर पुन प्रहार होगा।"

राजसभा में सन्नाटा छागया। स्वर अब भी आ रहा था —

"तुम मुझे मुड दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा ! तुम मुझे लहू दो, मैं तुम्हें मुक्ति दूंगा। जागो, जागो, म्लेच्छ-यवन आ रहे हैं। घरो में आग लगाने के लिए, सतियो का अपमान करने के लिए, फसलो को जलाने के लिए, गौ-माता का भक्षण करने के लिए, म्लेच्छ आ रहे हैं। टूटेगा, सोमनाथ फिर टूटेगा। वीर एक बार मरता है, कायर रोज-रोज मरता है। जागो, जागो मैं भैरव के प्याले की भग लाया हूँ। अपनी बेटियो के लिए जौहर का अग लाया हूँ। मैं केसरिया रग लाया हूँ। जागो, जागो, मैं जलता हुआ जग लाया हूँ। है कोई चित्तौड मे माई का लाल जो एकलिंग का वरदान लेना चाहता है ? मृत्यु सुन्दरी का वरण करना चाहता है ? जागो, जागो, कि फिर भगवान् भूतनाथ का डमरू बजे। चण्डी फाग खेले। जागो कि भवानी का कोप जागे। फिर से महारुद्र हुकार भरे और भू-मण्डल में भूचाल आए ! ", उद्घोष करता कापालिक सभा-भवन में चला आया। किन्तु उसके स्वर में तनिक भी परिवर्तन नही आया—

'जागो, जागो अन्यथा मैं कहता हूँ"—और कापालिक ने अपना चिमटा ऊँचा उठाया—"सोमनाथ फिर टूटेगा, गौतमनाथ फिर टूटेगा और एकलिंग भी टूटेगा ··"

तदनन्तर राजनर्तकी मागधी अपने नृत्य का प्रदर्शन करने लगी। उसके सौरभ-सम्पन्न सौंदर्य और रसवन्त उल्लासमय लास-नर्तन को देख-देखकर दिन-रात भालों, बर्छियों, कटारों, शमशीरों, तलवारों और तीरों के बीच में रहने वाले वीरों के नयन-मन आनन्द से खिल उठे। सुमन्द संगीत सुमन्द गायन, सुमन्द वादन और सुमन्द नर्तन ने वातावरण को अपनी कला से खिला दिया।

नृत्य और संगीत के विसर्जन पर राज-परिषद् के सदस्य कुछ कहना चाहते थे, अतः उन्हें अवसर दिया गया। सब ने एक स्वर से आन्तरिक एकता, प्रजा को सुख-सन्तोष, सेना में अनुशासन, वफादारी और साधन-संचयन पर जोर दिया।

वृद्ध पंडितराज शंकरशास्त्री ने संगठन और राष्ट्रीय एकता की वृद्धि करने और फूट फैलाने वाले तत्त्वों का अन्त करने का आग्रह किया।

पंडितराज शंकरशास्त्री ने अत्यन्त भावार्द्र वाणी में कहा—

"सम्राट् एवं सभ्यजन ! भारत का इतिहास फूट के दुष्परिणाम और सामाजिक अनैक्यता एवं व्यक्ति की स्वतन्त्रता की ओट में व्यक्ति की स्वार्थपरता और येप्टियों के अभिक्षेपण के दुष्परिणाम आज भी भोग रहा है। आप सर्वजन जानते हैं कि कन्नौज का जयचन्द राठौर हमारे समाज में आज भी एक-न-एक लोभी और कुटिल व्यक्ति के रूप में जीवित है। देश के इतिहास में, अतीत और वर्तमान में इन विभीषणों की कमी नहीं है। कन्नौज के जयचन्द राठौर, काश्मीर के राजा चक्रदेव, मालवा के वर्मा, गुजरात के माधव, बंग के वेणुपाल, देवगिरि के देवपाल, कर्नाटक के वल्लभदेव, मदुरा के सुन्दरपण्ड्य, जालौर के महाराजा सातल और जैसलमेर के मोवल भट्टी जैसे कायर देशद्रोहियों और कुलकलंक कपूतों ने इस स्वर्ग को नरक बनाने का प्रयास किया है—चाँदी के चंद चमकदार टुकड़ों के लोभ में पड़कर माता का चीर बेचा है। अन्त में निवेदन करूँगा कि पार्श्व वैरी के चारोंओर मित्र के रूप में विश्वासघातियों से सावधान रहें।"

उस पल राज-दरबार का भव्य भवन बाहर के कोलाहल से भर गया। बाहर राज-पथ पर अति विकट एक स्वर जैसे चीत्कार कर रहा था—

"टूटेगा 'टूटेगा ! सोमनाथ फिर टूटेगा ! महाकाल के मन्दिर पर फिर प्रहार होगा। गौतमनाथ का भग्न लिंग इस सत्य का साक्षी है कि राजपूत ने अपनी माँ के दूध को भुला दिया है। राजपूत सोया है। ' जागो, जागो, आर्य ललनाओ, मैं तुम्हे जगाने आया हूँ, जागो, जागो, यह जानकर कि म्लेच्छो की दासी होने से विधवा होना अच्छा है जागो जागो तुर्कों का गुलाम होने से रणभूमि मे खेत रहना अच्छा है। सोमनाथ के मन्दिर फिर टूटेंगे। गौतमनाथ के महालिंग पर पुन प्रहार होगा।"

राजसभा में सन्नाटा छागया। स्वर अब भी आ रहा था—

"तुम मुझे मुड दो, मैं तुम्हे आजादी दूंगा ! तुम मुझे लहू दो, मैं तुम्हे मुक्ति दूंगा। जागो, जागो, म्लेच्छ-यवन आ रहे हैं। घरो में आग लगाने के लिए, सतियो का अपमान करने के लिए, फसलो को जलाने के लिए, गौ-माता का भक्षण करने के लिए, म्लेच्छ आ रहे हैं। टूटेगा, सोमनाथ फिर टूटेगा। वीर एक बार मरता है, कायर रोज रोज मरता है। जागो, जागो मैं भैरव के प्याले की भग लाया हूँ। अपनी बेटियो के लिए जौहर का अग लाया हूँ। मैं केसरिया रग लाया हूँ। जागो, जागो, मैं जलता हुआ जग लाया हूँ। है कोई चित्तौड मे माई का लाल जो एकलिंग का वरदान लेना चाहता है? मृत्यु सुन्दरी का वरण करना चाहता है? जागो, जागो, कि फिर भगवान् भूतनाथ का डमरू बजे। चण्डी फाग खेले। जागो कि भवानी का कोप जागे। फिर से महारुद्र हुकार भरे और भू-मण्डल में भूचाल आए ! ", उद्घोष करता कापालिक सभा-भवन में चला आया। किन्तु उसके स्वर में तनिक भी परिवर्तन नही आया—

'जागो, जागो अन्यथा मैं कहता हूँ"—और कापालिक ने अपना चिमटा ऊँचा उठाया—"सोमनाथ फिर टूटेगा, गौतमनाथ फिर टूटेगा और एकलिंग भी टूटेगा···"

इस पर हरावल का अधिकारी सरदार सलुम्बर महासामन्त रोषपूर्वक उछलकर खड़ा हो गया—

"सावधान ! अतिथि सावधान ! सावधान कापालिक ! सावधान ! अब भी नरकेसरी 'दीवानजी' की तलवार म्यान से बाहर है। सावधान, अब भी क्षत्राणी के लोचनों में जौहर के धधकते अंगारों की परछाइयाँ हैं।"

प्रथम रणभेरी-घोष के अधिकारी चूंडावत ने दहाड़ कर कहा—

"सावधान, अतिथि देवो भव, सावधान ! यह एकलिंग का आसन है। सावधान ! आज भी महीमहेंद्र, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर एकलिंग के दीवान महाराणाजी की तलवार से दिशाएँ डोलती हैं। घोर पवन काँपते हैं। सावधान, आज भी म्लेच्छ-वधुएँ अपने स्वामी की सेजों के पास बैठकर 'कलमा' पढ़ती हैं। सावधान, अब भी म्लेच्छ अपनी कब्रों में अपने घावों की पीर पर बिलख रहे हैं।"

कापालिक को देखकर, महाराणा उठे और तनिक झुककर, हाथ जोड़कर कहा—

"जय एकलिंग।"

कापालिक ने अति प्रचण्ड, उद्दण्ड और विकराल स्वर में कहा—

"जय महाकाल ! जय एकलिंग !!"

दोनों एक दूसरे को देखते रह गए।

मेदिनीराय ने देखा, वीर वेषधारी तरुण कापालिक को देखकर प्रसन्न है।

"कापालिक गुरुदेव, हमारे पास आपका सन्देश आज ही पहुँचा है कि गौतमनाथ के पवित्र लिंग पर म्लेच्छों ने गदा से प्रहार किया है। निश्चय जानिए, तब से हमारे समस्त शरीर में विपुल वह्नि-शिखाएँ धू धू जल रही हैं। अब हमने व्रत लिया है कि जबतक गौतमनाथ की पवित्र तीर्थभूमि में म्लेच्छों का मान-मर्दन नहीं होगा और म्लेच्छों के रक्त से माँ-चण्डी के काले केशों का अभिषेक नहीं होगा, हम अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे।"

सभा स्तब्ध थी। उस स्तब्धता को भङ्ग करते हुए मेदिनीराय ने सिर झुकाकर प्रार्थना की—

"अतिथि और भानजे के नाते मेरा अधिकार इस राज-समाज मे सुरक्षित है। अत मैं याचना करता हूँ कि गौतमनाथ के म्लेच्छो का दमन करने का अवसर, पहले मुझे दिया जाए। अन्नदाता, मैं इसी क्षण सेना सहित मालवा की ओर प्रयाण करूँगा।" फिर पण्डितराज शङ्करशास्त्री की ओर देखकर, दोनो हाथ जोडकर, नमनकर राजकुमार मेदिनीराव ने आगे कहा—

'देव, वीरो का उत्साहयोग ही उनका शकुन है और मृत्यु-पर्यंत मेरा धर्म रहेगा कि कल सध्या के पूर्व ही गौतमनाथ की सीमा से म्लेच्छो को निकालकर बाहरकर दूँगा। इतना ही नही, एक ही मास की अवधि मे समस्त मालवा का राजमुकुट भगवान् एकलिंग के दीवान के श्रीचरणो मे रख दूँगा। देव, मुझे आज्ञा मिले!'

"मेदिनी, यदि तुम्हारी इच्छा है, तो निर्भय प्रयाण करो। वत्स, विजय तुम्हारा पथ निहार रही है।"—महाराणा ने शान्त वाणी मे कहा—

'जय एकलिंग! जय भारत!!"

"जय एकलिंग! जय भारत!! सबके कण्ठ स जय निनाद गूजा!

: २ :

एक ही अवधि म शरद के दो भिन्न रूप थे।

पहल जब वह आई थी देह तन्वगी थी और दृष्टि मे कौतहल था। जैसे ावपरिणीता नवोढा थी! कदम धीमे उठ रहे थे कि गति की दिशा और गन्तव्य निश्चित था।

इसी अवधि मे ऋतु परिवर्तन यो हुआ कि न हुआ। जसे नवोढा वह सिमन्तनी बनी है और लौटकर अब नैहर जानेवाली है। क्षिनिजा के भार स छोर तक फैले उसके लोचनो म अनन्त तृप्ति का आस्वाद भरा है और प्रथम गभ के भार स बोझिल पलकें उनींदी होकर, अद्ध मुकुलित प्रसूनपट सी प्रतीत होती हैं!

शरद सुहागन का अब अङ्ग अङ्ग भरा है—

दृष्टि का कौतुहल अब अनुभूति और परिचय का भाव बन गया है! नवोढा वाला तरुणी बन गई है और उसकी चपलता हार्दिक आह्लाद बन गई है। आह्लाद यह सेज की ऊष्मा बन गया है और धीमे धीमे हृदय के रस म सिमट कर पयोधरा का अमृतबिंदु बनता जा रहा है!

लेकिन अजानी दिशाओं से इस अमृत को झपटने के लिए हिंसा और लोभ के दानव अपन पज फैलाए चले आ रहे हैं।

युद्ध का रक्त-रंजित, खौफनाक, खूनी वातावरण !

"युद्ध, युद्ध और युद्ध !" नगरश्रेष्ठि ने सप्ततलप्रासाद में प्रविष्ट होते हुए, अपनी पत्नी मीनाक्षी की ओर देखते हुए कहा—

"कुछ सुना तुमने ?" उसने उतावले पैरों सेठानी की ओर बढ़ते हुए, अपनी बात को आगे बढ़ाया—"पारसिक देश और गांधार से, आज कुछ व्यापारी उज्जयिनी आए हैं। सूखे मेवे और फलों के अग्रिम सौदे पर वे जोर दे रहे हैं।"

सुनकर सेठानी मीनाक्षीदेवी ने श्रेष्ठि की ओर अपनी बड़ी-बड़ी पलकें उठाईं।

वल्लभी सेठानी के पैरों पर महावर लगा रही थी। आज मीनाक्षीदेवी ने फूलों के गजरों से सिंगार किया था। उसने अपने सप्तांगों में परागवान् पुष्प धारण किये थे। गोल-गोल सुचिक्कन जूड़े वारुणी की लहर-सी वेणियों में गोरे-गोरे कानों में, सधर हाथों में ललित लंक में, खुली, धुली बाँहों में और कमनीय कलाइयों में ! इससे, उसका सौन्दर्य सौगुना बढ़ गया था।

एक तो केरल के सर्वसत्तासम्पन्न परिवार की पुत्री, दूसरे महामालव की महानगरी उज्जयिनी के नगरश्रेष्ठि की धर्मपत्नी कि जिसके श्वसुरालय के अनन्त वैभव की धूम, न केवल सारे मालवा, में वरन् समस्त गुजरात और खानदेश में, मची हुई थी। तीसरे मालवा और मेदपाट राज-परिवारों से निकट सम्पर्क और राजभी-रनिवासों में अरोक प्रवेश। चौथे आबूजी और ऋषभदेव के जैन-सन्तों और नेताओं के धर्मक्षेत्र में पैठ—यह पैठ श्रेष्ठि के धर्म-बल के कारण थी, अथवा धन-बल के—नहीं कहा जा सकता ! फिर भी धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति और प्रभावमाला के फलस्वरूप देह और आत्मा के सुख-भोग, उन्हें उपलब्ध थे। और गजगामिनी मीनाक्षीदेवी आज गंधित गजरों के बीच में लाल फूल की तरह खिल रही थी। उसकी सज्जा देख कर श्रेष्ठि अपनी बात भूल गया !

मीनाक्षीदेवी ने अपने घने-घने ऐड़ीचुम्बी कुन्तलों के जूड़े में

श्वेत कुन्द-कलियों से गजरे सजाए थे। उसकी गुर्जर दासी निपुणा इस कला में सर्वथा निपुण थी। पहले वह गुजरात के सुलतान की खास बेगम जहाँनारा की केशराशि के शृंगार के लिए नियुक्त थी। और कई इतिहासकारों और तवारीखनवीसों ने गुजराती बेगम जहाँनारा की काली-काली जुल्फों के लम्बे-लम्बे बयान लिखे हैं। कहते हैं, गुजरात के सुलतान ने एक दिन नौरोज के बाज़ार में चन्दनवन की चुलबुली चिड़िया-सी चौदह वर्षीया जहाँनारा को देखा था। और सुलतान की पहली नज़र जहाँनारा के काकुलों पर गई थी, फिर तो नज़र वह वहाँ से लौट कर नहीं आई! फिर आई—अहमदाबाद के शाही हरम में जहाँनारा—सुलतान की चहेती बेगम बनकर! इसके बाद 'बेगम के बाल' तवारीखों के पन्नों तक फैल गए! निपुणा जहाँनारा बेगम के केशों में मोती गूँथनी थी। उसने इस तरह जहाँनारा का सिंगार किया और इतनी तरह किया, कि बादशाह बालों की तारीफ भूलकर, उन्हें मोतियों से सजाने वाले खूबसूरत हाथों की तारीफ करने लगा। इससे जहाँनारा के दिल में पत्ता खटका और उसने निपुणा को चुपचाप निकाल दिया? निपुणा तो जहाँनारा बेगम के मोती महल से चली आई लेकिन बेगम के बाल, फिर बाँदी फिर वैसे न बना सकी, जैसे, निपुणा बनाती थी।

भाग्य की लीक पर चलती-चलती निपुणा अवन्ती में आ पहुँची और उसकी कला समय पाकर, उज्जयिनी की श्रेष्ठि-कन्या का सिंगार बन गई। निपुणा की कला के योग से (बेटी) माधुरी का निखरा हुआ रूप देखकर (माँ) मीनाक्षीदेवी ने निपुणा को अपनी सेवा में बुला लिया। यहाँ, यद्यपि निपुणा तन-मन के श्रम से सेठानी का सिंगार करती थी, फिर भी सेठानी यही कहती रहती थी "निपू, तूने केश उतने अच्छे नहीं सजाए, जितने माधुरीदेवी के!"

उत्तर में निपुणा आखिर कैसे कह देती कि माधुरीदेवी खिलता हुआ चन्द्रमा है और मीनाक्षीदेवी ढलती हुई चाँदनी रात है!

सेठानी ने जब श्रेष्ठि की बात पर ध्यान न दिया तो, श्रेष्ठि अपनी

बात बड़बड़ाता हुआ अपनी प्रथम पत्नी के पुत्र रत्नचन्द्र की पत्नी दीपावली के कक्ष की ओर गया।

रत्नचन्द्र की माता चन्द्रावली का देहान्त हो चुका था। उसके परलोक-गमन पर ही श्रेष्ठि ने मीनाक्षीदेवी से विवाह किया था। रत्नचन्द्र अपना नौका-दल लेकर मलयदेश गया था। जिस साल उसका विवाह हुआ था, उसी साल सागर-यात्रा का अनिवार्य कार्यक्रम उसे अपने हाथ में लेना पड़ा। नवविवाहिता बाला पत्नी को सूनी सेज पर अकेली बिलखती छोड़कर रत्नचन्द्र उत्तुंग मस्तूलधारी अपने जहाजों पर सवार होकर पूर्व दिशा की ओर अभियान कर चुका था।

दीपावली अरुणोदय (आज का अग्नोद) के धनपति, नगर निगम नेता शाहरमल्ल की पौत्री थी। दूज शशि की पतली किरण-सा उसका दर्शन था। किन्तु दीपावली क्षीण शशिकिरण-सी नहीं थी शान्त-शीतल। पतली किरण-सी थी। अग्निधारवत् थी। अपार और उद्दाम था उसका देह-वैभव। मुँहजोर अश्व के समान, उसका अविनीत यौवन, वरगाथा की सौ सौ शृंगलाओं को एक झटके में तोड़कर धरती-आकाश को खूँद रहा था। चार चार साल से उसकी सेज पर वियोग की नागिन बसेरा किए बैठी थी। चार-चार साल से यौवन का दुर्दम्य तुरङ्ग वासनाओं और कल्पनाओं के मैदानों को बेतहाशा पार कर रहा था और उसे थाम कर थपथपाकर उस पर आरोहण करने वाला नरनायक कहीं—दूर था। चार चार साल में कंचुकी के बन्द खुलकर बँध थे और बँधे कर खुले रह गए थे पर वातायन में प्रात चन्द्र के साथ, रत्नचन्द्र नहीं आया।

रत्नचन्द्र नहीं आया और दीपावली ज्योतिषी-बहानों से अपना भाग्य पूछने लगी। हस्तरेखाएँ दिखाने लगी और बाईं फड़कने का शकुन पूछने के लिए दूर-दूर तक दासियों को भेजने लगी।

और सप्ततल प्रासाद के प्रांगण में, जहाँ आए दिन हिमालय की जड़ी बूटी बचनेवाले आते, मदारी और नट आते। प्रस्तर जाली की

श्वेत कुन्द-कलियों से गजरे सजाए थे। उसकी गुर्जर दासी निपुणा *इस कला में सर्वथा निपुण थी। पहले वह गुजरात के सुलतान की* खास बेगम जहाँनारा की केशराशि के शृंगार के लिए नियुक्त थी। और कई इतिहासकारों और सवारीखनवीसों ने गुजराती बेगम जहाँनारा की काली-काली जुल्फों के लम्बे-लम्बे बयान लिखे हैं। कहते हैं, गुजरात के सुलतान ने एक दिन नौरोज के बाजार में चन्दनवन की चुलबुली चिड़िया-सी चौदह वर्षीया जहाँनारा को देखा था। और सुलतान की पहली नजर जहाँनारा के काकुलों पर गई थी, फिर तो नजर वह वहाँ से लौट कर नहीं आई! फिर आई—अहमदाबाद के शाही हरम में जहाँनारा—सुलतान की चहेती बेगम बनकर! इसके बाद 'बेगम के बाल' तवारीखों के पन्नों तक फैल गए! निपुणा जहाँनारा बेगम के केशों में मोती गूँथती थी। उसने इस तरह जहाँनारा का सिंगार किया और इतनी तरह किया, कि बादशाह बालों की तारीफ भूलकर, उन्हें मोतियों से सजाने वाले खूबसूरत हाथों की तारीफ करने लगा। इससे जहाँनारा के दिल में पत्ता खटका और उसने निपुणा का चुपचाप निकाल दिया। निपुणा तो जहाँनारा बेगम के मोती महल से चली आई लेकिन बालों का बनाव, मोती वाली फिर वैसे न बना सकी जैसे, निपुणा बनाती थी।

भाग्य की मारी दर दर भटकती निपुणा अवन्ती में आ पहुँची और उसकी कला समय पाकर, उज्जयिनी की श्रेष्ठि-कन्या का सिंगार बन गई। निपुणा की कला के योग से (बड़ी) माधुरी का सिंगार हुआ था देखकर (माँ) मीनाक्षीदेवी ने निपुणा को अपनी सेवा में बुला लिया। यहाँ, यद्यपि निपुणा तन-मन के श्रम से सेठानी का सिंगार करती थी, फिर भी सेठानी यही कहती रहती थी 'निपुणे तुने मेरा कभी अच्छा नहीं सजाए, जितने माधुरीदेवी के!'

उत्तर में निपुणा आखिर कैसे कह देती कि माधुरीदेवी खिलता हुआ चन्द्रमा है और मीनाक्षीदेवी ढलती हुई चाँदनी रात है!

सेठानी ने जब श्रेष्ठि की बात पर ध्यान न दिया तो, श्रेष्ठि मानो

बात बडबाडता हुआ अपनी प्रथम पत्नी से पुत्र रत्नचन्द्र की पत्नी दीपावली के कक्ष की ओर गया।

रत्नचन्द्र की माता चन्द्रावली का देहान्त हो चुका था। उसके परलोक-गमन पर ही श्रेष्ठि ने मीनाक्षीदेवी से विवाह किया था। रत्नचन्द्र अपना नौका-दल लेकर मलयदेश गया था। जिस साल उसका विवाह हुआ था, उसी साल सागर-यात्रा का अनिवार्य कार्यक्रम उसे अपने हाथ में लेना पडा। नवविवाहिता बाला पत्नी को सूनी सेज पर अकेली बिलखती छोडकर, रत्नचन्द्र उत्तुंग मस्तूलधारी अपने जहाजों पर सवार होकर, पूर्व दिशा की ओर अभियान कर चुका था।

दीपावली अरणोदय (आज का अरनोद) के धनपति, नगर निगम नेता शाहरमल्ल की पौत्री थी। दूज शशि की पहली किरण सा उसका दर्शन था। किन्तु दीपावली क्षीण शशि-किरण-सी नहीं थी शान्त-शीतल। पतली किरण-सी थी। अग्निधारवत थी। चपल और उद्दाम था उसका देह वैभव। मुँहजोर अश्व के समान, उसका अविनीत यौवन, परंपरा की सौ-सौ श्रृंखलाओं को एक झटके में तोडकर धरती-आकाश को खूंद रहा था। चार चार साल से उसकी सेज पर वियोग की नागिन बसेरा किए बैठी थी। चार चार साल से यौवन का दुर्दम्य तुरङ्ग कामनाओं और कल्पनाओं के मैदानों को बेतहाशा पार कर रहा था और उसे थाम कर थपथपाकर, उस पर आरोहण करने वाला नरनायक कहीं--दूर था। चार चार साल से कंचुकी के बन्द खुलकर बँधे थे और बँधे कर खुले रह गए थे पर वातायन में आते चन्द्र के साथ, रत्नचन्द्र नहीं आया।

रत्नचन्द्र नहीं आया और दीपावली ज्योतिषी-बह्मनों से अपना भाग्य पूछने लगी। हस्तरेखाएँ दिखाने लगी और बाईं फडकने का शकुन पूछने के लिए दूर-दूर तक दासियों को भेजने लगी।

और सप्ततल प्रासाद के प्रांगण में, जहाँ आए दिन हिमालय की जडी बूटी बेचनेवाले आते मदारी और नट आते। प्रस्तर जालों की

बोट में बैठी अनुप्त दीपावली नटों और जादूगरों से सम्पर्क में आई अन्धविश्वास ने अपनी काली छाया फैलाई और धीरे-धीरे दीपावली पीरों और फकीरों में मजारों तक परिचारिकाओं को भेजने लगी।

—ऐसे वातावरण में दीपा का पैर फिसल जाए तो विस्मय क्या? उसकी उन्नत जाती पर तड़क जाए तो बहुत का दोष कहाँ? दोष तो उस के अनन्त प्रवाह और आवेग का है, अथवा है उस मानी को जो सुनने में लिए पास तक नहीं आया!

माधुरी अपनी माभीधन दीपावली से बहुत छोटी थी। दोनों सुन्दर थीं। एक दूसरी का उपमान थी, लेकिन फर्क इतना ही था और बासी था कि मामी की लम्बाई भ्रष्ट हो चुकी थी और चेहरा आसव की खुमारियों के कारण डोरा से कहीं-कहीं साँवला पड़ गया था और लुक छिपकर अन्धगृहों में, मन्दिरों में, ग्राम बाजारों में, दूतावासों में और सहेलियों के आवासों में किए गए अभिचार के फलस्वरूप झुर्रियों से नहीं—काली रेखाओं और झाँइयों से भर गया था! फिर भी आँज में ऐसा और इतना नशा था कि दर्शक पहले ही पल में मतवाला हो जाता और दीपा की इन झाँइयों और काली डोरियों पर उसकी नजर तक न जाती!

इस तरह, दीपा भरी कलशी थी जो भर जाने को आकुल थी। माधुरी भरी हुई कलशी थी, जिसका बूँद एक न छलता था! दीपा की तृप्ति बाहर थी, माधुरी की तृप्ति उसके अपने भीतर थी! दीपा देह की पुजारिन थी। माधुरी हृदय और आत्मा की आराधिका थी। दीपा शैव थी। माधुरी वैष्णव थी।

माधुरी राधामाधव की युगलमूर्ति की पूजा किया करती। दीपा देवाधिदेव महादेव के ज्योतिर्लिंग के अभिषेक के लिए ब्राह्मणों को नित्य नए निमन्त्रण देती! फिर भी माभीधन और ननदधन दोनों सहेलियाँ थीं, पहेलियाँ थीं। एक-एक इकाई थीं। स्वयं प्रश्न थीं और स्वयं उत्तर थीं। भिन्न ध्रुव थीं, अभिन्न अन्तरा थीं! जीवन के स-र-ग-म की पद-निसा थीं! एक बँधी हुई दाह थी। एक खुली हुई आह थी। एक राख थी। एक चिता थी।

श्रेष्ठि ने अपनी कुलवधू दीपावली के नीलरंगी मिलन-गृह मे प्रविष्ट होने के पूर्व, परिचारिका को पुकारा—"नीलनयना, अपनी स्वामिनी से कहो, श्रेष्ठि आये हैं।"

नीलनयना दौडकर अपनी मालकिन के पास गई और उसे बुलाकर बाहर ले आयी। दीपा जब बाहर आई, एक हाथ से अपने अस्त-व्यस्त वेश को सहेज रही थी। उसकी कंचुकी के बन्धन बिखरे थे। और दो वेणियाँ अपनी गुम्फमाला से मुक्त हो कर कपोल-प्रदेश तक झुक आई थी, सो दीपा वेश के बाद, उन्हें कपोलो पर छा जाने से रोक कर, पीछे लौटा रही थी। श्रेष्ठि ने अपनी वधू को देखते ही पुन वही पहली बात दुहराई—

"युद्ध, युद्ध और युद्ध! देवि, दीपा आज गाधार, सिराज और दूसरी विलायतो से व्यापारी आए हैं, कहते थे फिर बहुत बडा जग होने वाला है। इधर कापालिक युद्ध की चिनगारी जलाकर चला गया है।"

"श्रेष्ठि! यह चिनगारी अब बुझ न सकेगी। जनता गौतमेश्वर के महालिंग पर किए गए एक प्रहार का बदला सौ-सौ प्रहारो से लेगी। मैंने अरुणोदय मे अपने मातुल गृह मे उन्हे एकत्र होते देखा है। और देखा है कि म्लेच्छराज के उस एक प्रहार की चोट जन मानस पर लगी है और बहुत गहरी लगी है। इसलिए, आज की घडी मे युद्ध ही निदान है।"

"लेकिन देवि, शांतिसागरजी महाराज कहते थे कि युद्ध मे हिंसा होती है और हिंसा निगठो के सिद्धान्तो के विरुद्ध है।"

"श्रेष्ठिवर, शांतिसागरजी की हिंसा और अहिंसा अवसरविशेष पर यदि हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सिद्धान्तो के अनुकूल नही हो, तो वह सहज त्याज्य है। यदि युद्ध से हमारे व्यापार को लाखो का लाभ पहुँचता है तो उसमे होने वाले हिंसा-अहिंसा से हमारा क्या प्रयोजन? सफल वणिक वही है जिसकी दृष्टि लाभ पर लगी रहे और शुभ-अशुभ और शिव अशिव की ओर देखे तक नही, फिर

घोट म बैठी अतृप्त दीपावती उठा और जादूगरा के सम्पर्क मे आई अपरिचयाम ने अपनी काली छाया फैलाई और धीरे धीरे दीपावली पीरो और फकीरो के मजारा तक परिचारिकाओ को भेजा लगा।

—ऐसे वातावरण म दीपा का पैर फिसल जाए तो विस्मय क्या? रसभरी शहतूत डाली पर लटक जाए तो शहतूत का दोष कहाँ? दोष तो रस " अनन्त प्रवाह और आवेग का है अथवा है उस माली को जो चुनने के लिए आज तक नहीं आया!

माधुरी अपनी भाभीधन दीपावती से बहुत छोटी थी। दानो सुन्दर थी। एक दूसरी का उपमान थीं, लेकिन फर्क इतना हो था और बाधो था कि भाभी का तरुणाइ भ्रष्ट हो चुकी थी और चेहरा आमन की खुमारिया के काल डोरो से कहीं-कहीं सांवला पड गया था और सुख छिपकर मधुगृहा मे मन्दिरो मे ग्वार बाजारा में दूतावासो मे और सहेलियो के आवासा म किए गए अभिसार के फलस्वरूप भुरिया म नहीं—काला रचाजा और झाँइया म भर गया था! फिर भी आँख म ऐसा और इतना नशा था कि दपाद पहले ही पल से मन्दाला हा जाता और दीपा को इन झाँइया और काली झुरियो पर उसकी नजर तक न जाती!

इस तरह दीपा मानो वासनी थी जो भर जाने को आकुल थी। माधुरी भरा हुइ कलशी थी जिसका बूँद एक न छलता था! दीपा की तृप्ति बाहर थी माधुरी की तृप्ति उसके अपने भीतर थी! दीपा देह की पुजारिन थी। माधुरी हृदय और आत्मा की आराधिका थी। दीपा शैव थी। माधुरी वैष्णव थी।

माधुरी राधामाधव की युगलमूर्ति की पूजा किया करती। दीपा देवाधिदेव महादेव व ज्योतिलिंग के अभिषेक के लिए ब्राह्मणा को निय नए निमन्त्रण देती! फिर भी भाभीधन और ननदधन दोना सहेलियाँ थी, पहेलियाँ थी। एक एक इकाई थी। स्वय प्रश्न थीं और स्वय उत्तर थी। भिन्न ध्रुव थीं अभिन्न अन्तरा थी! जीवन के स्र-गम की मन्द निसा थी! एक बँधी हुई बाह थी। एक मुंदी हुई आह थी। एक राग थी। एक चिता थी।

श्रेष्ठि ने अपनी कुलवधू दीपावली के नीलरगी मिलन-गृह मे प्रविष्ट होने के पूर्व, परिचारिका को पुकारा—'नीलनयना, अपनी स्वामिनी से कहो, श्रेष्ठि आये हैं।"

नीलनयना दौडकर अपनी मालकिन के पास गई और उसे बुलाकर बाहर ले आयी। दीपा जब बाहर आई, एक हाथ से अपने अस्त-व्यस्त वेश को सहेज रही थी। उसकी कचुकी के बन्धन बिखरे थे। और दो वेणियाँ अपनी गुम्फनमाला से मुक्त हो कर कपोल प्रदेश तक झुक आई थी, सो दीपा वेश के बाद, उन्हें कपोलो पर छा जाने से रोक कर, पीछे लौटा रही थी। श्रेष्ठि ने अपनी वधू को देखते ही पुन वही पहली बात दुहराई—

"युद्ध, युद्ध और युद्ध! देवि, दीपा आज गाधार, निराज और दूसरी विलायतो से व्यापारी आए हैं, कहते थे फिर बहुत बडा जग होने वाला है। इधर कापालिक युद्ध की चिनगारी जलाकर चला गया है।"

"श्रेष्ठि! यह चिनगारी अब बुझ न सकेगी। जनता गौतमेश्वर के महालिंग पर किए गए एक प्रहार का बदला सौ-सौ प्रहारो से लेगी। मैंने अरुणोदय मे अपने मातुल गृह म उन्हें एकत्र होते देखा है। और देखा है कि म्लेच्छराज के उस एक प्रहार की चोट जन मानस पर लगी है और बहुत गहरी लगी है। इसलिए, आज की घडी मे युद्ध ही निदान है।"

'लेकिन देवि, शान्तिसागरजी महाराज कहते थे कि युद्ध मे हिंसा होती है और हिंसा निग्रठों के सिद्धान्तो के विरुद्ध है।"

"श्रेष्ठिवर, शान्तिसागरजी की हिंसा और अहिंसा अवसरविशेष पर यदि हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सिद्धान्तो के अनुकूल नही हो, तो वह सहज त्याज्य है। यदि युद्ध स हमारे व्यापार को लाखो का लाभ पहुँचता है तो उसम होने वाले हिंसा अहिंसा से हमारा क्या प्रयोजन? सफल वणिक वही है जिसकी दृष्टि लाभ पर लगी रहे और शुभ अशुभ और शिव अशिव की ओर देखे तक नही फिर

भी, यदि इसमें कुछ अधर्म होता है और सांतिसागरजी का मन म्लान होता है, तो कोटि-कोटि की लाभ-राशि में-से कुछ द्रव्य जिनालयों को दान में भी दिया जा सकता है। इस प्रकार तथाकथित अधर्म की राह भी रुक जाएगी और लोक-दृष्टि और लोक-मानस में वह बड़ न सकेगा।"

अपनी पुत्र-वधू की ऐसी विचक्षण व्यावसायिक वृत्ति देखकर अवन्तिका का नगरश्रेष्ठि कमल चकरा-सा चकित रह गया। उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि वाणिज्य के चक्रव्यूह में भी दीपावली की, इस भाँति सहज, सम्भव पैठ है। युद्ध के कठिन काल में कमाई के अनन्य अवसर की प्राप्ति लाभ-राशि की दुरूहता पल भर में उसके मेधावी मस्तिष्क में सहज प्रवेश पा गई, किन्तु धर्मभीरु मन ने साथ न दिया—इसलिए उसके स्वार्थ ने चाहा कि वह स्वयं तो चुप रहे और दीपा ही इस बारे में कुछ कहे और सो, इस समय वह पाप के प्रभाव से बच जाए और अहिंसा का आराधक बना रहे।

दीपा बोली—"आज नहीं कल, कल नहीं साल भर बाद, पाँच-पन्द्रह वर्ष पश्चात् परन्तु म्लेच्छ आततायियों के विरुद्ध भयकर समर जागेगा। और प्रत्येक संग्राम वणिक्-वृत्ति के कञ्चन की कमाई और लाभ की उपलब्धि का एक अपूर्व अवसर देता है, इसलिए कि वणिक् उभय पक्ष को युद्धोपयोगी सामग्री बेचता रहे और दोनों ओर का स्वर्ण उसके भण्डार में सप्रहीत होता रहे। हम वह समस्त सामग्री सीदियों और मुग़लों को बेच देंगे जिसे राजपूत खरीद न सकेंगे। और जिसे विदेशी क्रय न कर पायेंगे, उसे राजपूतों को अथवा कापालिक के 'मुक्ति-मण्डल' को बेच देंगे। हमारा काम अपने लाभ और लोभ की गति को देखना है न कि राष्ट्र या देश की चिन्ता में दुबले होना। इस चिन्ता-चिता पर जलने के लिए ब्राह्मण और राजपूत हैं ही। हम युद्ध में भाग न लेने की वृत्ति रखते हुए भी, अहिंसा का पालन करते हुए भी, राष्ट्र के हित के लिए लड़े जाने वाले युद्ध से विमुख नहीं हो सकते, वरना जनमेदिनी हमारा पत्ता-पत्ता उड़ा देगी। श्रेष्ठि, बौद्धों का द्रोह याद है न! उनकी अहिंसा म्लेच्छ आक्रान्ताओं का प्रतिरोध न कर

सकी। विलायतों में जहाँ-जहाँ इस्लाम आया, पहले बौद्ध बसते थे, विदेशी आक्रमणकारी नंगी तलवार लेकर जब चढ़ आया, तब इन देशों के बौद्धों ने अहिंसा का फतवा दिया, परिणाम जो प्रकट हुआ आप से छिपा नहीं है। सारे बौद्ध धर्म-भ्रष्ट हुए और इस्लाम की तलवार ने उन्हें म्लेच्छ बनाने पर मजबूर किया, उन्हें मृत्यु या इस्लाम में से एक अंगीकार करना पड़ा और क्षमा करें, मैंने आज तक एक भी ऐसा अहिंसापालक नहीं देखा, जिसने अहिंसा की रक्षा के लिए मृत्यु का वरण किया हो! श्रेष्ठि, प्राण सबको प्यारे हैं। प्राणों की रक्षा भी तो अहिंसा है और है धर्म का पालन।'

"हाँ देवि, कहा है 'प्राण की रक्षा निश्चय ही धर्म-साधन है!' तो तुम्हारा कहना है?"

'युद्ध अवश्य होना चाहिए। उधर गौतमेश्वरमठ कापालिक को दान, इधर सामग्री का भाव और दर बढ़ाकर उस दान-राशि को वापस खींच लेना—हमारे लिए अहिंसा धर्म है! हमारे स्वार्थ की हत्या—हिंसा न हो, यही हमारे लिए अहिंसापालन है।

'तुमने इस नादान वय में, यह सब कहाँ से सीखा?"

"इस प्रश्न का उत्तर, मुझसे अधिक अच्छी तरह आप जानते हैं।

'मैं जानता हूँ वधूधन क्या कह रही हो?" श्रेष्ठि ने आनंद में आश्चर्य प्रकट किया!

"सच है! आपकी कार्यावली देख-देख कर मैंने यह सब सीखा है।"

"तो हमें भावी लोक-संकट से सुरक्षित रहने और उसके भँवर से भी अपने लक्ष्य का फूल निकाल लाने की तैयारी कर लेनी चाहिए।' श्रेष्ठि ने बड़ी चतुराई से वकवाणी में कहा।

'तैयारी! हम कर चुके हैं।"

"हम!"

"जी श्रेष्ठिवर—आप और मैं।"

'मैं तुम्हारा संकेत नहीं समझा कुलवधू।'

"अधिक समय आपका नष्ट न हो, अतः स्पष्ट कहूँ तो क्षमा करेंगे!"

"क्षमा की क्या बात बहू ! तुम इस कुल-परिवार की राज्यलक्ष्मी, भाग्यलक्ष्मी, रूपलक्ष्मी हो !

'श्रेष्ठि ! क्या आपने दिल्ली के बादी सुलतान से समझौता नहीं कर लिया है ? क्या आपने म्लेच्छों और मुगलों से तय नहीं कर लिया है कि उनके आक्रमण के अवसर पर आप—उज्जयिनी के नगरश्रेष्ठि युद्ध-सामग्री देकर उनकी सहायता करेंगे ?"

नगरश्रेष्ठि का सिर चकरा गया ! यदि स्थान कोई अन्य होता तो, वह बेहोश हो जाता ! किन्तु अपने ही आवास और रनिवास में उसके धीरज ने उसका साथ न छोड़ा ! पूछा

'देवि, तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ ?

लोदियों और मुगलों के जिस प्रतिनिधि से आपका समझौता हुआ है उससे।

'लेकिन वह तो समझौते के बाद तत्काल उज्जयिनी छोड़ चुका था !

'आपके लिए ! और इतना कहकर उसने ताली बजाई नीलवसना दासी उपस्थित हुई।

दीपावली बोली— अतिथि को निजी कक्ष में बुलाओ !' फिर परिचारिका के जाने के पश्चात् दीपा ने अपने श्वसुर से कहा—'क्षमा करें प्रतिनिधि मेरे पुरातन सखा हैं। इस सूने जीवन में मेरा मन इनके सामीप्य में सुख पाता है।

श्रेष्ठि ने अपनी कुलवधू को देखा। सीना तान कर वह उत्तुंग प्रतिमावत् खड़ी थी ! अनन्त वासना और अनन्त काम की अनन्त रति-सी!

श्रेष्ठिवर ! सुनकर आप क्षुब्ध हैं ?

'नहीं नहीं ! देवि भला तुम्हारे सुख को देखकर मैं क्यों कर क्षुब्ध हो सकता हूँ। मैं तो प्रसन्न हूँ कि रत्नचन्द्र का अभाव तुम्हारे लिए अभाव न बन सका। आखिर मलयदेश में रत्नचन्द्र भी तो बाली और स्वर्णद्वीप की रसरमणियों के संग से शारीरिक सुख का धर्म-लाभ पाता होगा ! अपनी युवावस्था में मैं एक बार चीनाम्बर के क्रय के

निमित्त चीन गया था। अपनी यात्रा की अवधि में ब्रह्मप्रान्तर और चीनदेश की वारवनिताओं, कुल-कान्ताओं और काम-कन्याओं का सयोग मेरे लिए पर्याप्तरूपण सुखदायक सिद्ध हुआ था।' और, कहते-कहते श्रेष्ठि यौवनकाल के उन सुख-स्वप्नों की सुखद स्मृति में खो गया।

तभी, खडाऊँ की खट्-खट् से उसका ध्यान भग हुआ। विप्रवेशधारी तिलकवत एक ब्राह्मण को सामने से आते देख, वह समादर के हेतु उठ खडा हुआ। लेकिन वधूधन ने उसे रोक दिया।

तब तक आगन्तुक निकट आ गया था। उसे देखते ही श्रेष्ठि ने पहचान लिया—

"इसलाम खाँ!"

"अस्सलामवालेकुम!"

'वालेकुमस्सलाम! आप तो बम्हना के भेष म बिल्कुल बम्हन लगते हैं!"

"जी, शुक्रिया! आजकल दीपावली कुवरानी की ओर से देवालयो मे जप-तप चल रहा है।" और इतना कह कर वह खिलखिलाया।

"ये हैं मेरे पुरुष सखा!" कहकर, दीपा हँसने लगी। इस हँसी से उसकी अति सूक्ष्म प्रावरणा (ओढनी) के नीचे, उसके पुण्य पयोधर हिल हिल रहे थे!

फिर श्रेष्ठि और ब्राह्मण-वेशी इसलाम खाँ व्यापार और राजनीति के वार्तालाप में सलग्न हो गए।

दीपा उठ कर वहाँ से, अपने कक्ष की ओर चली! आगे कुछ बढ़ने पर उसने देखा, उसकी पद-ध्वनि सुनकर, जैसे एक छाया कहीं ओट में छिप गई है!

सावधान हो कर वह उसी दिशा म चली।

३ :

राजो आकर कुटिया के बाहर बैठ गई। दो घडी पहले ही उसका मुँह उगते चाँद-सा खिला हुआ था, अब, बुझे हुए दीपक-सा उदास था कुछ ही देर पहले जो राजो बगल में काली कलसी दबाए तितली की तरह उडती, हँसती-खेलती, अपनी हमजोली बालाओं से चुहल करती, पनघट की ओर गई थी, वही राजो धीमे धीमे सिसकती बोझिल मन और मन मन भर के पैर लिए घर लौटी। रास्ते भर उसकी सहेली सीता ने उसे बहुत समझाया—

'राजो बहन, उन बड़े घर के कुमारों से लड़कर तूने ठीक नहीं किया। कहाँ वे महल में रहने वाले, कहाँ हम धूल में लोटने वाले!'

सीता, महल हो या कुटिया, भगवान् सबका एक है। सच तो यह है कि उन्हें जिस भगवान् ने जन्म दिया है उसी ने हमें भी बनाया है।

"लेकिन राजो, कुमार के पिता राजा हैं और हमारे पिता प्रजा हैं। हम रंक, चमार हैं।

'चमार हैं तो क्या हुआ? चमार क्या मनुष्य नहीं होते? जिस तरह और, जैसे राजाओं, सामंतों और श्रेष्ठियों का जन्म होता है उनमें जवानी और बुढ़ापा आता है उसी तरह और वैसे ही हम

शोषिता—समाज के सच्चे सेवका, दासों और शूद्रों का जन्म होता है। सीते, उनके जीवन में भी यौवन के वसन्त मुसकराते हैं, प्रौढ़ावस्था का अनुभव जीवन-पथ के कुटिल कण्टकों से सावधान करता है और वृद्ध होने पर जरा-जन्म, रोग-शोक और सन्ताप सताते हैं अथवा सचित विवेक काल के कष्ट को जन्मान्तर के आमोद में बदल देता है।

'यह ठीक है।'

"फिर ऊँच क्या, नीच क्या ? फिर बड़ा और छोटा महाजन और शूद्रजन क्या ?"

ये भेद प्रभु ने नहीं बनाए, क्योंकि प्रभु भेद की रचना नहीं करता, वह विनाश का विधाता नहीं है।

'यही तो मैं कहना चाहती थी—भेद मानव निर्मित है। मनुष्य ने ही अपने स्वार्थों के अनुरूप वर्गों की रचना की और अपने ही जैसे दूसरे मनुष्य को छोटा माना, या बड़ा बनाया। प्रभु का पट्टा लेकर कोई नहीं आया, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली नरेन्द्र हो या ज्ञानवान् पण्डित।

"परन्तु राजो ये लोग—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तो यही कहते हैं भगवान् ने सबको अपने अपने भाग्य के अनुसार जन्म दिया है। भाग्य से ही राजा और भाग्य से ही मनुष्य रङ्क बनता है। भाग्य ने ही स्वामी और भाग्य ने ही सेवक बनाया है।'

'जिस प्रकार हम समाज में विद्यमान भेद प्रभेदों के लिए दोषी नहीं ठहरा सकते उसी प्रकार भाग्य को भी अपराधी घोषित नहीं कर सकते।"

"मेरा अनुमान है राजो भाग्य कोरी कल्पना है। स्वार्थियों ने अपने लाभ के लिए यह मन-गढ़न्त बहाना बनाया है।'

"सीते, भाग्य नहीं, मनुष्य का कर्म प्रबल है। कर्म के प्रहरी को भाग्य नहीं छलता है।

"जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। कर्म के बन्धन से कोई मुक्त नहीं हो सकता।'

'बहन, यही भारतीय संस्कृति का सार है। उसके ज्ञान का सौरभ और पाण्डित्य का पराग है। समाज ने सदैव श्रम की वन्दना की है। जो श्रम नहीं करता, वास्तव में वही शूद्र है क्योंकि जो श्रम करता है वही श्रमण है इसलिए जो श्रम नहीं करता वह अस्पृश्य है और तिरस्कार के योग्य है।

'इस दृष्टि से जो हम श्रमिकों, सेवकों और सहकर्मियों का तिरस्कार करता है और हमें अछूत मानता है वह दण्ड और परमात्मा का अपराधी है।

सखि वह तो हमारा तिरस्कार करता है बेचारा कि वह स्वयं परिश्रम नहीं करता और अपने इस पाप को छिपाने के लिए श्रमिकों को भाग्य और भगवान् के द्वारा परित्यक्त घोषित करता है।

अपनी इस कमजोरी को वे भी जानते हैं और हमसे भी छिपी हुई नहीं है फिर भी जगत और जीवन की कैसी विचित्र प्रवंचना है है कि श्रेष्ठ और शूद्र के भेदभाव ने मनुष्य को मनुष्य से अलग कर दिया है। प्रकाश के विपुल पुंज के मध्य में उत्तुंग प्राचीर खड़े कर दिए हैं।

सखि सरिता के पुण्य प्रवाह को दो धाराओं में बाँटने का यह प्रयास कभी सफल नहीं हो सकता। और फिर जो प्रभु का इष्ट नहीं है वह अनिष्ट समाज का श्रेय नहीं बन सकता। उसका सुख अथवा साधन उसका वैभव अथवा विधान नहीं बन सकता।

इस अल्पवय में तूने यह सब कहाँ सीखा ?

'मेरे मातुलग्राम में शूद्रों के निकाय में समाज बहिष्कृत एक देवता निवास करते हैं। अपने अतीत के अपराधों के पश्चातापस्वरूप शूद्रों और दीन-दलितों की सेवा ही उन्होंने अपने शेष जीवन का विशेष लक्ष्य बनाया है। वर्षों उनके चरणों में बैठकर मैंने दिव्य वचनामृत पान किया है।

तुझे देखकर कोई नहीं कह सकता कि यह शूद्र कुलोत्पन्न कन्या है। यदि तुझे मूल्यवान् परिवेश पहना दिया जाए और आभूषणों से

तेरा शरीर अलङ्कृत हो तो कौन कहेगा, तू राजकुमारी नहीं है ?" कहकर सीता चुप रह गई।

"यहाँ तू गलती करती है, शरीर और आभूषणों से नहीं, मनुष्य की उच्चता या क्षुद्रता, उसके संस्कार, उसके कर्म और उसके विवेक से पहचानी जाती है। आलि, कभी-कभी मेरे मन में यह उत्कृष्ट अभिलाषा उठती है और उठकर मेरे सर्वस्व को चुनौती देती है कि चित्तौड़ के इस अपराजेय दुर्गराज के शक्ति-सुमेरुदण्ड के समान विजय-स्तम्भ पर खड़ी हो जाऊँ और समस्त संसार को पुकार कर कह दूँ—संस्कार ही मनुष्य की जाति है! सुनो, कर्म ही मनुष्य की जाति है। ज्ञान-अज्ञान ही मनुष्य की जाति है। उसकी क्षुद्रता, उसका अविवेक है और उसकी श्रेष्ठता उसका विवेक है। भाइयो, जन्म से कोई कुलीन नहीं, कोई अकुलीन नहीं! मुझे कोई बताए, जिसे भगवान् ने बनाया, उसे मनुष्य क्यों ठुकराए?" राजो अपने आवेश में कहती गई।

"तू सच कहती थी, वस्त्र और विभूषण से मनुष्य योग्य नहीं बनता। यदि जीवन-विकास के साधन और सुविधा-स्रोत उपलब्ध हों तो शूद्र कुलोत्पन्न बालक भी परम पण्डित बन सकता है, वह भी वैद्य अथवा विधायक, यान्त्रिक अथवा स्मृतिकार बन सकता है।"

"समाज को बनाकर देखो। व्यक्ति को बनाकर देखो!" कहती राजो कुटिया में चली गई। मनुष्य की रचना करो। प्रभु की रचना करो," गुनगुनाती सीता भी दूसरी ओर चली गई।

उस समय दो बाँस के लगभग दिन चढ़ आया था और पूरब के फैलते हुए प्रकाश की धाराओं ने मैदान की हरियालियों को एक सघन और उजली छाया दे दी थी और लम्बी पगडण्डियों को लाल-लाल रंग से भर दिया था।

राजो कुटीर के एक कोने में, घुटनों में सिर डाले बैठ गई—उसकी काली कलशी फूट गई थी और घर में पानी नहीं था और माँ को उत्तर देने का दायित्व उसे दुःखी कर रहा था।

आँगन में किसी की पदचाप उठ रही थी।

●

४

माँ ने पुकारा—

'राजो, ओ राजो !

भीतर से कोई उत्तर नहीं मिला।

माँ ने फिर से बेटी को पुकारा—

राजो ओ राजवती !

राजवती ने झाँककर बाहर देखा माँ खड़ी थी। उसके सिर पर चार का गट्ठर था। राजो ने दौड़ कर माँ का हाथ बँटाया।

माँ बोली—

'आज भोर से ही काम में लगी थी। काम ही हमारा कर्त्तव्य है। वही हमारा धर्म है। वही हमारा परमेश्वर और वही हमारी पूजा है। लेकिन आज मैं बहुत थक गई हूँ। राजो अब मुझसे काम नहीं होता। तेरे पीले हाथ हो जाएँ तो मेरी सभी चिन्ताएँ मिट जाएँ।

बेटी का मुँह अपने ब्याह की बात से लज्जा से लाल हो गया। उसने आँखें झुका ली और चारे का एक तिनका तोड़ कर उसे अपने दाँतों में, होठों में दबा लिया।

माँ ने उसकी ओर देखकर, पूछा—

'पुत्री कुटिया में अब तक चूल्हे का उजाला नजर नहीं आता !

क्या बात है ? घर मे अग्निसलाई नही थी तो पडोसिन से माँग लाती ?"

"आज मुझे पनघट पर देर हो गई।"

"क्यो ?"

"आज हम लडकियो को राजपुत्र कुमारो ने जल भरने से रोक दिया। अपने नुकीले तीरो से हमारे घडे फोड दिए और हमें जलाशय तक न जाने दिया।" राजो के स्वर में रोष था।

सुनकर माँ स्तब्ध रह गई। अपनी पुत्री से भी अधिक वह इस तथ्य की गम्भीरता से परिचित थी कि उच्च वर्ण यदि निम्न वर्ण का अन्न-जल बद कर देता है तो इस का परिणाम क्या निकलता है !"

"फिर ?" उसने पूछा।

"रोती-कलपती हम वहाँ से चली आई।

"कुमारो मे अगुआ पृथ्वीराज होगा ?"

"हाँ, माँ ! वही सबसे आगे थे।"

'किसी ने उन्हे बुझाया नही ?

"बुझाया। सामन्तराज सूरजमल उधर से निकले। उन्होने पृथ्वीराज को रोका और समझाया-बुझाया। परन्तु वे भला किस की सुनें!"

"तुम तो चुप रहीं ?'

'मैंने कुछ नही कहा, इतना ही सामन्तो के चाँदनी की खेती है, हमारे धूल की। वे प्रभु की सन्तान हैं, हम मनुष्य की ! सीता ने उन्हे सुनाकर ताना दिया— मनुष्य को, क्या प्रभु की सन्तान मार डालेगी ?'

"भगवान् एकलिंग सबकी रक्षा करें। हमारी कुशल करें। तुमने राजकुमारो के मुँह लगकर अच्छा नहीं किया। बौना चला आकाश छूने !" कुछ सोचकर माँ बोली—

"शूद्रा का समाज बुलाना पडेगा। पृथ्वीराज का उपद्रव बहुत बढ़ गया है। दीवानजी के राज्य में यह अन्याय नही चल सकता। पृथ्वीराज के कारण हमारे निकाय की न जाने कितनी अबलाओ की माँग उजड गई है ! हाय, जहाँ-तहाँ माँग जली लडकियाँ नजर आती हैं !"

"यदि हम संगठित होकर दीवानजी की राज-सभा में प्रार्थी बनें तो अवश्य हमें न्याय-दान मिलेगा।"

"दीवानजी की राजसभा ने कभी किसी के साथ अन्याय नहीं किया है, बेटी! बात सिर्फ इतनी है कि वहां तक पहुँचना हमारे लिए कठिन है।"

"क्यों ?"

"इसके लिए मंत्रियों को घूस देनी पड़ेगी।'

"राम राम!'

'हां, यह पहली जरूरत है। परमभट्टारक महाराणा कुम्भकर्ण का युग और ही था। अब तो महाराणा रायमल्ल के शासन में, धन धर्म का स्वामी बन बैठा है।"

'स्वामी धन रहे या धर्म। हम तो दास ही बने रहेंगे। हमारा दासत्व हमारे सिर के साथ है।'

"मेरी समझ में नहीं आता राजकुमार को हम दीनहीनों की राह में कांटे बिछाने से क्या मिल जाएगा ?"

'अकेले हम ही उनके कोप के भाजन नहीं बने हैं। बड़े-बड़े सामन्त भी उनकी आँखों में कांटे से खटक रहे हैं। काकाजी सूरजमल और उनके साथी सारंगदेव को अपने प्राणों की चिंता है। युवराज जयमल की जड़ उखाड़ने को वे तुले हुए हैं। स्वयं उनके भाई सांगा घर से भागकर जंगली कबूतर बन गए हैं!'

—राजो को अपने ही कथन पर हँसी आ गई।

मुंह में ओढ़नी का पल्लव ठूँस कर वह कुटिया में गई और मिट्टी के एक छोटे-से पात्र में जल भर लाई—

"कल का ठंडा पानी है। पीओ। इससे थकान उतर जाएगी।

"थोड़ा गुड़ ले आ।'

"लाती हूँ। कहकर राजो कुटिया की ओर गई परन्तु पिछले द्वार से निकल कर सहेली के घर की ओर भागी। उसके यहाँ गुड़ नहीं था। माँ से कहती, तो वह मांगकर लाने से बरज देती।

"जड से यारी, पत्तो से बैर ! माँ ने पानी पीकर सोचा —"कुमारो से विरोध और उनके पूर्वजो के प्रति राजभक्ति ! यह दुरंगी चाल हम कैसे चल सकते हैं ! बेकार राजो ने बात बढ़ाई ! हुंहे, कुमारों के मुँह लग कर, क्या झंडे पर चढ़ना है ? और राज-सभा में जाने से भी क्या होगा ? कोई परिणाम निकले—मुझे तो नहीं लगता। पिता से पुत्रों की शिकायत ! भौंह से आँख की शिकायत करने से फ़ायदा ? लड़कियों को रोक कर रखना पड़ेगा राजो, अरी राजो गुड़ लेने गई थी, वहीं रह गई ? यह लड़की इतनी बड़ी हो गई, अभी तक इसमें समझ-बुद्धि नहीं आई।"

राजो सामने से आती नज़र आई—

"घर में गुड़ नहीं था। सहेली के यहाँ से ले आई।"

"रहने दे। मैं पानी पी चुकी।"

"अरे !"

"देख राजो, मैंने सोचा कुलीनो के मुँह लगना हमारे लिए हित कर नहीं है।" इससे हमारी हानि ही होगी। तुम सब लड़कियाँ सामन्तो के जलाशय की राह जाना ही छोड़ दो।"

"माँ, 'गगन-सागर' जलाशय सामन्तो का ही नहीं है, उसे प्रजा ने बनाया है, जाने कितने दिन भूख-प्यास सहकर। और माँ तुम तो जानती हो, एक बार जब यह जलाशय सूख गया था।"

"सूख गया था, बेटी !" माँ ने दुहराया।

"सूख गया था, और राजपुरोहित ने राणाजी को राय दी थी।"

"राय दी थी पुत्री !" माँ का कंठ भर आया।

"राय दी थी कि किसी शूद्र की इसमें बलि दी जाए !"

"बलि ! हाँ, बलि दी जाए ?" माँ ने आँखें पोंछी।

"तब बलि देने से पहले, मंत्रियों ने उन काले दिनों में हम से काल तिल चबवाए !" राजो के होंठ फड़कने लगे।

"तिल ! हाँ तिल चबवाए !" माँ फूट-फूट कर रो पड़ी।

"और माँ ! उस सूखे जलाशय को छलाछल भरने के लिए कि

जल भगवान् महारुद्र के शीश पर झरती शीतल धारा बने, सामन्त पुत्रियों और कुल वधुओं के वारि-विहार का स्रोत बने, ब्राह्मणों और पुरोहितों के प्रातःकालीन परिमार्जन का प्रवाह बने !' '

"प्रवाह बने !" माँ ने आँसू भरी आँखें उठाकर देखा !

'प्रवाह बने इसलिए इस जलाशय में मेरे एक भाई को तुम्हारे एक पुत्र की, प्रथम और इकलौते पुत्र की बलि दी गई ।"

"तब मैं प्रार्थिनी बनी थी पुरोहितों की सभा में—मेरी नवविवाहित वधू विधवा हो जाएगी !'

'मैंने सब सुना है, उन्होंने तुम्हारी प्रार्थना सुनकर अट्टहास किया था और आश्चर्य प्रकट किया था—शूद्राणी और विधवा ! अरे, विधवा हो जाएगी तो दूसरा जवान ढूंढ लेगी ! शूद्र-नारियाँ की आँखें पति की खोज में प्रवीण होती हैं ! फिर, एक अट्टहास !"

"पुत्री, वही अट्टहास आज भी मेरे कानों में गूंज रहा है। तब मैंने निवेदन किया था—महाराज, मेरा एक ही लाल है उसे न छीनिए। मैं दासी बन कर आजीवन आपके घरों में काम करूँगी।'

'परन्तु उन्होंने एक न सुनी। फिर सरोवर की सूखी और तड़की हुई माटी की माँग भैया के लहू से लाल हो गई और भाभी की माँग वैधव्य की आग से काली पड़ गई।"

'वह आ रही है बहू ! हाय, ऐसा रूप तो ब्राह्मण-पुत्रियों में ही देखा है ! मैंने कितना इसे कहा, दूसरा घर-वर देख ले। '

"भाभी ने पुरोहितों की वाणी को झुठला दिया। धन्य है मेरी भाभी ! इसने दिखा दिया है कि ऊँच या नीच भारतीय नारी एक ही पति का वरण करती है। जीवन पर्यन्त अपने धर्म का पालन करती है।'

"नीच और शूद्र होने से क्या ! हम भी मानव तन मिला है, मन मिला है।"

"मन है तो भाव भी होंगे ही। फिर ऊँच-नीच की बात ही कहाँ रहती है ?

'हिम की शीतलता और अग्नि की उष्णता का अनुभव ब्राह्मण और शूद्र को समान रूप से होता है।"

"प्रिय का वियोग ब्राह्मण नारी के लिए जितना उत्पीड़न है, उतना ही शूद्र नारी के लिए भी है।"

"हम पाषाण नहीं हैं और वे अकेले ही चेतन नहीं हैं। यदि उनमें जीव है तो हम भी जड़ नहीं हैं। जन्म हमें भी मिलता है और मृत्यु उन्हें भी मिलती है।"

भाभी समीप आ गई। उसके सिर पर बड़ी-सी टोकरी थी। ऊँचे उठे एक हाथ से उसे थामे रही। राजो के निकट रुक कर बोली—

"माँ, आज ननदधन किससे रूठ रही है?"

"अपने आप से। रानी रूठे, अपना मुँह।"

"मैंने सुना, आज तो ननदधन ने स्वामि-पुत्रों को एक की बीस सुनाई?"

"मुझे उसी की चिन्ता है, बहू! कुल-देवता हमारी रक्षा करें। नागनाथ को चाँदी का छत्तर चढ़ाऊँगी। राज-कोप से रक्षित रहे।

राजो ने कहा—

"मैंने तो कुछ न कहा-सुना। मैं चुप भी रहूँ फिर भी नाम मेरा ही लिया जाएगा। सारे नगर में ऊँट बदनाम!"

"लाख बात की एक बात, तू घर में रहा कर।"

"शूद्र-कन्या घर में रहे तो अकाल पड़ जाएगा—ब्राह्मणों की मान्यता है।" भाभी ने कहा।

राजो ने उत्तर दिया—

"हाँ, वे नहीं चाहते कि उनकी कन्याओं की भाँति शूद्र-कन्याएँ भी सुख पाएँ। समान पद की अधिकारिणी हों। शूद्र-कन्याएँ श्रम करना अस्वीकार कर दें तो अकाल पड़ेगा ही। इसी कारण बड़ों ने उन्हें बेगार के लिए बाध्य किया है।

अपनों की दुर्दशा देखते-देखते मेरा तो खून पानी हो गया है।' कहती, माँ वहाँ से चली गई।

माँ के जाते ही राजो की चपलता तरंगित हुई। दौड़कर वह भाभी से लिपट गई

'छुड़ाओ तो जानें ?"

'पराया हो तो छुड़ाएँ, अपने को कौन छुड़ाए ?'

'तुम्हें देख कर मेरा मन मोद की लहरें लेता है।'

"तुम अपने भैया की परछाईं हो, इसलिए मुझे बहुत भली और सुहावनी लगती हो।

कहते भाभी उदास हो गई।

माँ की आवाज आई—

आज का आहार नहीं पकेगा ?

ननद और भाभी ने चौंक कर एक-दूसरी को देखा।

रावले में घण्टनाद गूँजा।

नाद का गुंजनस्वर पहले दोनों के कानों में प्रवाहित हुआ फिर बड़ी देर तक दूरस्थ पहाड़ियों में गूँजता रहा।

. ५ :

दशपुर के पथ पर, पुण्यतोया शिवना के किनारे किनारे राजकुमार मेदिनीराय की सेना बढ़ रही थी।

कुमार ध्यानमग्न था कि अचानक--

'कुमार की जय हो! महाराजकुमार!" सेवक रुक कर पुकार रहा था।

'क्या बात है सिपाहीजी ?" कुमार का ध्यानसूत्र बिखरा।"

'अन्नदाता! दो फिरंगी और एक पादरी श्रीमान् से मिलना चाहते हैं।"

"कहाँ हैं वे ?"

"अचेरी-दुर्ग के द्वार पर विराम ले रहे हैं।'

'तो क्या हम अचेरी तक पहुँच गए ?'

'अन्नदाता, पधारिये! इधर!' सेवक आगे आगे दौड़े—

"सावधान! सा व धान" भगवान् महाकाल के वरदान" एकलिंग के आशीषरत्न चिरंजीव राजकुमार मेदिनीराय पधार रहे हैं! सावधान!"

ग्रामीणजनता की भीड़ बढ़ने लगी। दौड़-दौड़ कर ग्रामजन आने लगे—फल फूल, कन्द मूल जो जिसके हाथ लगा, लेकर दौड़ा।

ने हमारे प्रातिथ्य का अपमान किया। हमारे भोलेपन का जवाब अपनी कुटिल-चतुराई से दिया। हमारी सरलता को छलकर "

कुमार रोषवश कुछ कह न सका। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें लाल लाल अंगारा-सी धधकने लगीं।

सेवक ने आगे बढ़कर कहा—' अन्नदाता, अपराध क्षमा हो ! उन दिनों सेवक केरल में था। उसने अपनी आँखों देखा—इन फिरंगियों ने किस प्रकार ब्राह्मण मन्त्रिदेव को धोखा दिया और कोझिकोड (कालिकट) जैसे सुन्दर नगर में आग लगाई। अन्नदाता, कई अबलाओं को पकड़कर ये अपने साथ ले गए। गोकर्ण के मुसलमानों का कत्लेआम किया। मस्जिदें गिराईं और उन्हें बलात् ईसाई बनाया।"

'फिरंगियों के पिछले कारनामे, जो इनके रंग से गोरे-उजले नहीं, काले हैं, देखते हुए इनका विश्वास नहीं किया जा सकता। फिर भी, चूँकि ये अतिथि हैं, इनका किसी प्रकार का अपमान न किया जाए, इनके देह द्रव्य की पूरी रक्षा की जाए। इन्हें यात्रा की सुविधाएँ दी जाएँ जहाँ ये जाना चाहें खुशी से जाएँ, किन्तु प्रवेश और प्रस्थान के समय इनकी भरपूर तलाशी ली जाए।'

'जो आज्ञा अन्नदाता !" अंचेरी का दण्डनायक सैनिक के ढंग से अभिवादन कर एक ओर हट गया। उसने तत्काल अपने सैनिकों को आदेश दिया। कुल छह आदमी आगे बढ़े। दो दो सैनिक एक-एक फिरंगी पुर्तगाली की तलाशी लेने लगे।

प्रथम दो फिरंगियों के पास कुछ न मिला। फटे हुए कपड़े, सड़ा-सूखा मांस, बदबूदार मछलियाँ, गन्दी मदिरा के पीपे और ताँबे के कुछ सिक्के थे।

किन्तु इंडियन पादरी के पास कुछ कागज-पत्र भी थे। उसने लम्बे लबादे और कोट के नीचे गुप्त रीति से छिपाए गए थे। सैनिकों ने फौरन उन्हें राजकुमार के सामने पेश किया—

"कुमारदेव की जय हो ! फिरंगी पादरी के परिवेश से ये कतिपय पत्रक प्राप्त हुए हैं।"

राजकुमार ने उन्हे गौर से देखा, फिर व्यग्यपूर्वक पूछा—

"पादरी पडितजी, ये कौन-से शास्त्रो से नक्शे हैं ? ये कौन-से स्वर्ग के मानचित्र हैं ? ये किन-किन परियो और हूरो के हालात हैं ?"

"क्षमा क्षमा क्षमा !"—पादरी थर-थर काँपने लगा।

कुमार मेदिनीराय ने कहा—"दण्डनायकजी !"

"घणीखम्मा अन्नदाता !" दण्डनायक दौड कर उपस्थित हुआ। "आपने आज तक जितने पाप किए वे सब लोप हो जाएँगे। इन पादरीराम को कुछ रिश्वत दीजिए—ये स्वर्ग के पहरेदारो के नाम एक चिट्ठी लिख देंगे। क्यो पादरी साहब ?"

पादरी ने सिर हिला कर 'हाँ' कहा—"पादरीजन स्वर्ग के नाम खत भेजता है।"

सुनकर राजकुमार खिलखिलाया।

फिर गम्भीर स्वर मे दण्डनायक से कहने लगे—"जानते हैं ये मानचित्र यहाँ के हैं ? ये ये है मढद्वीप का नक्शा मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ ये सूरत के महामहिम बन्दर का नक्शा। ये 'मोहमयी और महिम्मती (माहिम) के मुसलमान नरेन्द्र के सामरिक महत्व के स्थानो के आग्रह। ये रहे गुजरात के समर-केन्द्र। ये आपके दशपुर के दुर्ग का मानचित्र।""वाह ! वाह !! जासूसी कोई फिरंगिया से सीखे।"

फिर कडक कर बोले—"ले जाओ इन्हे ! पवजन न्याय करें""" दण्डनायकजी, मन्त्रीजी के पास स्वय उपस्थित होकर समस्त सूचना प्रस्तुत कीजिए और गुजरात के शाह को तत्क्षण पूरा प्रमाण भेजकर, सम्वाद दीजिए कि 'सिंह सोता रहेगा तो वानर राज्य करेगा। सूरत की सूरत बदल जाएगी।'

अपराधियो को लेकर सैनिक चले गए।

पवनदूत पुन अपने पथ पर बढा।

: ६ :

श्रेष्ठिपत्नी ने आदेश दिया—

"वल्लभी, तू यहाँ रह। शेष सब दासियाँ जा सकती हैं।"

रम्भा सभी एक व्यक्ति के साथ भीतर आई। देखकर श्रेष्ठि आश्चर्य से खड़े हो गए। और फिर से बैठ गए। रम्भा उस व्यक्ति का आसन देकर चली गई। श्रेष्ठि का इंगित पाकर मीनाक्षीदेवी भी अपने विश्रामवास में चली गईं।

आगन्तुक व्यक्ति बहुत बड़ा गुप्तचर था। चित्तौड़ से आ रहा था। वहाँ के समाचार, गुप्त रहस्य और सामरिक भेद लाना, उसका काम था और इस काम के लिए उसे मुँहमाँगा धन मिलता था। इन रहस्य और भेदों और गुप्त सूचनाओं को विदेशी म्लेच्छों तक पहुँचा कर नगरश्रेष्ठि अपनी लक्ष्मी को सुटा रहा था। दिल्ली के सोदियों से उसका गहरा और गुप्त सम्बन्ध था। गान्धार के मुगलों से भी उसका सम्पर्क था।

और इन सारे सम्पर्कों और सम्बन्धों और व्यवहारों को उसने बहुत बड़े व्यापार का बढ़िया बाना पहना रखा था और धर्म-कार्य—दान, पुण्य, अन्न-क्षेत्र, मन्दिर निर्माण, गुरु-सेवा, शाला-स्थापना आदि के जाल-जंजाल से ढक दिया था।

सूरजसिंह ! अचानक तुम ?

"महत्त्व के समाचार लाया हूँ श्रीमान् ।

तो ज़रा द्वार बन्द कर लो और इस आसन पर बैठ जाओ ।

सूरजसिंह ने द्वार बन्द कर दिया और आसन पर बैठते हुए पूछा—माधुरीदेवी के बरियो को क्या हो गया है ?

साधारण अस्वस्थता है वैद्यराज और बड़ेहकीम आए थे। ठीक हो जाएँगी।

ईश्वर इन्हें दीर्घायु करें ।

धन्यवाद कहो क्या समाचार लाए ? श्रेष्ठि ने कंचनपात्र में केसरिया आसव छलकाते हुए पूछा—

श्रीमान् चित्तौड़ में मुझे मालूम हुआ कि महाराजकुमार मेदिनी राय यहाँ आ रहे हैं। बीच राह में एक पारसिक रमणी से उनका संयोग हुआ और आजकल उसी के रंग में डूबे हुए हैं।

माधुरी चौंक कर बैठी। फिर लेट गई—

—मेदिनीराय मेरा मेदिनी पारसिक रमणी उसने मन ही मन सोचा और ज़ोर से चिल्लाई—

झूठ यह झूठ है !

नगरश्रेष्ठि और सूरजसिंह की वार्ता में व्यवधान आया लेकिन माधुरी को पुनः प्रशान्त देखकर दोनों फिर से अपनी वार्ता में निमग्न हो गए।

माधुरी बाहर-बाहर प्रशान्त थी परन्तु भीतर भीतर उसका मन अशान्त था— पर की बात यदि सच है तो ? नहीं नहीं वे ऐसे नहीं हैं और मैं इन दुष्टों पर कैसे विश्वास कर लूँ ये लोग देश द्रोही हैं म्लेच्छों और यवनों से इनके सम्पर्क हैं। अब क्या होगा ? इस समय मन्दिनी कहाँ है ? मुझे उसके पास जाना चाहिए ज़रूर जाना चाहिए। वल्लभी मेरे साथ जाएगी मैं उन्हें सब कुछ बता दूँगी मेदिनी तुम कहते हो पापी चाहे कोई भी क्यों न हो उसका संहार होना ही चाहिए मेरे पिता पूज्य पिता लोलिया और गांधारी

यवनों के गुप्तचर हैं।"'जासूस हैं'"'हे महाकाल ! हे जिनदेव यह सब मैं क्या सुन रही हूँ" क्या देख रही हूँ ?'

"वल्लभ ! वह जोर से पुकारती रही—"वल्लभ" !

"यह मैं आपके पायताने बैठी हूँ। आदेश देवि !"

"'''''" माधुरी ने सूनी-सूनी नजरों से फीके-फीके होठों से खाई-खाई आँखों से वल्लभी को देखा। वल्लभी उसके मन की पीर पहचानती थी और सदय, प्रेमल, समाव दृष्टि से उसे अपलक देख रही थी।

दोनों की नजरें नजरों में समा गईं।

माधुरी फिर से शांत हो गई। वल्लभी ने उसे रेशमी चादर ओढ़ा दी और उसके पैरों को अपने हाथों से सहलाती रही।

नगरश्रेष्ठि और गुप्तचर सूरजसिंह पुनः अपनी बात में लग गए—

"श्रीमत, चित्तौड़गढ़ में महाराणाजी युद्ध की जबरदस्त तैयारी कर रहे हैं। अभी दस लाख भाले ढलवाने का हुक्म दिया गया है। बड़ी संख्या में भील और मीणे एकत्र हो रहे हैं और उन्हें राजपूतों के साथ समान पद देकर, हिन्दू-सेना में भर्ती किया जा रहा है। यदि राणा का पक्ष बलवान बनता रहा तो जिन-धर्म की उन्नति रुक जाएगी।'

'परन्तु राणाजी ने कभी जिन धर्म के विरुद्ध कोई आदेश नहीं दिया और न कोई शासनाज्ञा ही प्रकाशित की। उन्होंने तो सदैव जिनालयों के सम्मान का ध्यान रखा है।"

लेकिन श्रेष्ठि, आपको विदित है, राजपूतों के पास धन का अभाव है, और जिसके पास धन नहीं, वणिक उसका मित्र नहीं। राजपूतों में नीति का अभाव है। ये लोग सिर्फ लड़ना, मारना और मरना जानते हैं। जब कि यवन युद्धभूमि में छल, कपट और धोखे से काम ले रहे हैं ये लोग धर्म-युद्ध के नशे में बेसुध हैं।"' मूलतया इनका धर्म और कर्त्तव्य हिंसामय है और हमारे जिनधर्म के सर्वथा विपरीत है। आप यदि औघड़, अवधूतों और बाबाओं के काम-कलाप देखें तो आपका अहिंसक मन करुणा से द्रवित हो जाएगा। इसलिए हमारी वणिक

बुद्धि तो यही सम्मति देती है कि हमारा धार्मिक और आर्थिक-लाभ यवनों से, लोदियों से, और काबुल के मुग़लों से सम्पर्क साधने में है। इससे हम, मुसलमानों की मदद से हिन्दुओं को बलवान बनने से रोकते रहेंगे और विजयी होकर साँगा को देश का शासक सम्राट् न बनने देंगे। मेरे ख्याल में यही आता है कि राणाजी भारतवर्ष के सम्राट् बनना चाहते हैं। यदि वे अपने कार्य में सफल हो गए तो यकीन मानिए इस देश से जिन-धर्म की अहिंसक पताका सदा के लिए ओझल हो जाएगी।"

"इसका आशय यह निकला कि हम लोदियों और मुग़लों से हार्दिक मैत्री रखें। उन्हें धन-दौलत के बदले समाचार बेचते रहें। उनसे गुलामों का व्यापार करते रहें। राजपूतों को निर्बल बनाए रखने के लिए ये उपाय उत्तम हैं। वैसे हम, राजपूतों में पारस्परिक फूट फैला कर, द्वेष और ईर्ष्या जगाकर, उन्हें एक-दूसरे के खानदानी दुश्मन बना सकते हैं और सूरजसिंह, हमें यही करना होगा। मेरी धर्म प्राण आँखों में महाकाल के इस मंदिर की यह विशाल पताका जलते हुए छुरों की तरह चुभ रही है। मैं चाहता हूँ, उज्जयिनी में, विश्व में, सबसे बड़ा जिन-मंदिर बने। तुम्हें तो मालूम है, जब यह हमारा प्रासाद बन रहा था तब इसकी ऊँचाई को महाकाल के मंदिर से अधिक न बढ़ने देने के लिए ब्राह्मणों ने कितना विकराल विरोध किया था? लेकिन मुनि शांतिसागरजी महाराज ने मालवा के सूबेदार, नहीं भूलता हूँ—सुलतान मुहम्मद प्रथम से कह-सुनकर इस प्रासाद का पाँचवाँ, छठवाँ और सातवाँ तल्ला बनने दिया। बनने का आदेश पा लिया। अन्यथा, ये बम्हन तो, हमें यहाँ से भगाने पर तुले हुए थे। अतएव, राजपूतों से मौखिक सहानुभूति और प्रेम रखते हुए, हम भीतर ही भीतर उनकी जड़ काटते रहना चाहिए। देश में हिन्दुओं के शासन की स्थापना के संकट से सावधान रहना चाहिए।

"धन्य, धन्य! महाश्रेष्ठि धन्य! आपने मेरे निवेदन को चमका दिया! मैं जो कुछ कह रहा था शायद वह श्रीमंत के मन में भी था..."

"... हां ..." श्रेष्ठि ने झिझकते हुए स्वीकृति दी—"...प्रत्येक अच्छी बात प्रत्येक अच्छे आदमी के मन में रहती है।"

"श्रीमत, आपको, इसलिए कि आप जिन-धर्म के, जिन-सम्प्रदाय के महाप्राण नेता हैं, एक और, अन्य संकट से परिचित रहना चाहिए। ऐसी मेरी विनम्र कामना है।"

"सूरजसिंह, निःसन्देह आप अपनी अभिलाषा प्रकट कीजिए।"

"श्रीमत, यह कापालिक हमारे मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है।... जब तक यह काँटा नहीं निकलेगा ..." और सूरजसिंह ने अपने एक हाथ की एक उँगली पर दूसरे हाथ की दूसरी उँगली से काटने का संकेत किया। अहिंसा के इस अपूर्व प्रस्ताव को श्रेष्ठि ने सहर्ष स्वीकार किया, परन्तु कुछ दुविधा थी, सो पूछा—

"किन्तु कैसे?"

"बतलाऊँगा बाद में।"

"लेकिन याद रखना संसार में यह सबसे कठिनतम कार्य है कापालिक पर हाथ उठाना—हिमाचल को फूँक से उड़ाने की कोशिश है।"

"सूरजसिंह, वैसे मुझे तुम्हारी सूझ-बूझ पर पूरा विश्वास है। जितना चाहो, धन कोषपाल से ले सकते हो।"

: ७ :

घण्टनाद ने सांगा को जगा दिया ।

हल्की-सी झपकी उसे आगई थी । सहसा घन् घन् की सघन ध्वनि उठी । पहले वह विशाल घण्टराज के घेरे में घहराई फिर पवन से छूटी हवाओं की तरह अम्बर में ऊँची उठी और वहाँ वायुमण्डल के अन्तिम छोरों को छूकर तेजी से नीचे गिरी और पर्वतमालाओं की गहन कन्दराओं के कानों में 'झान्या-झान्या-झुई' करती हुई पठार के मैदानों पर छा गई ।

इसी समय सांगा की आँख खुली ।

वह भूखा ही सो गया था ।

उसे याद आया प्रातःकालीन कलह के कारण विषाद का जो वातावरण बन गया था, उसके साए में किसी कुमार ने भोजन ग्रहण नहीं किया और न किसी ने एक-दूसरे से आग्रह ही किया ।

भाभीजी ने दो-तीन बार प्रयत्न किया । फिर वे चली गईं ।

नानीजी होतीं तो बात और थी । वे तब तक चैन न लेतीं, जब तक सभी राजकुमार उनकी देखतीआँखों भोजन न कर लेते । उनके स्नेह और दुलार में अपरिमित शक्ति थी और उनकी घृणा और प्रति-

हिंसा मे अनन्त बल था। उनके स्वभाव के दो ध्रुव थे—प्रेम और घृणा।

नानीजी जिससे प्रेम रखतीं—वह अन्तहीन, असीम प्रेम का पात्र बनता और जिससे वे घृणा करती, उसे अपार घृणा का स्वामित्व स्वीकार करना पडता।

साँगा को वे बहुत चाहतीं। उसे जी भर प्यार करतीं।

पृथ्वीराज उन्हे जरा पसद न था। उससे वे उतनी घृणा करती जितनी एक राजा अपने शत्रु राजा से करता है। इस घृणा का परिणाम था कि मरते-समय उन्होने सांगा और पत्ता के नाम भरपूर धनराशि लिखवाई, परन्तु पृथ्वीराज और जयमल को कानी कौडी भी न दी।

आजीवन तो नानीजी ने अपनी प्रवृत्ति की सुरक्षा का ध्यान रखा ही मरणोपरान्त भी वह अपनी परम्परा मे अखड रहे इसका पूरा प्रबन्ध अपने उत्तराधिकारी पत्रक के द्वारा कर गईं।

पृथ्वीराज जितना वीर था उसका स्वभाव उतना ही कायर था। उसका मन उसके तन के विपरीत था।

उसमे अतुल शारीरिक बल था परन्तु मनोबल का सर्वथा अभाव था।

साँगा से उसकी यो भी अनबन रहती थी।

अब इस अनबन ने वैर का रूप धारण कर लिया।

साँगा सौतली माँ का पुत्र, उसका भाई था।

साँगा की माँ झाला राजकन्या थी।

पृथ्वीराज माता और विमाताओं को मिलाकर, कुल ग्यारह माताओं में-से किसी का भी प्रिय नहीं था। तरह भाइयो मे सिर्फ जयमल ही उसे चाहता था।

जितना वह अप्रिय था साँगा उतना ही प्रिय था।

पृथ्वीराज क्लान्त और उद्भ्रान्त था।

साँगा अक्लान्त और शान्त था।

फिर भी तरहा भाई—तरह रत्नदीपो की भाँति झिलमिला रहे

थे। उनके सुकोमल तेज से मेवाड के राज प्रासादो के प्रांगण प्रकाशित थे। रुद्र और आदित्य के समान वे सुशोभित थे।

सांगा ने सोचा—

नानीजी ने पृथ्वीराज को कुछ न देकर अच्छा नहीं किया। तो मैं ही अपने भाग का एक भाग उसे दे दूंगा। क्षत्रिय के लिए तलवार का महत्त्व है, धन-दौलत का नही। धन और धरती तो वह अपनी भुजाओ के पराक्रम से अनन्त और असीम प्राप्त कर लेगा।

किन्तु पृथ्वी-दादा को, क्या यो अपना जी छोटा करना चाहिए? वे हम सभी भाइयों मे बडे हैं तो क्या उनका हृदय छोटा होना चाहिए?

आखिर बडा कहते हैं किसे? उसी को जिसका हृदय बडा है।

—जा अधिक देता है।

जो अधिक लेता है वह अधिकाधिक छोटा है।

नानीजी के मुँह से सुनते सुनते ही पृथ्वीदादा तलवार लेकर मुझ पर टूट पडे!

मगर बीच मे काकाजी सूरजमल कूद पडे।

उनके साथी सारगदेव दौड।

मैं बच गया।

—मैंने वार नही किया। दादा पर हाथ उठाऊँ? मेरी तलवार म्यान से बाहर आती ही नही। हाथ मूंठ पर जाता ही नहीं।

मैं भलीभाँति बता सकता हूँ कुरुक्षेत्र म बेचारे अर्जुन की क्या दशा हुई होगी, जब उसने, मेरी तरह अपने सामने चारोओर भाई ही भाई देखें होंगे? भ्राता, चाचा मामा, फूफा साल बहनोई और भाजे भतीजे के अतिरिक्त कौन था उसके सम्मुख?

जो अपना था, वह वैरी था!

यानी वैर अपने आप से था।

—शत्रु कहीं बाहर नही अपने ही भीतर बैठा था!

सबसे पहले यदि किसी को मारना था तो अपने मन को मारना था।

बेचारा अर्जुन !

मन ने कहा—

और बेचारा सांगा !

हाँ, बेचारा सांगा !!

आखिर, इस विषाक्त वातावरण का कारण क्या है ?

मन ने उत्तर दिया—

राज्य—धन और धरती ।

हृदय ने निर्णय दिया—

मैं दोनों को छोड़ दूँगा। अपने पूर्वजों के विशाल साम्राज्य को त्यागकर, उसकी सीमा से दूर, कहीं चला जाऊँगा।

क्या प्रभु रामचन्द्र ने—हमारे ही रघुवंशी, सूर्यवंशी पराक्रमी पूर्वज ने शासन के राज्य का परित्याग नहीं किया ? नारियल का जल पीकर जिस प्रकार पक्षी फल को फेंक देता है, उसी प्रकार श्रीराम ने राजसिंहासन छोड़ दिया !

इस हेतु कि श्री भरत से विद्वेष न हो।

सहोदर का बाण सहोदर की कण्ठमणि का छेदन न करे !

भाई की तलवार भाई के गले पर न गिरे !

सांगा शैया से उठा और बाहर उद्यान में आ गया।

उसके आकर्णान्त विशाल लोचनों के सम्मुख प्रकाश के प्रतिबिम्ब तैरने लगे। मन में आह्लाद के उत्स फूट चले !

उसने निश्चय कर लिया—वह वन में चला जाएगा।

पिताजी—महाराणा रायमल्ल के चर वन में भी उसे ढूंढ लेंगे।

शंका उठी !

वन में ढूंढ लेंगे ?

सांगा अज्ञातवास करेगा ! साधारण जीवन व्यतीत करेगा। छिप कर रहेगा। किसी से न कहेगा कि वह कौन है ?

'गरीब गडरिया हूँ श्रीमान् !'

उसने मन ही मन दुहराया और उसे हँसी आ गई।

आज भोर के बाद यह पहली हँसी थी। इसलिए तो उसे अच्छी

लगी। और न तो वह खूब हँसा था खिलखिलाया था। सभी भाइयों के मन शान्त थे। कोई उद्विग्न नहीं था। कोई क्षुब्ध नहीं था।

उन शूद्र-कन्याओं को जलाशय की राह में ही रोक कर कुमार सभी प्रसन्न हुए थे।

तीर-कमान से उनकी काली चाल कलशियाँ तोड़ने की प्रतियोगिता में मानो प्रत्येक कुमार दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहता था।

सांगा ने किसी की मटकी नहीं तोड़ी।

जिस पात्र से किसी की प्यास बुझती है उसे क्यों कर नष्ट किया जाए? —मुझे उस वेला यही विचार आया।

काकाजी उधर से गुजरे। उन्हें देखकर वह शूद्र-कन्या जिसको उसकी सहेलियाँ राजो या किसी ऐसे ही नाम से पुकार रही थी, ढेर होगई।

बोली—

कुमार की जय हो अन्नदाता आपके चाँदी और चाँदनी की खेती है। हम धूल और धूप में पदा होते हैं और वही हमारी कमाई है। हम नीच हैं और आप उच्च हैं

तब छोकरी बड़-बढ़कर बात क्या बनाती है? बीच में पृथ्वीराज ने कहा था।

अन्नदाता प्रभु की संतान हैं और हम मनुष्य की।

तब दूसरी सहेली ने बीच में ही कह दिया था —

मनुष्य को क्या प्रभु की संतान मार डालेगी?

यह तक सामन्तराज सूरजमल का भी गया था। उन्होंने पृथ्वीराज और अन्य कुमारों को रोक दिया लेकिन पृथ्वीराज ने इतना अवश्य कह दिया था—

शूद्र, तुझे मालूम है सामन्तकुल-पुत्रों का यदि तुझ सी शूद्रा उपदेश देने का दुस्साहस करे तो जानती है उसका दण्ड क्या है?

दण्ड की कल्पना कर राजो काँप गई परन्तु अपने आक्रोश को आयु की अल्पता के कारण वश में नहीं रख पाई—

"ऐसे अपराधियों की जीभ काट ली जाती है ।"

"फिर ?"

"यदि मेरी जीभ काटने से तुम्हें सन्तोष हो तो मैं प्रस्तुत हूँ ।"

तब यहां कुहराम मच गया । सामन्तराज को भी क्रोध आया कि एक शूद्र-कन्या इतनी धृष्टता करे ।

उसके अपराधिन और पापिन होने के लिए यही क्या पर्याप्त नहीं है कि वह शूद्रा है !

सेवकों ने ढेले मार मार कर शूद्र-कन्याओं को वहाँ से भगा दिया। भागती हुई लड़कियों के गोल में जब-तब राजकुमारों का छोड़ा हुआ तीक्ष्ण बाण, सनसनाता हुआ आ गिरता और वे घबराकर चिल्लाकर, तितर बितर हो जातीं ।

दूर से एक अट्टहास उठता !

फिर दूसरा, तीसरा और चौथा बाण आता । एक एक क्षण उन शूद्राओं के लिए दुष्कर हो गया था। तब मैंने अपने बाणों से उनके बाणों को बीच में ही काट गिराया। इस पर पृथ्वीराज ने मुझे ललकारा—

मैंने उत्तर में एक और बाण चलाया ।

उत्तर न पाकर उसने ऊँचे स्वर में ही कहा—

'जो शूद्र है, वह सदैव शूद्र का ही साथ देता है । एक दिन इस शूद्र को मज़ा चखाऊँगा ।"

पृथ्वीराज के इस कुत्सित प्रण ने मेवाड़ की पवित्र धरती में फूट के बीज बो दिए ।

पृथ्वीराज जब इस प्रकार वाक्-व्यूह की वृथा रचना कर रहा था, जयमल ने स्मरण दिलाया—

"दादा ज्योतिषी महाराज के आश्रम नहीं चलना है ?"

"चलना तो था । इन शूद्राओं ने शकुन खराब कर दिया। पृथ्वीराज ने उत्तर दिया ।

जयमल ने घोड़े पर बैठे हुए कहा—

'दादा, वीरो का उत्साह-घोष ही उनका मुख्य शकुन है।"

'हाँ, तुमने यह सुन्दर स्वर्णसूत्र सुनाया। आओ चलें।"

"इनसे भी पूछ देखो ये भी अपना भविष्य जानते हैं? या इन्हें बोध हो गया कि आजीवन शूद्रो का समर्थन करना है! कभी ये भील-मीणा का पक्ष लेते हैं, कभी गुर्जर-आभीरो का!"

मैंने जयमल से कहा--

'मैं भी ज्योतिषी महाराज मंगल मेनारिया के आश्रम तक अवश्य आऊँगा।"

हम चल पड़े!

पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह—तीनो राजकुमारो ने मंगलजी के आश्रम की ओर अपने घोड़ो की बागडोर मोड़ दी।

तीनों अश्व पवनवेग से उड़ चले।

"ऐसे अपराधियों की जीभ काट ली जाती है।"
"फिर ?"
"यदि मेरी जीभ काटने से तुम्हें संतोष हो तो मैं प्रस्तुत हूँ।"
तब बड़ा कुहराम मच गया। पृथ्वीराज को भी क्रोध आया कि एक शूद्र-कन्या इतनी धृष्टता करे !
उसे अपराधिन और पापिन होने के लिए यही क्या पर्याप्त नहीं है कि वह शूद्रा है !
सेवकों ने ढेले मार मार कर शूद्र-कन्याओं को वहाँ से भगा दिया। भागती हुई लड़कियों के गोल में जब-तब राजकुमारों का छोड़ा हुआ तीक्ष्ण बाण, सनसनाता हुआ आ गिरता और वे घबराकर चिल्लाकर, तितर बितर हो जातीं।
दूर से एक अट्टहास उठता !
फिर दूसरा, तीसरा और चौथा बाण आता। एक एक क्षण उन शूद्राओं के लिए दुस्तर हो गया था। तब मैंने अपने बाणों से उनके बाणों को बीच में ही काट गिराया। इस पर पृथ्वीराज ने मुझे ललकारा—
मैंने उत्तर में एक और बाण चलाया।
उत्तर न पाकर उसने जैसे स्वतः ही कहा—
"जो शूद्र है, वह सदैव शूद्रा का ही साथ देता है। एक दिन इस शूद्र को मजा चखाऊँगा।"
पृथ्वीराज के इस कुत्सित प्रण ने मेवाड़ की पवित्र धरती में फूट के बीज बो दिए।
पृथ्वीराज जब इस प्रकार वाक्-व्यूह की वृथा रचना कर रहा था, जयमल ने स्मरण दिलाया—
"दादा ज्योतिषी महाराज के आश्रम नहीं चलना है ?"
"चलना तो था। इन शूद्राओं ने शकुन खराब कर दिया। पृथ्वीराज न उत्तर दिया।
जयमल ने घोड़े पर बैठते हुए कहा—

'दादा, वीरों का उत्साह-योग ही उनका मुख्य शकुन है।

'हाँ तुमने यह सुंदर स्वर्णसूत्र सुनाया। चलो चलें।

'इनसे भी पूछ देखो ये भी अपना भविष्य जानते हैं ? या इन्हें बोध हो गया कि आजीवन शूद्रों का समर्थन करना है ! कभी ये भील मीणों का पक्ष लेते हैं कभी गुजर-आभीरों का !

मैंने जयमल से कहा—

मैं भी ज्योतिषी महाराज मंगल मनारिया के आश्रम तक अवश्य आऊँगा।

हम चल पड़े !

पृथ्वीराज जयमल और सग्रामसिंह—तीनों राजकुमारों ने मंगलजी के आश्रम की ओर अपने घोड़ों की बागडोर मोड़ दी।

तीनों अश्व पवनवेग से उड़ चले।

: ८ :

ज्योतिषाचार्य मगन मेनारिया अपने समय का प्रसिद्ध ज्योतिषी था। काशी में पंडितराज प्रभाकर शास्त्री पाद-पद्मों में पच्चीस वर्ष बैठकर, मगन ने वेद-वेदांग, न्याय ज्योतिष, षट्दर्शन और साहित्य की शिक्षा ग्रहण की थी।

काशी से सीधा मेदपाट (मेवाड़) न लौटकर मगन पंडित हिमालय की ओर चला गया था, जहाँ उसने बारह वर्ष तक विकट तप किया और तप पूर्ण होने पर दिगम्बर रूप में वह भूतस्थान (भूतान) में प्रविष्ट हुआ और वहाँ यक्ष, किन्नरों और गंधर्वों के प्रदेश में उसने तन्त्रविद्या में सिद्धि प्राप्त की।

लोग कहते थे—मगल महाराज को 'कर्णसिद्धि' भी प्राप्त है, जिसके कारण यक्षगण उनके कानों में इच्छित संकेत देते रहते हैं। इसके अतिरिक्त मन्त्रबल से दिन को रात और रात को दिन बना देना मङ्गल महाराज के लिए बाएँ हाथ का खेल है। एक बार महाराणा कुम्भकर्ण की राजसभा में पण्डितों के मध्य शिरोमणि के समान मङ्गल महाराज भी विराजित थे। प्रसङ्गवश महाराज के मुख से निकल गया कि 'आज पूर्णिमा है।' विरोधी पण्डितों ने कहा—'आज पूर्णिमा नहीं है पण्डितराज, चतुर्दशी है।"

"आपका भ्रम है, आज पूर्णिमा ही है।'

'तब तो रात्रि में पूर्णचन्द्र का उदय ही सारी समस्या का निर्णय कर देगा कि आज चतुर्दशी अथवा पूर्णिमा।"

सभा पण्डितों ने बात को बढ़ती देख यही स्वीकार किया कि चन्द्रोदय की प्रतीक्षा की जाए।

निशागमन होते-न होते मैदानों में दर्शनार्थियों के समूह के-समूह घरों से निकलकर आने लगे। आबाल वृद्ध-युवा—सबके मन में कौतूहल था—ग्रावाश किसके पक्ष को सत्य सिद्ध करेगा? विपक्षी पण्डित भी गणित गणना में चूक नहीं हैं और मङ्गल महाराज को कैसे भ्रम कह दें?

जन-मण्डली की दृष्टियाँ गगन की ओर लगी थीं मानो चन्द्र का पाठक चकोर निर्निमेष दृष्टि से अम्बर की ओर देख रहा हो।

ठीक समय पर पूर्णचन्द्रोदय हुआ। दूसरी पूर्णिमाओं की भाँति, यह भी अपनी सोलह कलाओं में खिलकर अमृत तरंगिणी रजत चन्द्रिका से चौदह भुवन को प्रभावित कर रहा था।

जन-समूह मङ्गल महाराज की जयजयकार के घोष घहराता लौट गया। विरोधी पण्डितों के मुख म्लान हो गए।

दूसरे दिन महाराजजी ने पण्डितराज से एकांत में पूछा—

'देवता, परसों आपने स्वयं मुझे अपने श्रीमुख से बतलाया था कि आज त्रयोदशी है, तो क्या चतुर्दशी और पूर्णिमा मिलकर एक होगई?

'दीवानजी, नृपेन्द्र के सम्मुख मिथ्या भाषण नहीं करूँगा। कल अवश्य चतुर्दशी थी परन्तु भरी सभा में सजीवनी की तरङ्ग में मेरे मुख से निकल गया—आज पूर्णिमा है। राजन्, चर्म की तो यह देही है और चर्म की ही जिह्वा है, अतः यह फिसल जाए तो क्या आश्चर्य!"

महाराज मुसकराए—

"कैसे फिर आपके वचन की रक्षा हुई?'

"गुरु का प्रसाद ! एकलिंग की कृपा । मैंने तीसरे प्रहर तक भमिन विचार किया फिर निणय, कि क्यो न म गवल का प्रयोग करू ? निदान, मैंने एक कांस्य पात्री को अभिमन्त्रित किया और उसे आकाश की ओर, च द्रविम्ब पर छा जाने का आदेश दिया । श्रेष्ठ ! समय पर चद्रिका चमक उठी ।

"धन्य, महाराज धन्य, महाराणा ने हर्षोल्लास व्यक्त किया !

× × × ×

मङ्गल महाराज के आश्रम के शुक-सारिका तीनो राजकुमारों को देखकर स्वस्ति मन्त्रा का पाठ करने लगे ।

जयमल को शुका का धाराप्रवाह सस्कृत पाठ विस्मयजनक प्रतीत हुआ । बड प्रयास पर भी वह सस्कृत की पाँच पोथियाँ पूरी तरह नहीं पढ पाया था ।

आश्रम के द्वार पर मङ्गल-कलश धारिणी ब्राह्मण कन्याओ ने कुमारा का स्वागत किया ।

कुमारा ने मुट्ठी भर भर स्वणमुद्राएँ उन पर न्योछावर की । और घोडे से उतर कर, अपने शस्त्रादि वहीं छोडकर उन्होंने आश्रम के अतिथि-कक्ष म प्रवेश किया ।

सेवका ने तीनों अश्वा को विशाल वटवृक्ष की छविमान छाया म बाँध दिया ।

तीनो कुमारा को कुछ देर प्रतीक्षा करनी पडी, क्योंकि मङ्गल महाराज ध्यानस्थ थे ।

बाहर द्रुतगामी अश्व क खुरा की खट-खट सुनाई दी और ऊँचे उठने धूलिचक्र दृष्टिगोचर हुए । एक प्रचण्ड सैंधव पर सवार सूरज मल वहाँ आए । उनके पश्चात् कुछ ही पल बीते होंगे कि एक दूसरे चपल तुरङ्ग पर सवार उनका चाचा सारङ्गदेव अञ्जावत भी वहाँ आ पहुँचा ।

"काकाजी आप ? पृथ्वीराज ने सूरजमल से प्रश्न किया ।

"वत्स, मैंने, सोचा, महाराज की सेवा मे उपस्थित होकर मैं भी

तुम्हारे साथ अपने भविष्य का संकेत प्राप्त करूँ ।

'और बड़े काकाजी (सारंगदेव) भी आ पहुँचे हैं। इन्हें शायद अपनी जागीर के बारे में पूछताछ करनी है।'

सारङ्गदेव बोला—

'ठीक कहते हैं आप। भैंसरोडगढ़ की जागीर जबसे मुझे मिली है, मैं परेशान हूँ। कभी चैन से नहीं रह पाया।'

पृथ्वीराज ने सुनकर होठ काटा क्योंकि वह सारङ्गदेव से मन ही मन जलता था। और नहीं चाहता था कि महाराणा सारङ्गदेव को पाँच लाख से अधिक वार्षिक आय की जागीर प्रदान करें। अतएव वह समय-समय पर जागीर के काम में रोड़े अटकाता था।

'भाई भाई का वैरी बन रहा है कैसा समय आ गया है।' सूरजमल ने उसाँस लेकर कहा।

पृथ्वीराज जलभुन कर रह गया।

लेकिन साँगा को न पृथ्वीराज की कुटिलता पसन्द थी, जो ताप व्यक्त कर रही थी और न सूरजमल की सरलता जो संताप व्यक्त कर रही थी। वह तो यही चाहता था कि सब मौन और शान्त रहें।

भाइयों में किसी प्रकार का स्वार्थ विग्रह न हो। मेवाड़ की भूमि और अधिक अब अपने ही दुलारों के शोणित से रंजित न हो। मेवाड़ को आवश्यकता है संगठन और एकता की।

"एक माला के मनके हैं हम सब। फिर कौन छोटा कौन बड़ा है। माँ की समदृष्टि में सभी लाल समान हैं। यह तो हमारा विग्रह है, जो हमें दम्भी और दुर्विनीत बनाता है।' साँगा प्रायः यह कहा करता था और इसीलिए उसके साथी उसे साधु साँगा कहा करते थे। परन्तु कोई 'साधु' कहे या 'असाधु', साँगा को इसकी चिंता नहीं थी। उसे तो केवल भारत के भावी की चिंता थी। उस भारत की, जिसे एकता के सूत्र में संगठित करना चाहता था। जिसे एक ही छत्र की छाया में रक्षित रखना चाहता था। 'एक देश, एक भेष, एक भाषा, एक पताका और एक प्राण'—एकत्व का उसका प्रथम मन्त्र था।

"एकता राष्ट्र की प्रथम आवश्यकता है, बहादुर लाल ने 'एकता' का महत्त्व कभी नहीं कम किया था। वह कहा करता था—

'जो 'एक' है उसे मनुष्य भी नहीं हरा सकता ! कभी यह देश किसी से नहीं हारा। इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता जब किसी बाहरी शत्रु ने इस देश पर विजय पाई हो और इसे हराया हो ! जब जब यह हारा, जब-जब यह पराजित हुआ—'अपने पराये'! अपने ही आंतरिक शत्रु ने, अपने ही बांधवों ने, इसके अपने पुत्रों के विरुद्ध गद्दारी की। पुण्य, पवित्रता और धर्म की—यह देश चाहे जितनी चर्चा करे, इस देश में अधम और हीनकर्मा, अधर्मों और देशद्रोहियों की कमी नहीं रही है। शूरवीरता का जितना बखान यहाँ किया जाता है, कायरता उतनी ही अधिक यहाँ है। युद्ध से मुद्रा, बलिदान और विजय के व्याख्यान देना और मन में आत्मा में स्वार्थ और शत्रु से समझौते के स्वप्न संजोना इस देश के अनेक महत्त्वाकांक्षियों की पापपूर्ण, प्रबल परम्परा रही है !

इस भावावेग में वह रुकता नहीं—

"इसलिए संगठन और सघटन पहली ज़रूरत है। बिना स्वार्थ त्याग के संगठन नहीं होगा। बिना बुराइयों और कुरीतियों को छोड़े नवीन सघटना नहीं होगी। नवनिर्माण और अभिनव अभ्युदय के अभिलाषी इस महान् और पवित्र देश को नूतन विधान चाहिए, जिसमें शक्ति व्यक्ति की स्वच्छन्दचारिता की कारा की बंदिनी न हो। सत्ता उच्छृङ्खल राजपुत्रों के विलास की वस्तु न हो। शक्ति हो या सत्ता, उसका स्रोत समाज के नियन्त्रण में रहे। व्यक्ति पर समाज का अनुशासन रहे। व्यक्ति अपनी इकाई में मुक्त और आत्मनिर्भर हो परन्तु समाज के प्रति पूर्णरूपेण उत्तरदायी और त्यागभावना से भरपूर हो। और समाज

'समाज' सोचा करते बिना न रहता—

"समाज एक स्वप्न है मनुष्य के अन्तःकुद्ध दिव्य और अलौकिक है, वह उसके समाज की समृद्धि और समता में अभिव्यक्त होता है।

समाज व्यक्ति का स्वामी है और साथ ही उसका सेवक भी ! सागर का ममत्व अपार है बिन्दु के प्रति । सागर यह नहीं कहता कि बिन्दु का भिन्न अस्तित्व नहीं है, या उसका अपना महत्त्व नहीं है अथवा बिंदु के न होने से भी सागर बन सकता है !....

"बिंदु सिंधु का प्रतीक है, यही बिंदु की गरिमा, महिमा, और यशस्विता है । और सिंधु बिंदु के सर्वस्व के समर्पण को सहर्ष स्वीकार करे, यह सिंधु के अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक है । बिंदु मिट जाएगा तो सिंधु भी मिट जाएगा । सिंधु न रहेगा तो बिंदु भी न रहेगा । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । एक दूसरे के अभाव की पूर्ति करता है ।

"और कोई यदि कहे कि बिंदु छोटा है और सिंधु बड़ा है तो, छोटा होने के नाते बिंदु का दायित्व भी छोटा है उस पर कोई नियम-बन्धन नहीं । वह चचल कितना ! और सिंधु, उसका दायित्व अनन्त ! दायित्व की गुरुता के कारण ही वह विराट् है । उसके बन्धन कितने ! मर्यादा में वह रहता है कि कभी सीमा नहीं छोड़ता, तट का व्रत नहीं तोड़ता !"

"सौंगा से कोई कहे तो यह सौ बरस तक व्यक्ति, समाज, देश युद्ध और शान्ति पर बोलता रहे। वर्षों तक शास्त्रों और शस्त्रों की चर्चा करता रहे । न केवल शस्त्र की झंकारें वरन् शास्त्रों के अनेकानेक मन्त्रों की तरगें भी उसका मन मोहती हैं ।

पण्डितराज मगल मेनारिया को देखकर पहले काकाजी —सूरजमलजी ने दण्डवत् प्रणाम किया । फिर बारी बारी से सारंगदेव और तीनों कुमारों ने दण्डवत् प्रणाम किया ।

पण्डितराज मगल महाराज ने राजपुत्रों के नाना उपहार स्वीकार किए, जिन्हें उनकी पोषिता कन्या गौरी उठाकर भीतर ले गई ।

राजकुमारों ने अपना मतव्य प्रकट किया ।

ज्योतिषी ने कहा—

"मुझे आप सभी कुमारों की जन्म-पत्रियाँ देखकर प्रसन्नता होगी ।

वाह, इससे अधिक आनन्द का विषय और क्या हो सकता है ! मेरी आयु इस समय दो सौ तीस वर्ष से कुछ अधिक ही है। मेवाडपति *भगवान् एकलिंग के सभी पुण्यश्रेय दीवान की कुण्डलियाँ मैंने देखी हैं* या अपने हाथों अंकित की हैं। प्रत्येक महाराणा, सामन्त और श्रेष्ठि, प्रत्येक राजपुत्र, अधिकारी और कुलपुत्र विगत युगों में यहाँ आता रहा है। " वृक्ष के समान अति वृद्ध वह ज्योतिषी मुसकराया—

"अब तो नवयुग के आप नवयुवकों को इस विद्या पर विश्वास नहीं रहा।"

"महाराज, विश्वास नहीं होता तो यहाँ तक आते ?" पृथ्वीराज ने कहा।

ज्योतिषी ने श्वेतकेशों से अलकृत अपना शीश हिलाया। अब वह जन्मपत्री देखने लगा।

पृथ्वीराज व्यग्र हो रहा था। पहले उसने अपनी—जन्मपत्री ज्योतिषी के चरणों में रखी। वह, था भी, स्वभाव से उतावला और जल्दबाज था। लोग उसे 'उड़णा पृथ्वीराज' भी कहते थे।

ज्योतिषी ने कुंडली को देखा।

फिर दृष्टि पृथ्वीराज के चेहरे पर डाली।

धीमे धीमे शीश को गति दी।

मुँह खोला—

"कुमार पृथ्वीराज आप बड़े प्रतापवान् और विक्रमवंत हैं। आपके पराक्रम का प्रवाह अखण्ड रहेगा।"

इतना ही कहा और अब जयमल की जन्मपत्री पढ़ने लगा। पृथ्वीराज सहज ही पीछा छोड़ने वाला नहीं था—

"महाराज, मैं कितनी अवधि तक मेदपाट पर शासन करूँगा ?

'शासन, सत्ता, भाग्य बल और भुजबल पर निर्भर है। ज्योतिष तो एक गणित है, कुमार ! वह भला, भाग्य के अगणित की गणना कैसे कर सकता है ! फिर भी आपके ग्रहयोग अनुकूल हैं—तृतीय स्थान में मंगल है। छठे स्थान में सूर्य है और ग्यारहवें स्थान में

उच्च हानि है। आप सदैव विजयी होंगे, किन्तु पिता की विद्यमानता में ही आपके देहात का योग है।"

सारंगदेव और सूरजमल भी चुपचाप सुनते रहे।

तब पृथ्वीराज का मुख म्लान हो गया—ज्योतिषी ने यह नहीं बतलाया कि वह सिंहासन का स्वामी कब बनेगा?

पंडितराज ने जयमल से कहा—

"पृथ्वीराज से आप में कम पराक्रम है। अकारण अपने प्राणों को संकट में न डालना! आपका मृत्युयोग भी विकट है। पिता का आप पर बहुत प्रेम है, उन्हें आपका मरण-संताप सहना पड़ेगा।"

साँगा की बारी सबसे बाद में आई। पंडितराज ने साँगा की कुण्डली देखकर हर्ष प्रकट किया—

"प्रकृति अति गम्भीर है, शान्त है। स्वार्थ छू भी नहीं गया। अत्यन्त क्षमाशील और उदार! युद्ध-कौशल में अद्वितीय और रणांगण में सदैव अपराजेय! विजयश्री नित्य वरण करेगी!"

ज्योतिषी मौन रह गया। परन्तु उसकी दृष्टि पत्री पर लगी रही।

पृथ्वीराज ने पूछा—

"महाराज, अब क्या देख रहे हैं?"

"एक विशेष विधान है।"

"कौनसा?" पृथ्वीराज ने ही पुनः प्रश्न किया।

साँगा प्रशान्त बैठा रहा। भविष्य के प्रति न उसमें जिज्ञासा थी, न भय था, न आशा न निराशा! वह कहा करता था—"मनुष्य स्वयं अपने भाग्य और भविष्य का निर्माता है।"

ज्योतिषी मुसकरा कर बोला—

"राजकुमार संग्रामसिंह 'संग' की इस जन्मपत्री में राजयोग है। पंचम् और नवम् स्थान में शुभ ग्रह पक्ष में हैं। नवांश में वृहस्पति है।"

"और भी कुछ कहिए। राज्य इन्हें मिलेगा या मुझे?"

"वृहस्पति के पश्चात्' हाँ, आयुष्मान् कुमार, ऐसे शुभ ग्रहों का

बात, इससे अधिक आनन्द का विषय और क्या हो सकता है ? मेरी आयु इस समय दो सौ तीस वर्ष से कुछ अधिक ही है। मेवाड़पति भगवान् एकलिंग के सभी पुण्यश्रेय दीवान की कुण्डलियाँ मैंने देखी हैं या अपने हाथों अंकित की हैं। प्रत्येक महाराणा, सामन्त और श्रेष्ठि, प्रत्येक राजपुत्र अधिकारी और कुलपुत्र विगत युगों में यहाँ आता रहा है। ...' वृक्ष के समान अति वृद्ध वह ज्योतिषी मुसकराया—

"अब तो नवयुग के आप नवयुवकों को इस विद्या पर विश्वास नहीं रहा।'

'महाराज, विश्वास नहीं होता तो यहाँ तक आते ?' पृथ्वीराज ने कहा।

ज्योतिषी ने श्वेतवर्णी श्मश्रु अनवृत्त अपना शीश हिलाया। अब वह जन्मपत्री देखने लगा।

पृथ्वीराज व्यग्र हो रहा था। पहले उसने अपनी—जन्मपत्री ज्योतिषी के चरणों में रखी। वह यों भी, स्वभाव से उतावला और जल्दबाज था। लोग उसे 'उड़णा पृथ्वीराज' भी कहते थे।

ज्योतिषी ने कुंडली को देखा।

फिर दृष्टि पृथ्वीराज के चहरे पर डाली।

धीमे-धीमे शीश को गति दी।

मुँह खोला—

'कुमार पृथ्वीराज आप बड़े प्रतापवान् और विक्रमवंत हैं। आपके पराक्रम का प्रवाह अखण्ड रहेगा।'

इतना ही कहा और अब जयमल की जन्मपत्री पढ़ने लगा। पृथ्वीराज सहज ही पीछा छोड़ने वाला नहीं था—

'महाराज, मैं कितनी अवधि तक मेदपाट पर शासन करूँगा ?'

शासन, सत्ता भाग्य बल और भुजबल पर निर्भर है। ज्योतिष तो एक गणित है, कुमार ! वह भला, भाग्य के अगणित की गणना कैसे कर सकता है ! फिर भी आपके ग्रहयोग अनुकूल हैं—तृतीय स्थान में मंगल है। छठे स्थान में सूर्य है और ग्यारहवें स्थान में

उच्च स्थानि है। आप सदैव विजयी होंगे, किन्तु पिता की विद्यमानता में ही आपके देहात का योग है।"

सारंगदेव और सूरजमल भी चुपचाप सुनते रहे।

तब पृथ्वीराज का मुख म्लान हो गया—ज्योतिषी ने यह नहीं बतलाया कि वह सिंहासन का स्वामी कब बनेगा?

पंडितराज ने जयमल से कहा—

"पृथ्वीराज से आप में कम पराक्रम है। अकारण अपने प्राणों को संकट में न डालना! आपका मृत्युयोग भी विकट है। पिता का आप पर बहुत प्रेम है, उन्हें आपका मरण संताप सहना पड़ेगा।"

सांगा की बारी सबसे बाद में आई। पंडितराज ने सांगा की कुण्डली देखकर हर्ष प्रकट किया—

'प्रकृति अति गम्भीर है, शान्त है। स्वार्थ छू भी नहीं गया। अत्यन्त क्षमाशील और उदार! युद्ध कौशल में अद्वितीय और रणांगण में सदैव अपराजेय! विजयश्री नित्य वरण करेगी!

ज्योतिषी मौन रह गया। परन्तु उसकी दृष्टि पत्री पर लगी रही।

पृथ्वीराज ने पूछा—

'महाराज, अब क्या देख रहे हैं?'

'एक विशेष विधान है।'

"कौनसा? पृथ्वीराज ने ही पुनः प्रश्न किया।

सांगा प्रशान्त बैठा रहा। भविष्य के प्रति न उसमें जिज्ञासा थी, न भय था, न आशा न निराशा! वह कहा करता था—"मनुष्य स्वयं अपने भाग्य और भविष्य का निर्माता है।'

ज्योतिषी मुसकरा कर बोला—

"राजकुमार संग्रामसिंह 'संग' की इस जन्मपत्री में राजयोग है। पंचम् और नवम् स्थान में शुभ ग्रह पक्ष में है। नवांश में वृहस्पति है।'

'और भी कुछ कहिए। राज्य इन्हें मिलेगा या मुझे?"

'वृहस्पति के पश्चात् हाँ, आयुष्मान् कुमार, ऐसे शुभ ग्रहों का

वाह, इससे अधिक आनन्द का विषय और क्या हो सकता है ! मेरी आयु इस समय दो सौ तीस वर्ष से कुछ अधिक ही है। मेवाड़पति भगवान् एकलिंग के सभी पुण्यश्लोक दीवान की कुण्डलियाँ मैंने देखी हैं या अपने हाथों अंकित की हैं। प्रत्येक महाराणा, सामन्त और श्रेष्ठि, प्रत्येक राजपुत्र, अधिकारी और कुलपुत्र विगत युगों में यहाँ आता रहा है। " वृक्ष के समान अति वृद्ध वह ज्योतिषी मुसकराया—

"अब तो नवयुग के आप नवयुवकों को इस विद्या पर विश्वास नहीं रहा।"

"महाराज, विश्वास नहीं होता तो यहाँ तक आते ?" पृथ्वीराज ने कहा।

ज्योतिषी ने श्वेतकेशों से अलंकृत अपना शीश हिलाया। अब वह जन्मपत्री देखने लगा।

पृथ्वीराज व्यग्र हो रहा था। पहले उसने अपनी—जन्मपत्री ज्योतिषी के चरणों में रखी। वह, यों भी, स्वभाव से उतावला और जल्दबाज था। लोग उसे 'उडणा पृथ्वीराज' भी कहते थे।

ज्योतिषी ने कुंडली को देखा।

फिर दृष्टि पृथ्वीराज के चेहरे पर डाली।

धीमे-धीमे शीश को गति दी।

मुँह खोला—

"कुमार पृथ्वीराज आप बड़े प्रतापवान् और विक्रमवंत हैं। आपके पराक्रम का प्रवाह अखण्ड रहेगा।"

इतना ही कहा और अब जयमल की जन्मपत्री पढ़ने लगा। पृथ्वीराज सहज ही पीछा छोड़ने वाला नहीं था—

"महाराज, मैं कितनी अवधि तक मेदपाट पर शासन करूँगा ?"

"शासन, सत्ता, भाग्य भज और भुजबल पर निर्भर है। ज्योतिष तो एक गणित है, कुमार ! वह भला, भाग्य के अगणित की गणना कैसे कर सकता है ! फिर भी आपके ग्रहयोग अनुकूल हैं—तृतीय स्थान में मंगल है। छठे स्थान में सूर्य है और ग्यारहवें स्थान में

उच्च धानि है। आप सदैव विजयी होंगे, किन्तु पिता की विद्यमानता मे ही आपके देहात का योग है।"

सारंगदेव और सूरजमल भी चुपचाप सुनते रहे।

तब पृथ्वीराज का मुख म्लान हो गया—ज्योतिषी ने यह नहीं बतलाया कि वह सिंहासन का स्वामी कब बनेगा ?

पडितराज ने जयमल से कहा—

"पृथ्वीराज से आप मे कम पराक्रम है। अकारण अपने प्राणो को सकट मे न डालना! आपका मृत्युयोग भी विकट है। पिता का आप पर बहुत प्रेम है, उन्हे आपका मरण सताप सहना पडेगा।"

साँगा की बारी सबसे बाद म आई। पडितराज ने साँगा की कुण्डली देखकर हर्ष प्रकट किया—

"प्रकृति अति गम्भीर है, शान्त है। स्वार्थ छू भी नही गया। अत्यन्त क्षमाशील और उदार! युद्ध कौशल मे अद्वितीय और रणागण मे सदैव अपराजेय! विजयश्री नित्य वरण करेगी!"

ज्योतिषी मौन रह गया। परन्तु उसकी दृष्टि पत्री पर लगी रही।

पृथ्वीराज ने पूछा—

"महाराज, अब क्या देख रहे हैं ?"

"एक विशेष विधान है।"

"कौनसा ?" पृथ्वीराज ने ही पुन प्रश्न किया।

साँगा प्रशान्त बैठा रहा। भविष्य के प्रति न उसम जिज्ञासा थी, न भय था, न आशा न निराशा! वह कहा करता था—"मनुष्य स्वय अपने भाग्य और भविष्य का निर्माता है।'

ज्योतिषी मुसकरा कर बोला—

"राजकुमार सग्रामसिंह 'सग' की इस जन्मपत्री म राजयोग है। पचम् और नवम् स्थान म शुभ ग्रह पक्ष मे है। नवाश में बृहस्पति है।"

"और भी कुछ कहिए। राज्य इन्हें मिलेगा या मुझे ?"

"बृहस्पति के पश्चात्—हाँ, आयुष्मान् कुमार, ऐसे शुभ ग्रहो का

• ९

पूर्व दिशा से आनेवाला यात्रिक घोटावापिका के सरोवर को नहीं देख पाता ! दूर-दूर तक फैली सघन अमराइयाँ सरोवर को मानो अपने में छिपाए खड़ी हैं। सरोवर एक शिशु है और अमराइयों में कोई एक उसकी जनेता कोई भगिनी कोई बूआ और कोई मौसी है ! कोई मामी मासी चाची और दादी है ! संसार के जितने मधुरतम सम्बन्ध और रिश्ते हैं सब नारी पर निर्भर हैं ! और इन सम्बन्धी जनियों के दिए कमल फूलों के उपहारों से सरोवर शिशु खेल रहा है ! तट के उस पार चावल और चने के खेत लहरा रहे हैं। पाडनी के कद सी ऊंची ईख मस्ती में झूम रही है जैसे उसका ब्याह है और उसने अपने सिर पर मौर सजाए हैं ! सहेलियाँ हिलमिल कर सुख के गीत गा रही हैं। सरोवर में इन इक्षु-बालाओं की सघन परछाइयाँ पद्मकुमारों से आँख-मिचौनी खेल रही हैं ! और लहर अलग अपना अनूठा नृत्य दिखला रही हैं।

दूर-दूर तक वात-कन्याएँ घाटावापिका के शिव-मन्दिरों के गहन गम्भीर घण्टनादों को अपने अङ्क में उठाकर, विस्तार दे रही हैं ! मानो उनकी माला गूंथ रही हैं !

अमराइयों में पूर्ण प्रशान्ति छाई है। कोकिला कुल-वधुएँ अपने ससुराल से, अभी नहीं आई हैं। जब वे लौटेंगी घोटावापिका की

विस्तीर्ण, प्रफुल्ल, रूपगर्विता आम्रवन-श्री आह्लाद उल्लास मे मजरिता, रस और रास के सम्मोहन गीत सुनेंगी ! अपने ससुराल के हालचाल सुनकर कोकिलाएँ सबको हँसायेंगी । आम्रशाखाओं पर फुदक फुदक कर वे अपनी ननदो की नकल दिखाएँगी और सौतेली सासों की चाल-ढाल का अभिनय दर्शित करेंगी ।

पूर्ण हरित आम्र-तरुओं के मेघ श्याम तन और गोलार्द्ध की प्रकीर्ण परिधि की ओट मे, सरोवर की पनिहारिनें, सामी कलश काली माटी पर एक ओर रख, अपने रसेश्वरों से मिल रही हैं। उन्होंने घुंघरूओं मे अभिनव द्रुमदल खोंस लिए हैं कि वे मुखर किसी से इस बात को कह न दें । आम्रवृक्ष के त्रिशूलाकार तन के सहारे, पीठ टिकाए, गोरी बाँहें विरोधिन शाखाओं तक फैलाए पनिहारिन मुक्त, बिखरी निखरी सी खड़ी हैं । और उनके विशाल दूध भरे, परिपूर्ण पयोधरों को बढ़ती हुई साँस उछाल रही हैं ? जघाओं मे थिरकन है । मन मे लोक का भय है । नयन मे मिलन की लाज है और अधरों पर अमृत के अनन्त महासमुद्र अपनी छाप छोड़ रहे हैं ! इन अधरों की रस-स्नात लाली को पिया के चुम्बनों ने अपने मे समा लिया है और इस अपराध मे पिया के अधरों पर कालिमा लग गई है (नयन-चुम्बन के फलस्वरूप) !

दोपहरियाँ ताल के दर्पण मे देखती, केशराशि गूँथ रही हैं ।

साँसें सोई हैं । नूपुर मौन हैं । पग थिर हैं अङ्ग-अङ्ग से जुड़े हैं । और अनन्तानन्द का अनादि रास तुमुलगति से चल रहा है परन्तु पल-छिन रुके बैठे हैं । रस की क्षिप्रता देखकर काल-समय अपनी चाल भूल गया है ! और मूक द्रष्टा-सा अपने मे बिसरा, खड़ा, देख रहा है ! चपल ताल मे, बावरा सरोज बालाएँ वयसन्धि की लहरों को गिन रही हैं । यौवन-पराग अङ्ग-अङ्ग मे फूट रहा है और मानस मे मधुकरों के प्रति मान मचल रहा है, मुग्धाभ्रान्सी मन स्थिति मे हाय आज अपना समर्पण अपने ही लिए बोझ बन बैठा है !

सिपाही पहरा दे रहे थ । भीतर खेमे मे कुमार मेदिनीराय सोया था। रूपराम और सेवकराम अभी-अभी आए थे । एकओर मुँह

: ९ ·

पूर्व दिशा से आनेवाला यात्रिक घोंटावर्पिका के सरोवर को नहीं देख पाता। दूर-दूर तक फैली सघन अमराइयाँ सरोवर को मानो अपने में छिपाए खड़ी हैं। सरोवर एक शिशु है और अमराइयों में कोई एक उसकी जनेता, कोई भगिनी, कोई बूआ और कोई मौसी है। कोई भाभी, मामी, चाची और दादी है। संसार के जितने मधुरतम सम्बन्ध और रिश्ते हैं, सब नारी पर निर्भर हैं। और इन सम्बन्धो-जनियों के दिए कमल-फूलों के उपहारों से सरोवर शिशु खेल रहा है। तट के उस पार चावल और चने के खेत लहरा रहे हैं। षोडशी के कद सी ऊंची ईख मस्ती में झूम रही है, जैसे उसका ब्याह है और उसने अपने सिर पर मौर सजाए हैं। सहेलियाँ हिलमिल कर सुख के गीत गा रही हैं। सरोवर में, इन इक्षु-कन्याओं की सघन परछाइयाँ पद्मकुमारों से आँख मिचौनी खेल रही हैं! और लहरें अलग अपना अनूठा नृत्य दिखला रही हैं।

दूर-दूर तक वात-कन्याएँ घाटावर्पिका के शिव-मन्दिरों के गहन-गम्भीर घण्टनादों को अपने अङ्क में उठाकर, विस्तार दे रही हैं। मानो उनकी माला गूँथ रही हैं।

अमराइयों में पूर्ण प्रशान्ति छाई है। कोकिला कुल-वधुएँ अपने ससुराल से, अभी, नहीं आई हैं। जब वे लौटेंगी घाटावर्पिका की

विस्तीर्ण, प्रफुल्ल, रूपगर्विता आम्रवन-श्री आनन्द उल्लास में मंजरिता, रस और राग के सम्मोहन गीत सुनेगी ! अपने ससुराल के हालचाल सुनकर कोकिलाएँ सबको हँसायेंगी। आम्रशाखाओं पर फुदक फुदक कर वे अपनी ननदों की नकल दिखाएँगी और सौतेली सासों की चाल-ढाल का अभिनय दर्शित करेंगी।

पूर्ण हरित आम्र-तरुओं के मेघ श्याम तन और गोलाई की प्रवीण परिधि की ओट में, सरोवर की पनिहारिनें, रात्री क्रमश काली माटी पर एक ओर रश्मि अपनी रश्मियों से मिल रही हैं। उन्होंने घुँघरुओं में अभिनव कुमदल मौन लिए हैं कि वे मुखर किसी से इस बात की कह न दें। आम्रवृक्ष के त्रिशूलाकार तन के सहारे, पीठ टिकाए गोरी बाँहें विरोधिन शाखाओं तक फैलाए पनिहारिन मुक्त बिखरी बिखरी सी खड़ी हैं। और उनके विशाल दूध भरे, परिपूर्ण पयोधरों को बढ़ती हुई साँस उछाल रही है ? अधरों में थिरकन है। मन में लोक का भय है। नयन में मिलन की लाज है और अधरों पर अमृत के अनन्त महासमुद्र अपनी छाप छोड़ रहे हैं ! इन अधरों की रस-स्नात लाली को पिया के चुम्बनों ने अपने में रमा लिया है और इन अधरों में पिया के अधरों पर कालिमा लग गई है (नयन चुम्बन के फलस्वरूप) !

दोपहरियों ताल के दर्पण में देखती केशराशि गूँथ रही हैं।

साँसें सोई हैं। नूपुर मौन हैं। तन स्थिर है अङ्ग-अङ्ग से जुड़े हैं। और अनन्तानन्द का अनादि रास तुमुलगति से चल रहा है परन्तु पल छिन रुके बैठे हैं। रस की स्थिरता देखकर काल समय अपनी चाल भूल गया है ! और मूक द्रष्टा-सा अपने में बिसरा खड़ा देख रहा है ! चपल ताल में साधना सरोज बनाए दयमयि की लहरों को गिन रही हैं। यौवन पराग अङ्ग-अङ्ग में फूट रहा है और मानस में मधुकरों के प्रति मान मचल रहा है मुग्धाओं-सी मन स्थिति में हाय आज अपना समर्पण अपने ही लिए बोझ बन बैठा है !

सिपाही पहरा दे रहे थे। भीतर खेमे में कुमार मेदिनीराय सोया था। रूपराम और सेवकराम अभी-अभी आए थे। एक ओर मुँह

लटनाए बैठे थे। स्वामी चूँकि विश्राम कर रहे थे, उनकी प्रतीक्षा करने, दो पल को उनींद थे, जगाना उचित नहीं था। भूषणमल्ल के दुखद समाचार कौन सुनाए इस प्रश्न पर दोनो सेवक परस्पर झगड रहे थे। एक दूसरे पर बिगड रहा था—

"आखिर भूषणमल्ल को तुमने बढ़ावा दिया सेवकरामजी, तुम्ही अन्नदाता को अब अपना काला मुँह दिखाओ।' और इतना कहकर रूपराम लम्बी तान कर सो गया। कल शाम से वह भूखा था अत बात-बात पर चिढ़ रहा था।

सेवकराम ने लोटा और गमछा उठाया और सरोवर की ओर चला। कोई पचास कदम पर वटवृक्ष की घनी छाया मे एक नन्ही-सी कुँइया थी। उसके किनारे बडी-सी शिला थी। एकओर भैरवजी का चबूतरा था।

सेवकराम ने गमछे के छोर पर बँधी बूटी निकाली। सूखा मेवा और मसाला मिलाकर बडी शिला पर रगडा लगाया।

अपनी जटा बिखेरे, मन, वचन, कर्म से वह भङ्ग पीसने म तल्लीन था। भग की गध उसकी मानस-तरङ्ग का नूतन रङ्ग दे रही थी। अ ने आपसे वह कह रहा था—

'अरे, नालायक सेवकराम! शिव और शक्ति मे कोई अन्तर कोई फर्क नही है। शक्ति हो और शिव हो तो वह कल्याणकारी नहीं है। उसके सग शिव होना ही चाहिए। शिव के बिना शक्ति अकेली नहीं रह सकती। सेवकराम, उसका मन नहीं लगता! वह बेचैन रहती है? एकाकिनी वह सहार करती है, सबको भस्म कर देती है। शिव उसे अपने बस म रखता है। उस पर नियत्रण रखता है। उसके उद्दाम यौवन के विष को, खींच कर, अमृत बना देता है। बस तो भैया, शिव भी शक्ति के वियोग में शवमात्र है। कल्याण तभी हो सकता है जब हमारे पास शक्ति हो। शक्तिहीन किसी का कल्याण नहीं कर सकते। शक्ति तन की, मन की, धन की—आत्मिक और भौतिक व्यक्ति के शिव सकल्प और शुभ रचना के लिए जरूरी है। शिव और शक्ति का सयोग जरूरी है।

"इसलिए कहता हूँ सेवकराम ! शक्ति और शिव, शंकरजी और पार्वतीजी दोनों भिन्न नहीं एक हैं।'

श्लोक गा कर, अपने में तन्मय वह, कथावाचक पण्डितों की नकल में कहने लगा—'सेवकरामजी के महादेवजी बोले कि हे देवी पार्वती तूने जैगीषव्य सिद्धेश्वर के विषय में जिज्ञासा प्रकट की, सो जानकर मैं प्रसन्न हुआ। अब सुन, मैं तुझे संक्षेप में सुनाता हूँ। पार्वतीजी अपने सिर पर अंचल ढक कर श्रद्धापूर्वक सुनने लगीं—

"प्रभासक्षेत्र में जैगीषव्य ने उग्र तप किया। एक सौ वर्ष तक उसने पवन पान कर, जीवन निर्वाह किया। सौ सौ वर्ष के पवन भोज के पश्चात् हजार वर्ष तक जल भोजी बना। इस कठिन साधना के उपरान्त दस हजार साल तक वह शाकाहारी रहा। इसके अलावा एक हजार चान्द्रायण और सान्तपन व्रत पूरे किए। फिर अल्पभोजी होकर अपने शरीर को सुखा डाला। अब तो वस्त्र त्याग कर, दिगम्बर रूप में रहने लगा।

"हे पार्वति ! पूर्व कल्प में आप ही से उत्पन्न, देव-देव शिव का जो महादेव नामक लिंग था, उसकी स्थापना और पूजा करने लगा। निरन्तर भस्मशायी और भस्मवेष्टित अङ्गोंवाले जैगीषव्य ने अपने अभिराम नृत्यों और सुमधुर गीतों से भगवान् भोलेनाथ को रिझाया' "

इसके बाद, 'शिव शम्भु' की ललकार लगाकर, उछल कर वह नाचने लगा'-थेई, थेई-था था तत्-तत्-ताता हर-हर महादेव '!'

झुरमुट से रूपराम दौड़ता हुआ आया—"यह क्या प्रलय मचा रखी है ? अन्नदाता जाग जाएँगे !'

सेवकराम सकपका गया। उसके मन का जोर का जैसे धक्का लगा। महाबूटी की सम्मोहनमयी आभा के आवेग में, वह नश्वर जगत् को भूल, अपने आप में एकाग्र, संलग्न था, रूपराम ने उस अगम उल्लास-लास की लहर को भंग कर दिया !

रूपराम को बिनवताए सेवकराम जाकर अपनी जड़ी की पिसाई में मग्न हो गया।

: १० :

नगरश्रेष्ठि ने सूरजसिंह के हाथ में दूसरा पात्र थमा दिया। सूरजसिंह ने कहा—

"यदि वह, रूप की पद्मिनी यहाँ होती तो, मैं इस अमूल्य मासव से भरे-भरे इस पात्र से वंचित रह जाता।"

नगरश्रेष्ठि के होठों पर हल्की स्मृति आकर चली गई—

"सूरजसिंह मेरा विश्वास है कि सूबेदार मुहम्मद खानी, जो चित्तौड़ की ओर भाग रहा है, अवश्य महाराणा रायमल्ल की शरण में जा रहा है। एक बार उनकी शरण का आश्रय पा लेने पर वह अभय हो जाएगा।"

"और श्रीमान् तब राजपूत अपने अतिथि को उसका खोया राज्य दिलाने में भी सम्पूर्ण सहयोग देंगे।"

"सूरजसिंह, मैं तुम्हारे शब्दों को तनिक हेर-फेर पर दुहराता हूँ कि राजपूत अपने अतिथि का राज्य लौटाने के लिए सफल सहयोग देंगे।"

"ऐसी सूरत में हमें तत्काल साहिब खाँ को सूचना देनी चाहिए।"

"साहिब खाँ को सूचना देने की कोई जरूरत नहीं, सूरजसिंह! साहिब खाँ अपने संदेशे तक खुद-ब-खुद चला आता है।"

श्रेष्ठि और सूरजसिंह ने चौंककर देखा। सूबेदार मुहम्मद खानी,

का छोटा भाई, माण्डु की गद्दी का दावेदार साहिब खाँ सामने खड़ा था। उसके पीछे पीछे दीपा भी आई। दीपा के पीछे वल्लभी थी। और वल्लभी के साथ माधुरी थी।

माधुरी ने वल्लभी को सैन किया और दोनों दूसरे कक्ष में चली गईं। वहाँ से आस्तरण, पर्दों की ओट से कान लगाकर सुनने लगी।

माधुरी का हृदय धड़क रहा था। साहिब खाँ भी उसके पिता नगर श्रेष्ठि से कह रहा था—"ये बात सच है कि मेदिनीराय ने मेरे भाई की साली के इश्किया फँदे में फँसकर, उसकी मदद करना मंजूर किया है।"

"अब हमें क्या करना चाहिए?" नगरश्रेष्ठि ने अपना निर्णय मन में ही रखकर, दूसरों के मुँह से कुछ कहलवाना चाहा।

जवाब साहिब खाँ ने दिया—

"खतरा हमें मुहम्मद सानी से नहीं, खतरा हमें मेदिनीरायजी से नहीं, खतरा महाराणा से है।"

इस पर सूरजसिंह ने कहा—

"अगर उन्होंने मुहम्मद सानी की मदद करना मंजूर किया तो उलझन और भी पेचीदा हो जाएगी।"

"मगर उस हालत में हमें दिल्ली के लोदियों की सहायता सुलभ होगी।" श्रेष्ठि बोले।

"लेकिन मानदेश के ख्वान, मुहम्मद सानी की मदद के लिए दौड़े आएँगे।' सूरजसिंह ने साहिब खाँ से कहा। साहिब खाँ ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—

"उस सूरत में हमारा जंग बहुत ही पेचीदा रूप अख्तियार कर लेगा और अगरचे मुहम्मद सानी की खिदमत में हैं मेरे ससुर गालिब खाँ जो माण्डु में सबसे आलाहाकिम हैं, वे खामोश देखने न रह जाएँगे। और मुझे यकीन है कि वे मुहम्मद के खिलाफ हमारी जानिब से जंग लड़ेंगे।"

"सूरजसिंह, गालिब खाँ बड़ा जवाँमर्द और दिलेर आदमी है।

ऐसा क्यों न करें कि उसे मुहम्मद की तरफ ही रहने को कहें और भीतरी तौर पर वह हमें सारी खबरें देता रहे।"—नगरश्रेष्ठि ने साहिब खाँ को सुझाया।

अब सूरजसिंह ने दूसरी उलझन पेश की—

"गुजरात के शाह मुजफ्फरशाह अगर आपके भाई, मुहम्मद सानी की मदद करना स्वीकार कर लें, तब तो गुजरात, खानदेश और दक्खन की मिलीजुली फौजों का मुकाबला हम नहीं कर सकेंगे।"

तब नगरश्रेष्ठि, जो सारे वार्तालाप के मध्य में बातों का उत्तर देते हुए और बातें सुनते हुए किसी विशेष विचार में डूबे हुए थे। सहसा आँखें चमका कर कहने लगे—

"मेरी मानिए और मुहम्मद सानी को मेदिनीरायजी और महारानाजी की सहायता लेने दीजिए। इससे आप समझ सकते हैं, हमें क्या लाभ है? दिल्ली के लोदी, गुजरात के शाह और दक्खन के बादशाह हमारी तरफ आ जाएँगे। जनाबेमन् तब यह जंग साहिब खाँ और मुहम्मद सानी का बाहमी जंग न रहकर, हिंदुओं और मुसलमानों का, कभी खत्म न होने वाला जंग बन जाएगा।'

सूरजसिंह इस प्रस्ताव से सहमत था। उसने नगरश्रेष्ठि का अनुमोदन करते हुए कहा—"हम अगर मुहम्मद सानी और महाराणा के बीच, फूट फैलाने में सफल हो गए, अथवा राजा की सेना देर से आए तो विश्वास रखिए गुजराती सेना के सामने मुहम्मद सानी की फौज टिक न पाएगी।

"मुझे पूरा भरोसा है कि मैं गुजरात के शाह मुजफ्फरशाह को मालवा की हुकूमत का लालच देकर, इस बात पर रजामन्द कर लूँगा कि वह मुहम्मद सानी और उसके हिंदू रहनुमाओं का साथ न दें। इस तरह गुजरात के शाह का हमारी तरफ से लड़ना—अपने आप में एक बहुत बड़ी ताकत बन जाएगी।' साहिब खाँ ने कहा।

इस पर जासूस सूरजसिंह ने नई बात सुझाई—"अगर गुजरात के शाह मुजफ्फरशाह हमारी मदद करना मंजूर न करें, तो हम उन्हें

इस बात के लिए राजी कर लें कि वे मुहम्मद सानी की मदद करने से भी इन्कार कर दें। इस तरह मुहम्मद सानी का एक बाजू टूट जाएगा। रहा खानदेश और दक्खन का सवाल, सो उसके बारे में मेरा ये ख्याल है कि गालिब खाँ मुहम्मदशानी की तरफ से खानदेश के खानो की मदद मागते रहे और मदद जब मिल जाए तब खानदेश की फौज को अच्छा खाना और सामान न दें—यह काम वे माण्डु के सूबा की हैसियत से बखूबी कर सकते हैं। और अगर इस काम मे उन्हे सफलता मिली तो माण्डु के दरवाजे पर ही माण्डु की सेना और खानदेश की फौजो के बीच मे भारी खाई पड़ जायगी और तब हम आसानी से उन दोनो के बीच मे आग भड़का सकेंगे।"

सूरजसिंह की बात सुनकर सबने एक स्वर मे कहा—

"वाह! वाह!!"

साहिब खाँ ने भी इस विचित्र प्रस्ताव का पूर्ण समर्थन किया और जोर से 'अल्-हम्दुलिल्लाह' कहकर अपनी खुशी जाहिर की—

"आलीजनाब, परवरदिगार की यही मर्जी है कि मालवा के शाही तख्त पर आपका यह दोस्त बैठे तो मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि कभी अपनी तलवार मियान मे न रखूंगा।"

"यदि आपकी यही अभिलाषा है तो ईश्वर उसे पूर्ण करेगा।"

ब्राह्मण वेषधारी इसलाम खाँ ने कक्ष मे प्रवेश किया। उसे देखकर साहिब खाँ ने, विस्मय से सूरजसिंह की ओर देखा। सूरजसिंह ने नगरश्रेष्ठि की ओर देखा। दोनो की विस्मय और प्रश्नसूचक मुख मुद्रा देखकर श्रेष्ठि ने इसलाम खाँ को इशारा किया—

"वास्तव मे रणभवन के बम्हन मुसलमान हैं।" और वह हँसने लगा।

इसलाम खाँ ने अपना तिलक पोंछकर नकली मूँछें उतार फेंकी।

साहिब खाँ ने उसे देखते ही पहचान लिया और उठकर स्वागत किया—"वल्लाह, खाँ साहब, आप यहाँ-कहाँ?"

"जनाब, उज्जैनी से दिल्ली दूर थोड़े ही है। जिस तरह उज्जैनी के साहिबखाँ से दिल्ली के लोदी दूर नहीं हैं।"

"वाह, वाह !" कहकर सूरजसिंह ने दोनों वक्तों की खुशामद की।

परिचारिका नागरी नगरश्रेष्ठि को बुलाकर एक उपकक्ष में ले गई। इस कक्ष में एक चर उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। चर के साथ उसकी संगिनी महिला चर भी थी।

बड़ी देर के बाद जब नगरश्रेष्ठि अपने चर को विदा कर, लौटे तब साहिब खाँ और अन्य साथी मदिरा के पात्र खाली कर चुके थे। एक गुजरी नर्तकी उनका मनोरंजन कर रही थी।

नगरश्रेष्ठि ने अपने आसन पर बैठते हुए कहा—"मित्रो, अभी अभी मुझे ज्ञात हुआ है कि राजकुमार भक्तिनौराय और वह पारसिक कन्या चित्तौड़ के मार्ग पर, एक दूसरे से बिछुड़ चुके हैं। बिछुड़ते वक्त दोनों के बीच जिन संवादों का आदान-प्रदान हुआ, वे सुनने के काबिल हैं। मेरे चर की संगिनी वारुणी ने स्वयं अपनी आँखों सब देखा है और अपने कानों सब सुना है। कहते-कहते उन्होंने ताली बजाई।

नागरी आई।

"वारुणी को यहाँ लाओ।"

राजपूत परिवेश में सजी वारुणी रूप की पुतली प्रतीत होती थी। उसे देखकर इस्लाम खाँ का दिल अपने पहलू से निकलने लगा।

वारुणी का नाम सुनकर, माधुरी और वल्लभी भी वहाँ आ गईं।

नगरश्रेष्ठि के आदेश पर वारुणी ने पारसिक रमणी का प्रकरण निवेदन किया।

: ११ :

शूद्रो के निकाय मे आज बडा शोरगुल था । कान पडे कुछ सुनाई न दे रहा था। इस कुहराम को सुनकर अपने आश्रम मे बैठे मङ्गल महाराज ने इतना ही कहा था—

'कुमार से कहो चाडाला की इस चौकडी को चबूतरे चढ़ाकर चटनी बना दो।'

गाँव म कई बाहरी लोग भी आए थे। दूर सवश्री, सादडी, मण्डल महाली, बीभणा, बामोला और वालिया गाँवों से शूद्रा के ठट्ट-के ठट्ट एकत्र हुए थे।

शूद्रा का मुखिया भीमा कुछ कम न था। हालाँकि आज उसके लडके रामा की 'बरसी' थी फिर भी उसने भोजन-पान का प्रबन्ध इस प्रकार किया था, मानो आज उसके बेटे के ब्याह का दिन हो।

भीमा की दारा ने अपनी बहू के और स्वय अपने आँसू पोछते हुए भी कुछ ऐसा ही आशय प्रकट किया था—

'मत रो बहू, आज मेरे लाल की बरसी का दिन नहीं है । उसके ब्याह का दिन है। हरेक आदमी के दो विवाह होते हैं, एक ता पत्नी से, दूसरा मृत्यु स।'

सुनकर बहू रूपा और जोर से रो पडी।

सास बोली—

'नारी से विवाह करके पुरुष को जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी ही मृत्युरूपी सुन्दरी का वरण करके भी होनी चाहिए।"

तभी भीमा भीतर आ गया। अपनी पत्नी का कथन उसके कानों में पड़ गया। मानो घाव पर किसी ने लोन छिड़क दिया हो, दिल में दर्द उठा लेकिन मन मसोसकर, मर्द आदमी की तरह कहने लगा—

"रामा की मौत से मेरे पाँव तले की धरती खिसक गई है मगर मुझे लगता है मैंने बहुत बड़ा मैदान मार लिया है। मेरा बेटा शहीद हो गया। अगर वह अपनी जान नहीं देता तो शिवजी के मस्तक के जटाजूट सूखे ही रह जाते और वहाँ जल का एक बिंदु भी नजर नहीं आता। मङ्गल महाराज स्नान कैसे करते ?"

'कुछ सुना है सरोवर को सामन्तराज सूरजमल खुदवाकर बड़ा और गहरा बनवा रहे हैं।'

"तो इससे क्या ? हम श्रमिकों को कुछ काम ही मिलेगा।"

राजो आ गई—

"तू तो राजो हर वक्त बुराई ढूंढती रहती है।

'जिन बड़े कहलाने वाले लोगों ने मेरे भैया को दिन-दहाड़े मार डाला, हजारों लोगों की साक्षी में मारा, उन्हें यदि मैं बुरा कहूँ और उनमें बुराई देखूँ तो क्या अपराधिनी ही कही जाऊँगी ?

"यह किस देश का विधान है ?" माँ ने बेटी का समर्थन किया।

भीमा ने अपनी बात नहीं छोड़ी, वह अपनी औरत के सामने अपनी हेठी कराना नहीं चाहता था—

"तूने राजो, कुमारों पर धूल फेंककर अच्छा नहीं किया।'

"मैंने धूल फेंकी ?' राजो ने सिर उठाया।

"तो क्या तेरी गालियों को फूल कहूँ ?" भीमा ने लाल लाल आँखें निकालीं।

उसको दारा ने उन्हें शान्त करने के निमित्त कहा—

"लो, थोड़ा मद पी लो, इससे तुम्हारा जी अच्छा हो जाएगा।"

भीमा ने मिट्टी के मद पात्र को मुँह से लगाने के पूर्व पत्नी से पूछा—

'रूपा को दिया है ?"

"हाँ, वह और राजो दो पूरा महापात्र पी चुकी हैं।"

भीमा खडा-खडा दो-तीन पात्र खाली कर गया। फिर जीभ से होठो को चाटता हुआ कुटीर के बाहर चला गया।

राजो ने अपने हाथ का पात्र जोर से फेंका, वह मज्जा के उल्का दीप पर जा लगा और दीपक बुझ गया। माँ ने अँधेरे में कहा—

'हाय राम ! बुरा शकुन हुआ। रिखभनाथ रक्षा करें। आज जरूर कुछ-न-कुछ अमङ्गल होगा।' कहती राजो की माँ बाहर चली गई।

कुटिया के अँधेरे कोने मे रूपा 'थेई-थेई' नाच रही थी।

बाहर पचों के बीच बावला भीमा गरज रहा था—

'कौन कहता है, मेरे बेटे को सामता ने मार डाला सामतों की क्या मजाल वे भला किस खेत की मूली है मेरा बेटा शहीद होगया

'वाह पटेल, वाह !' बिरादरी के, नशे मे झूमते सदस्य चिल्लाए।

शूद्रो का ब्राह्मण-पुरोहित देवी के चौरे पर अज पशु की बलि दे रहा था और भैरवजी का बडा भोपा अपने लम्बे-लम्बे बाल फैलाकर भाव मे धुन रहा था। इसके एक हाथ मे नगी तलवार थी, जिसकी नोक पर पीला निंबू और एक हरी मिर्च लगी थी। उसकी गोद मे मद का पात्र औंधा पड़ा था और एक कुत्ता उसका एक कान चाट रहा था। कुत्ते के दाँतो से टकराने से कान का कुण्डल अजीब आवाज पैदा कर रहा था।

बडे-बडे ढोल नगाडे और बाजे बज रहे थे। चम और तन्तु के वाद्यन्त्र विचित्र नादस्वर से वातावरण को मुखरित कर रहे थे। चारो ओर कर्णकटु कुहराम और कलरव फैला हुआ था। इस कुहराम, इस

भीड, इस हलचल और इस मानव-मेले का कोई क्रम नहीं था। न तो इसके आदि का पता चलता था और न ही इसका अन्त नजर आता था।

भैरवजी के चौरे पर रूपा सोलह सिंगार किए आई। उसने गहरे लाल रंग की साड़ी पहनी थी। पीले रंग का घाघरा था और पीले रंग की उसकी कंचुकी थी। उसके केश—घने, लम्बे और काले केश खुले थे, राजो और सीता जैसी लड़कियों ने मिलकर, इन केशों को कई तरह की सुगन्धियों से सँवार दिया था और माँग को कौड़ियों की मालाओं से सजा दिया था। उसकी कई चोटियाँ भी कदाचित् की ऐसी ही लड़ियों से गूँथी थी। उसकी कलाइयों पर कौड़ियों के गजरे भरे थे और गले में भी कौड़ियों के हार झूल रहे थे।

मद से रूपा के विशाल लोचन लाल थे। और उसके लाल-लाल अधर फड़क रहे थे। पुजारी ने उसके हाथ में नंगी तलवार थमा दी थी।

भैरवजी के सामने, आँगन में स्त्री-पुरुष मिलकर, ढोल के बोल पर नाचने लगे।

एक ओर भोजन बन रहा था—

उपलों की बड़ी-बड़ी अंगीठियों पर बाटियाँ सिक रही थीं। बड़े-बड़े चूल्हों पर दाल और चावल के महापात्र सुगंधित वाष्प छोड़ रहे थे। भोजनभट्ट, मक्रादर भीमाजी तन्मय होकर, अपलक एक दृष्टि से इन पात्रों को देख रहे थे।

किसनाजी ने दाल को लोहे के कड़छुल से चलाते हुए कहा—

"भीमाजी, लोहे का बड़ा कटोरा अंगारों के नीचे दबाओ। केशाजी से कहो कि बघार की तैयारी करें। पाव भर हींग, दो सेर जीरा, चार सेर घी, तीन सेर लहसुन और पाँच सेर प्याज मँगवा लो।"

केशाजी सुन रहा था हालांकि ऊँघ रहा था।

"किसनाजी, पाँच सेर प्याज की बात तो ठीक है मगर तीन सेर लहसुन कुछ ज्यादा होगी।"

"ज्यादा ? मैं कहता हूँ कम होगी।'

"कम ? मैं कहता हूँ ज्यादा होगी।'

लोग, जो ऊँघ रहे थे, आँखें खोलकर, कान लगाकर इन्हें देखने और इनकी झड़प सुनने को उत्सुक हो गए।

केशाजी ने ताव में आकर दाँव लगाया—

"ज्यादा नहीं निकली तो क्या दोगे '

"दूँगे ? ' और किसनाजी ने केशाजी को गाली दी।

केशाजी ने चूल्हे से एक जलती लकड़ी उठा ली और किसनाजी की ओर झपटा। किसनाजी ने दाल चलाने का गरम-गरम कड़छुल बाहर निकाला और उसे हवा में ऊँचा उठाया—

"वहीं रहना, वरना सिर फोड़ दूँगा।'

"फोड़ दिए ! कभी मटका भी फोड़ा था, जो सिर फोड़ने चले हो ?"

लोगों ने हँसकर, तालियाँ बजाकर, इन सम्वादों का स्वागत किया और दोनों पहलवानों को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

"मटके, नयापुरा वाला (केशाजी नयापुरा का रहने वाला था) के दरवाजे फोड़े हैं। यहाँ तो दुश्मन की विधवाओं की चूड़ियाँ फोड़ते हैं !"

"अपनी बहनों का राखी का यही बदला देते हो ?" केशाजी के प्रश्न पर श्रोता खिलखिला उठे। वह बड़ी देर से अँगीठी के निकट बैठा था। इसलिए उसके पूरे काले बदन पर पसीने की बूँदें उभर आई थीं और सिर भी गरम हो गया था। कड़छुल उसने फेंका केशाजी सावधान था, वार बचा गया।

उसके पीछे एक व्यक्ति चादर तान कर सो रहा था। उसकी पसली से जाकर कड़छुल टकराया वह हड़बड़ा कर उठ बैठा और चकित दृष्टि से चारोंओर देखता हुआ इस अचानक आक्रमण का रहस्य जानने का प्रयास करने लगा।

केशाजी ने कहा—"वो रहे किसनाजी बाणासुर ! अपने आगे किसी को कुछ समझते ही नहीं !"

सुप्त व्यक्ति एक ही छलांग में उछला और जाकर किसनाजी से लिपट गया। कुछ ही पल में दोनो गुत्थमगुत्था होकर धरती पर लोटने लगे।

केगाजी ने अवसर देखा और वह किसनाजी के इधर-उधर लकड़ी से वार करता रहा।

इसी समय उसकी पीठ पर एक सनसनाता हुआ तीर लगा और वह 'हाय' कहकर नीचे गिरा।

तक तक तीरो और बाणो की बौछार से कई व्यक्ति धराशायी हो गए।

जलती हुई उल्काएँ बरसने लगी।

हांफता-दौड़ता एक सन्देशवाहक आया—

हमारे झोपड़े जल रहे हैं। किसी ने आग लगा दी है।

फिर घोड़ो के टापो की आवाजें गूँजी।

दूसरा आया—साँस रोककर बोला—

"राजपूतो ने हम पर हमला कर दिया।

'भागो भागो" जल्दी भागो।' एक व्यक्ति पेड़ पर चढ़कर चिल्लाने लगा।

स्त्रियाँ, लड़कियाँ, बच्चे, बूढ़े, मद के नशे में चूर नौजवान, अतिथि और दर्शक, नर्तक और ढोली—सभी भागे।

—जिसे, जो दिशा और राह मिली, वह उसी ओर भागा।

सभी पृथ्वीराज की दुष्टता से परिचित थे। उसके अत्याचार जगजाहिर थे।

रङ्क हो या राजा, वह किसी को फूटी आँख न सुहाता था। ऐसा कोई न था, जिस पर उसका जुल्म न बरसा हो। ऐसा एक न था, जिसकी पीठ पर उसके अनाचार की काली कहानी कोड़ों की कलम से न लिखी गई हो!

धूद निकाय ज्वालाओ में जगमग जल रहा था।

ज्वालाओं की लम्बी-लम्बी लपटो का उजाला देखकर, मंगल पंडित ने अपने शिष्यो से कहा—

"बादल मँढने से नीम नही छिपता !"

"समाधान गुरुदेव ! कुछ समझे नही हम !"

"वत्स, कुस्वभाव नहीं छिपता, उसे चाहे ऊपरी लेपन से कितना ही छिपाओ।"

"धन्य, गुरुदेव !"

"कुमार पृथ्वीराज के संस्कार शूद्र के हैं, चाहे वह वीरवंश मे, वीर पिता के प्रासाद मे उत्पन्न हुआ हो। और शूद्रो के सेवक विप्रराज के सम्पर्क मे रहने से चमारो की बेटी राजवंसी को ब्राह्मणो के संस्कार मिले हैं। वत्स, विद्या और संस्कार, उत्तम गुण और कर्म किसी की बपौती नही हैं। इन्हे जो धारण करता है, वही धर्मपुत्र और धर्मात्मा कहा जाता है।'

"तब तो गुरुदेव, क्षमा करें, जाति और वर्ण, शरीर और आत्मा का भेद भी नहीं रह जाएगा ?"

"भ्रम है तुम्हारा। काले शरीर वाले की, क्या आत्मा भी काली होती है ? गौर देहधारी की, क्या आत्मा भी गौर होती है ? तुम आत्मा की महिमा के गीत-गायक हो या शरीर के चारण हो ? आत्मा का रंग देखो, शरीर का नही।"

'फिर भी देव, देह की सुन्दरता का अपना महत्त्व तो है ही।"

"देह की सुन्दरता ! यह आत्मिक नही, भौतिक दृष्टि है। तुम्ही बताओ, उस सुन्दरता और काया का क्या मोल, जो शरीर के जल जाने पर काली पड जाती है ? सडने पर दुर्गंध फैलाती है। कोढी हो जाने पर सफेद धब्बो से भर जाती है। विषैले जन्तु के डँसने पर काली-नीली पड जाती है। पीत-रोग और मृत्यु के उपरात पीली पड जाती है !"

"इसका तात्पर्य यह है गुरुदेव, जाति-परिवर्तन सम्भव है ?"

क्रुद्ध व्यक्ति एक ही छलांग में उछला और जाकर किसनाजी से लिपट गया। कुछ ही पल में दोनों गुत्थमगुत्था होकर धरती पर लोटने लगे।

बेगाजी ने अवसर देखा और वह किसनाजी के इधर-उधर लकड़ी से वार करता रहा।

इसी समय उसकी पीठ पर एक सनसनाता हुआ तीर लगा और वह 'हाय' कहकर नीचे गिरा।

तब तक तीरों और बाणों की बौछार से कई व्यक्ति धराशायी हो गए।

जलती हुई उल्काएँ बरसने लगीं।

हाँफता-दौड़ता एक सन्देशवाहक आया—

हमारे झोंपड़े जल रहे हैं। किसी ने आग लगा दी है।

फिर घोड़ों के टापों की आवाजें गूँजीं।

दूसरा आया—साँस रोककर बोला—

"राजपूतों ने हम पर हमला कर दिया।

"भागो भागो जल्दी भागो। एक व्यक्ति पेड़ पर चढ़कर चिल्लाने लगा।

स्त्रियाँ, लड़कियाँ, बच्चे, बूढ़े, मद के नशे में चूर नौजवान, अतिथि और नाक नतक और ढोली—सभी भागे।

—जिसे, जो दिशा और राह मिली, वह उसी ओर भागा।

सभी पृथ्वीराज की दुष्टता से परिचित थे। उसके अत्याचार जगजाहिर थे।

रङ्क हो या राजा, वह किसी को फूटी आँख न सुहाता था। ऐसा कोई न था, जिस पर उसका जुल्म न बरसा हो। ऐसा एक न था, जिसकी पीठ पर उसके अनाचार की काली कहानी कोड़ों की कलम से न लिखी गई हो।

शूद्र निकाय ज्वालाओं में जगमग जल रहा था।

ज्वालाओं की लम्बी-लम्बी लपटों का उजाला देखकर, मगल पंडित ने अपने शिष्यों से कहा—

"बादल मँढने से नीम नहीं छिपता !"

"समाधान गुरुदेव ! कुछ समझे नहीं हम !"

"वत्स, कुस्वभाव नहीं छिपता, उसे चाहे ऊपरी लेपन से कितना ही छिपाओ।"

"धन्य, गुरुदेव !"

"कुमार पृथ्वीराज के संस्कार शूद्र के हैं, चाहे वह वीरवंश में, वीर पिता के प्रासाद में उत्पन्न हुआ हो। और शूद्रों के सेवक विप्रराज के सम्पर्क में रहने से चमारों की बेटी राजबसी को ब्राह्मणों के संस्कार मिले हैं। वत्स, विद्या और संस्कार, उत्तम गुण और कर्म किसी की बपौती नहीं हैं। इन्हें जो धारण करता है, वही धर्मपुत्र और धर्मात्मा कहा जाता है।"

"तब तो गुरुदेव, क्षमा करें, जाति और वर्ण, शरीर और आत्मा का भेद भी नहीं रह जाएगा ?'

'भ्रम है तुम्हारा। काले शरीर वाले की, क्या आत्मा भी काली होती है ? गौर देहधारी की, क्या आत्मा भी गौर होती है ? तुम आत्मा की महिमा के गीत-गायक हो या शरीर के चारण हो ? आत्मा का रंग देखो, शरीर का नहीं।'

'फिर भी देव, देह की सुन्दरता का अपना महत्त्व तो है ही।'

"देह की सुन्दरता ! यह आत्मिक नहीं, भौतिक दृष्टि है। तुम्हीं बताओ, उस सुन्दरता और काया का क्या मोल, जो शरीर के जल जाने पर काली पड़ जाती है ? सड़ने पर दुर्गंध फैलाती है। कोढ़ी हो जाने पर सफेद धब्बों से भर जाती है। विषैली जन्तु के डँसने पर काली-नीली पड़ जाती है। पीत रोग और मृत्यु के उपरांत पीली पड़ जाती है !"

"इसका तात्पर्य यह है गुरुदेव, जाति-परिवर्तन सम्भव है ?'

अवन्य मगल पण्डित ने उच्चस्वर म कहा—

'जाति और वर्ण परिवतनशील हैं। कम के अनुसार व्यक्ति शूद्र स ब्राह्मण ब्राह्मण स शूद्र या क्षत्रिय क्षत्रिय से शूद्र बनता है यह सब सम्भव है क्योंकि मानवकृत है कमरत है।

धन्य गुरुन्व धन्य !

'वत्स एक सूत्र सदव स्मरण रखो—मनुष्य की कोई जाति नहीं। उसकी एक ही जाति है—महान् मानव जाति। इस ससार म मनुष्य एक विराट सत्य है। और इस सत्य से बढ़कर कोई सत्य नहीं है। इसलिए, उठो मनुष्य की पूजा करो ! मानव-मात्र की सेवा करो।

और इस कथन के साथ ही मगल पण्डित ने शूद्र निकाय की ओर सकेत किया—

'धू धू करती उन सवभक्षी ज्वालाओं को बेटा अपने आँसुओं से बुझा दो ! यही प्रभु का आदेश है। यही ब्राह्मण-धम है।

शिष्यों का समुदाय 'शूद्र निकाय' की ओर दौड़ा। पीछे-पीछे गौरी मगलपुत्री दौड़ी।

ज्वालाओं क निकट अश्वारोहियों का क्रूर मारक अट्टहास उठ रहा था।

रूपा अभी भी भरव चौरे पर बठी थी।

उसकी आँखों से लाल-लाल लहू बरस रहा था। तलवार उठाकर वह राजकुमार पृथ्वीराज के लौटते हुए घोड़े के पीछे दौड़ी—

'ठहर आततायी !

'क्षमा मातसरी धणी सम्मा ! चिल्लाती हुई गौरी रूपा के पीछे-पीछे गई।

वनान्तर स समूह-गीत की भांति एक करुण स्वर उठ रहा था—

'हाय रामा हो''''हाय रामा हा !

: १२ :

एक ही दिन मे दो-दो दुर्घटनाएँ हो गई ।

पृथ्वीराज ने शूद्रों के निकाय मे आग लगवा दी। उनके सभी आवास जल गए। कल जो कुटीर नन्हे शिशुओं की किलकारियो से मुखरित थे, आज उनमें शृगालों की 'हुआ-हुआ' उठ रही थी। मानो 'अन्याचार हुआ' इस सचाई की साक्षी सियार भी 'हुआ-हुआ' कहकर दे रहे थे !

शूद्र-निकाय के अग्निकाण्ड से यह अगियाबैताल शान्त भी न हुआ था कि जाकर उसने और जयमल ने साँगा को घेर लिया।

सारगदेव पीछे आ रहा था, उसने देख लिया—

"पृथ्वीराज की चाल-ढाल ठीक नही है। वह साँगा को हानि पहुँचाना चाहता है।"

पृथ्वीराज ने साँगा पर तलवार का वार करते हुए ललकार लगाई—

"जयमल, आज इसको मारकर मैं जोशी बम्मन की वानी झुठला दूँगा।"

"मैं प्रस्तुत हूँ।"

इच्छा न होते हुए भी साँगा ने तलवार म्यान से बाहर निकाली। पलभर में उसने पृथ्वीराज के वार को लौटा दिया। जयमल ने पीठ

पर वार किया। सारंगदेव बीच में आ गया। अब तो चार चार तलवारें बिजलियों की तरह चमककर आपस में टकराने लगीं।

मेवाड़ का भाग्यदेवता भाई को भाई से जूझते देखकर उदास हो गया और भाग्यदेवी की चूड़ियाँ तड़कने लगीं।

जयमल का भीषण प्रहार अपनी ढाल पर झेलते हुए सारंगदेव ने उससे आग्रह किया —

"बेटा, मेरी बात मानो। भाई से भाई की घृणा और भाई से भाई का युद्ध राजपूतों को सदा के लिए समाप्त कर देगा।"

"दादाजी, आप हमारे पिताजी के काकाजी हैं, इस हेतु आपकी बात नहीं टाल सकते और चूंकि आप साँगा के पक्षपाती हैं, आपकी बात नहीं मान सकते।"

"यदि मैं साँगा के पक्ष की बात कहूँ, तब तुम, भले मेरी बात मत मानो, किन्तु यदि मैं यह कहूँ कि भाई भाई की परस्पर की लड़ाई उचित नहीं है तो तुम मुझे साँगा के पक्षपात का दोषी नहीं ठहरा सकते।"

जयमल ने तलवार म्यान म रख ली।

साँगा और पृथ्वीराज भूखे शेरों की तरह लड़ रहे थे, परन्तु पृथ्वीराज के प्रत्येक प्रहार को साँगा सावधानी से रोक रहा था। फिर भी दोनों के शरीर पर कई घाव बन गए थे।

इन घावों में और इनसे बहती रक्त की रेखाओं में सारंगदेव जैसे कुशल राजनीतिज्ञ ने सम्पूर्ण मेवाड़ के विनाश की काली कहानी लिखी हुई देखी। उसने चिल्लाकर कहा—

"बेटा पृथ्वीराज, रावण और विभीषण, बालि और सुग्रीव के बन्धु-वैर की कथाएँ भूल गए हो? अरे, नहीं जानते तुम्हारे एक-दूसरे को मिटाने के प्रण से मेवाड़ मिट जाएगा। मैं कहता हूँ, इस असि-द्वन्द्व का अन्त हो। कुमारो! तुम्हें मेवाड़ माता की शपथ।"

सुनते ही साँगा ने तलवार झुका दी, लेकिन पृथ्वीराज की सीधी बढ़ती हुई तलवार साँगा की आँख में घुस गई। सदा के लिए साँगा काना हो गया।

सारंगदेव ने उसे सहारा दिया और उसके घोड़े की रास पकड़ ली और धीमे धीमे उसे लेकर एक ओर चला गया !

अब पृथ्वीराज और जयमल एक टूटे हुए उथले कुएँ के थाले पर आ बैठे और आगे की समस्याओं पर विचार करने लगे।

अचानक उन्होंने कुएँ से निकलती हुई एक स्त्री छाया देखी। उसका रौद्ररूप अत्यंत भयावह था। जयमल तो उसे देखकर डर गया। पृथ्वीराज ने तलवार बाहर खींच ली।

उस स्त्री-छाया की सघन केशराशि, उसके मुख पर छाई हुई थी अत दोनों कुमार उसे पहचान न पाए, परन्तु वह रूपा थी। उसने बड़ी कठोर और तीक्ष्ण आवाज में कहा—

"भाई को मारकर राज्य चाहने वाले लालची पृथ्वीराज, मैं तुझे शाप देती हूँ कि जिस तरह मेरे पति की मृत्यु हुई, उस तरह, किन्तु उसके विपरीत पतित रूप में तेरी मृत्यु और तेरा पतन होगा। जहर पिलाने वाले, तू जहर पीकर मरेगा। मौत देने वाले, तू मौत लेकर मरेगा ! तेरा सत्यानाश जाए यदि मैं सती हूँ तो मेरा 'सत् सत्य साबित होगा।

इतना कहकर, वह छाया उलटे पैरों कुएँ में उतर गई, किन्तु उसका कथन बड़ी देर तक कुमारों के कानों में गूँजता रहा।

पृथ्वीराज आज पहली बार सशङ्कित भयभीत हुआ।

जयमल ने उसे, उठकर चलने का संकेत दिया। दोनों सिर झुकाए मुँह लटकाए तलवारें म्यान में रखे, उस पेड़ के पास में आए, जिससे दोनों के घोड़े बँधे थे।

जयमल घोड़े पर बैठ गया। पृथ्वीराज ने रुकते हुए कहा—

' डाइलिन और सती ! उसने तलवार खींच ली।

"जयमल, मैं इस शूद्रा को यहीं समाप्त कर दूँगा।'

"दादा, तिरिया पर, अबला पर हाथ उठाओगे ? जयमल ने समझाया।

कुएँ से आवाज आई—

से नहीं हारा। अभी तक इस धरती पर, माँ का कोई ऐसा लाल पैदा नहीं हुआ जो भारतवर्ष पर आक्रमण कर उसे पराजित करने में सफल मनोरथ हुआ हो। धर्मी भी राम और कृष्ण की, महावीर और गौतमबुद्ध की जन्मभूमि अपराजेय है।"

साँगा प्रश्न करता—

"क्षमा करें, काकाजी, हम अनिकसुन्दर से हारे। हूणों और यवनों ने हम पर आक्रमण किये और हमें पराजय के दुर्दिन दिखलाए। मङ्गोल और तातार आए। बाहर बाहरी लोग निरन्तर आते रहे और हमें पददलित करते रहे। इतिहास की ये इतनी और अनेक गाथाएँ क्या पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं कि हम पराजित हुए और अनेक बार पराजित हुए बरन् यों कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा कि हमने किसी भी युद्ध में विजय नहीं पाई।"

"वत्स," सूरजमल की बड़ी-बड़ी आँखें आक्रोश से लाल हो जातीं—"यह तुम्हारी तरुणावस्था ही उत्तरदायी है कि तुममें ऐसी पराभूत मनोवृत्ति का उदय हुआ। मैं इतिहास के सत्यों को अस्वीकार नहीं करता। हम हारे—इस सचाई से मैं इन्कार नहीं करता, परन्तु वत्स, तुमने कभी उन पराजयों और हारों के कारणों पर विचार किया है ?"

"नहीं, काकाजी।" सहम कर, साँगा कहता।

"तो सुनो, हमारी हार हमारी फूट और अनेकता के कारण हुई। हमें बाहरी शत्रु ने इसलिए नहीं हराया कि हम कायर या कमजोर थे, वरन् इसलिए हराया कि हमारे अपने ही भाई, हमारे अपने ही देशवासी हमारे शत्रु का, बाह्य-आक्रमणकारी का साथ दे रहे थे, उसे घर का भेद बता रहे थे। और यह तो दुनिया जानती है कि जिस घर का भेद उजागर हो जाता है, वह विनष्ट हो जाता है। जब घर का यह हाल है तो पूरे देश की बात ही और। बेटा, जब-जब हम हारे अपने ही आदमियों से हारे!"

"मैं आपका दृष्टिकोण स्वीकार करता हूँ काकाजी, प्रथमतः हम अपने-आपसे पराजित हुए, फिर बाह्य शत्रु हमें पराजित कर सका।

इसका तात्पर्य यह निकला कि यदि हम अपने आपमे सगठित हैं, तो अवश्यमेव अपराजेय हैं। पहले हम अपने आप पर विजय प्राप्त करलें, फिर वैरी पर विजय पाना अत्यन्त सरल हो जाएगा।"

"धन्य वत्स !" सारङ्गदेव कहते।

"किन्तु काकाजी, हमारे पूर्वज चाहते तो आक्रमणकारी वैरी के विरुद्ध, एक या दूसरी शक्ति से सहायता लेकर, विजय का वरण करते।"

सूरजमल कहते-कहते नही, प्रश्न करते—

"तुम्हारा तात्पर्य है—वैरी को अपना घर दिखाते ? कहते हैं, ज्वर ने डेरा देख लिया। जो शक्तिहीन है, वह चाहे प्रलयङ्कर महाकाल की भी सहायता ले, कदापि शक्तिशाली नही हो सकता। और वत्स, एक से दूसरी शक्ति मे अन्तर क्या है ? आज इसका लोभ बलवान है इसका स्वार्थ सजग है, इसने अपने अनुचर को उत्तेजित कर हमारे विरुद्ध खडा कर दिया। हम पर आक्रमण हुआ। इस प्रकार कल दूसरी शक्ति भी अपना स्वार्थ सकट मे देखकर, 'असत्य' को सहयोग देने की हमारी अस्वीकृति देखकर, हम पर आक्रमण कर सकती है ! तब इन शक्तियो की मैत्री का मोल क्या, सपूत ! और हम शक्तियो के खेमो में दास बनकर क्यो रहे ? हम स्वय शक्तिनियता और अनन्त शक्ति के स्रोत हैं, क्या तुम्हे वेदो के ऐसे विजयगीतो का स्मरण नही ?"

सारङ्गदेव अपने भतीजे के कथन को बढावा देते —

"और विदेशी शक्ति के अपने भी शत्रु होंगे अवश्य। एक बार जहाँ हमने सहयोग के लिए प्रार्थना की वह हम पर छा जायेगी हमारी सुरक्षा के बहाने। भाग्यशालिनी भूमि पर अपना डेरा डालेगी, अपनी सेनाएँ रखेगी और अपने शस्त्रास्त्रो की रखवाली का भार हमें सौंपकर स्वय चैन की नीद सोएगी। तुम्हीं बताओ, ऐसे सस्ते सेवक अन्यत्र कहाँ मिलेंगे ?"

"काकाजी अपनी तटस्थता ही हमारे लिए हितकर है।"

के धर्म से, वंचित हो जाएँगे, लेकिन कर्मवती को उन्होंने सब कुछ बतला दिया था और वह बिल्ली की तरह नङ्गी तलवार लिए साक्षात् भवानी की भाँति अँधेरी रातों में, घावा की पीड़ा भूलकर सोये हुए साँगा के प्रकोष्ठ पर पहरा देती।

प्रेम की इस प्रत्यक्ष प्रतिमा के पहरे में साँगा सतत् सुरक्षित था।

दिन बीत रहे थे। अनदेखे, अनजाने, अनबूझे एक नन्हा सा प्यार बीज उस सुकुमारी राजकन्या के हृदय में धीमे धीमे अंकुरित हो रहा था, जो एक दिन भावी भारत की साम्राज्ञी बनने वाली थी।

और सारंगदेव के गाँव में, कर्म के कण-कण जोड़कर, वह राजकन्या अपने भाग्य का निर्माण स्वयं ही कर रही थी।

इसीलिए लोग उसे कर्मवती कहते!

रूपराम लौटकर जब स्वामी के डेरे तक आया 'तीन चार यात्री बाहर बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी वेशभूषा और आकृति के वर्ण से विदित था कि वे विदेशी यात्री हैं।

रूपराम ने उन्हे देखकर मन ही मन कहा—"अभी-अभी तो अन्नदाता ने अचेरी के दुर्ग मे पुर्तगाली जासूस को पकड कर पहरे मे बिठाया है। पर ये नये शिकार कहाँ से आ फँसे! स्वामी हमारे ऐसे कुशल और भाग्यशाली शिकारी हैं कि शिकार स्वयं उनके पास चला आता है। सघन वनान्तर के क्षुब्ध पशुपति केसरी के समान जब वे दहाड कर इन्हें देखेंगे, तब इन्हें दिन मे ही तारे नजर आएँगे। रूपराम पछताया, सेवक पीछे रह गया, अपनी भग मे डूबा, वरना, वह भी अगर साथ रहता तो स्वामी की सिंह गर्जना सुन कर अहोभाग्य मानता ··· लेकिन, अजब, गजब की बात है स्वामी को इन विदेशी फिरंगियो की चालें कैसे मालूम हो जाती हैं!

परिचारिका सोने की झारी से जल उँडेल रही थी। कुमार हाथ-मुँह धो रहे थे। भावी दृश्य की रोचकता के प्रलोभन को न रोक सका तो, सेवकराम स्वयं ही आगे बढा और उसने कुमार से निवेदन किया—

"मालवपति महाराजकुमार की जय हो!"

कुमार ने सिर्फ उसकी ओर देखा।

'अन्नदाता ! कुछ विदेशी फिरंगी श्रीमान् के दर्शनों के अभिलाषी हैं। देवद्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

"अच्छा ! उन्हें सादर लिवा लाओ।" उसी समय उन्हें अपने विश्वस्त धरा के संवादों का स्मरण हुआ।

रूपराम विदेशी फिरंगियों को भीतर लाया।

भीतर प्रविष्ट होते ही फिरंगी राजकीय वितान के वैभव को देख कर विस्मित रह गए। स्पष्टतया उनकी आँखें फटी रह गईं ! फिर उन्होंने बार बार झुककर अभिवादन किया और बाँस की एक खूबसूरत टोकरी में कुछ फल-फूल कुमार को भेंट किए। उनमें एक जो काफ़ी बूढ़ा था, बोला—"महाराजकुमार की जय ! बड़े-बड़े स्वप्न लेकर अपनी मातृभूमि से हमने प्रस्थान किया था। किन्तु भाग्य ने साथ न दिया महाराज ! इसलिए यह छोटे-छोटे फल-फूल स्वीकार कीजिए।'

"कितने सुन्दर सुगन्धमय पुष्प हैं ये ! रूपराम इन्हें हमारी शैया के निकट रख दो ! . अतिथिजन, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?' राजकुमार ने मधुर, विनम्र स्वर में पूछा।

प्रेम, विनय, करुणा और माधुर्यमयी इस वाणी को सुनकर बूढ़े की आँखें भर आईं। जैसे वर्षों से वह प्यासा है और किसी शान्त सरोवर के सुधोपम जल और तट की छायामय वनराजि की शरण में भटक रहा है—'स्वामि ! हम तीन फ्रांसीसी यात्री हैं और यह एक रूसी नागरिक है। यह इतिहासकार है और मेरे इन दो मित्रों में-से एक नाविक है और एक चित्रकार।'

"और आप ?' कुमार ने पूछा। उनकी भावाशा से लगता था वे वृद्ध अतिथि से प्रभावित हैं।

रूसी, जो कि इतिहासकार था, बोला महाराज, क्षमा करें। ये सज्जन इतने नम्र हैं कि अपने मुँह अपना परिचय दे न सकेंगे। ये हमारे दल के नेता और फ्रांस के प्रसिद्ध गीतकार हैं। शौर्य और धैर्य के, प्रेम और बलिदान के, युद्ध और शांति के इनके गीत बहुत ओजस्वी हैं। हमारे देश के राजा ग्यारहवें के 'कोर्ट-बार्ड' रह चुके हैं।

"तो आप चारणराज हैं।" राजकुमार तुरन्त खड़े हो गए—"शिव - शिव ! क्षमा करें हमें मालूम न था। हमारे देश की धर्म-परम्परा के अनुसार क्षत्रिय और राजा चारणकवि की अभ्यर्थना करके कृतार्थ होता है। हमें आपके दर्शन से अमित आनन्द हुआ चारणराज !"

और राजकुमार ने प्रांगीनी चारण को दोनों हाथों का सहारा देकर अपने आसन पर अपने पास बिठाया—

"कहिए कविदेव, यात्रा आपकी सानंद सम्पन्न हुई, कष्ट तो नहीं हुआ।"

"युवराज ! प्रभु ईशामसीह आपको कीर्ति, ख्याति और विजय प्रदान करें ! भला भारतभूमि में किसे, कुछ कष्ट हो सकता है।" और फिर से, सफ़ेद भौंहोंवाली अपनी आँखें वह पोंछने लगा। गद्गद् कण्ठ से बोला—'राजन् ! हमने पुर्तगाल में कीर्ति-कथाएँ सुनी थीं। देवभूमि के दर्शन की कामना न रोक सके तो पुर्तगालियों के एक जहाज पर सवार होकर चल पड़े। बीच म दो साथी और मिल गए। मेरी यात्रा का समाचार सुनकर लुई बादशाह ने हिन्दू-सूर्य के नज़राने के लिए बहुमूल्य उपहार और स्नेह-संदेश भेजा था किन्तु राह में हमारे ही पड़ोसी, हमारे ही द्वीप के हमारे ही पुर्तगालियों ने सब कुछ छीन लिया और अनेक प्रकार के कष्ट हम पहुँचाए। जैसे-तैसे प्रभु का नाम जपते " वृद्ध का गला रुँध गया। राजकुमार ने स्वय अपने हाथों उठाकर जल-पात्र उन्हें दिया सेवक दौड़े और चारणराज को सहारा दिया।

जल पीकर कविवर कहने लगा—

"कुमार की जय हो ! प्रभु का नाम सुमरन करते रहे। पहली बार भारतभूमि के तट के दर्शन हुए तो नवजीवन मिला। एक बार पुर्तगालियों के फंदे से बचकर हम भाग निकले और केरल देश के धन्य भाग नागरिका सौराष्ट्र के सेठिया और महामेदपाट के अश्व विक्रेता व्यापारियों के साथ-साथ मालव में आए। उज्जयिनी में हमने महाकाल और क्षिप्रामैया के दर्शन किए। देवी क्षिप्रा के विषय में

दीपादेवी ने बडे हकीम का कहलाकर, आज की रात सोना बनाने का कीमिया मालूम करने की विनती की थी। और इसलाम खाँ ने भी आश्वासन दिया था कि वह इसमें, कीमिया को हासिल करने में दीपादेवी की मदद करेगा, लेकिन, किसी खास काम की से वजह इसलाम खाँ बाहर चला गया। और दीपादेवी के लिए काशी को छोड़कर और कोई सहारा न रहा।

फिर माधुरी की बला सर पर सवार थी। दीपा को यह पूरा भरोसा था कि अगर माधुरी को पूरा दण्ड दिया जाय तो वह मेदिनीराय के बारे में बहुत कुछ बतला देगी। लेकिन, माधुरी लगातार बेहोश थी।

"मैं कहाँ हूँ ?" माधुरी ने फिर से पूछा और उत्तर में बुर्कापोश दीपा खिलखिलाई।

"तुम वहीं हो, जहाँ तुम्हें होना चाहिए।'

"मैं यहाँ क्यों हूँ ?"

'पीर का चढ़ावा बनकर ! आज मुझे यहाँ के फकीर का नज़राना देना है और सुन्दरि तुम से अच्छा नज़राना और क्या हो सकता है ?"

माधुरी उठकर अपनी जगह बैठ गई और चारों ओर का उजड़ा सूनापन देखकर सहम गई। उसने बुर्कापोश छाया से पूछा—

"और तुम कौन हो ?"

'मैं तुम्हारी मौत हूँ !" और सूखे काठ पर नाचने वाली चिनगारियों की तरह, इमली की आड़ में खड़ी वह बुर्कापोश छाया—दीपा ज़ोर से खिलखिलाई।

उसकी खिलखिलाहट मोनिया की मँहगी लड़ो-सी थी। लेकिन, खामोश चाँदनी रात इस खिलखिलाहट से खुशनुमा न बनकर और भी खौफनाक हो गई।

'तुम मुझे क्यों मारना चाहती हो ?" माधुरी ने अत्यन्त भोलेपन से पूछा।

"मारना चाहती हूँ, इसलिए कि तुम अपने कुल पर कलंक लगाकर, राजकुमार के पास भाग जाना चाहती हो !"

"तुम्हे यह कैसे मालूम हुआ ? क्या प्रमाण है कि मैं किसी राज-कुमार के पास जाना चाहती हूँ ?"

"हमे तुम्हारी परिचारिका वल्लभी ने सब कुछ बतला दिया है।"

"वल्लभी इस वेला कहाँ है ?"

"मालूम नहीं।"

"यदि तुम्हारी बात सच होती तो वल्लभी तुम्हारे साथ होती। क्योकि मेरे किसी भेद को प्रकट कर वह स्वयं जीवित रहना पसन्द न करेगी। वह तुम्हारी ओर मिल जाने पर भी, मेरे रहस्य प्रकाशित कर सकती है और मैं तुम्हे एक निजी बात बतला दूँ—मेरा कोई रहस्य नही है !"

"तो तुम मेदिनीराय को नहीं जानती ?"

"जानती तो मैं सबको हूँ परन्तु किसी को जानने या न जानने की बात जाहिर नही की जा सकती।"

"तो अपनी मौत का नाम जानती हो ?"

"हाँ, दीपा भाभी तुम कहो तो बतला दूँ।"

इमली की ओट से कोई उत्तर न मिला। ऐसा प्रतीत होता था मानो दीपा माधुरी के इस अप्रत्याशित उत्तर से चकित और ठगी-सी रह गई थी।

दीपा ने अपने चाँद से चेहरे से नकाब उठाया और इमली की ओट से बाहर आना ही चाहती थी कि दूर पर घोडे के पैरो की आवाज आई। वह वही रुक गई और घोडे की चाल को कान लगाकर सुनने लगी।

घोडा या घुडसवार कगार के बाहर, नदी के कगार वाले ढाल पर आकर रुक गया। शायद वह घोडे से उतर कर इसी ओर आ रहा था। दीपा ने अब देर करना उचित न समझा और चेहरे पर नकाब सँभाल कर आगे कदम बढ़ाया। वह माधुरी की ओर बढी और उसे अपने पीछे चलने का इशारा किया।

माधुरी को अपने स्थान पर अचल देखकर दीपा ने उसका हाथ पकड लिया और धीमे से पुकारा—"खतरा !"

कर ले और सोना बनाने का कीमिया पा जाए, फिर तो वह सारी उज्जियिनी के पत्थरों से सोना बना लेगी। पिछले दिनों पीर की प्रसन्नता के लिए वह अपना सर्वस्व सौंप चुकी थी। आज अपने लोभ की वेदी पर उसने माधुरी सी मासूम कली को भी चढ़ा दिया।

इसलिये अब उसके विचार पीर और माधुरी के मिलन पर मंडरा रहे थे।

लेकिन कुछ और ही होनी थी।

काशी की आँखें दो पल झपकी होगी कि सनसनाती एक कटार उसके पास आकर गिरी और दूसरे ही पल उसका गला और मुँह किन्हीं भयकर हाथों ने दबा दिया।

उस भयकर ने अत्यन्त धीमे स्वर में पूछा–"माधुरी किधर? मार्ग, किधर?" और कटार की नोक से काशी की चोली चीर कर उसकी छाती में उसे भौंक देने का उपक्रम किया।

काशी ने द्वार की ओर इशारा किया। आगन्तुक ने अपनी पगड़ी से काशी को कसकर बाँध दिया और दूर ले जाकर अपने घोड़े के पैरों में डाल दिया। वह—"यहीं चुपचाप पड़ी रहो! यदि जरा भी चू किया तो यह घोड़ा अपने खुरों से तुम्हें रौंद डालेगा!" फिर घोड़े से कहा—

"सावन, इस पापिन का ध्यान रखना। यह, यहाँ से जाने न पाए।'

और लपक कर वह बन्दर की तरह उकड़ूँ-उकड़ूँ दौड़ता हुआ गुप्तद्वार तक आया और धरती पर कान टिकाकर आहट लेने लगा। इधर उधर सावधानी से देखकर उसके द्वार का पाषाण-खण्ड परे हटाया और कटार को तानकर आगे बढ़ा। तहखाने की दो ही सीढ़ियाँ उतरा होगा कि उसके कानों में स्वर आया—'अभी इसे पानी मत दो! होश में आ जाएगी तो हमारी बातें सुन लेगी।"

उस विचित्र व्यक्ति—आगन्तुक ने पानी की अपनी पेटी टटोली। वह पूरी भरी थी और सुरक्षित थी। फिर धीमे धीमे वह नीचे

उतरा। अंधेरे में उसे कुछ दिखाई न देता था। आगे उसमें झाँक कर देखा। मशाल जल रही है। और दीपा देवी एक ओर मुँह किए खामोश लेटी है।

अपने लौटने के मार्ग को दृष्टि में रखकर, वह बहुत धीरे धीरे आगे बढा, उसने पहले पहल अपना शिकार न तो दीपा को बनाया, न पीर को ही, और लपक कर अपने शाल से मशाल को बुझा दिया।

दीपा कुछ समझ न सकी। उसने करवट बदली।

"स् सृ मी'

वह समझ गई पीर ही है। अंधेरा चाहता है।

और फिर से अपने स्वाव में खो गई—इस बार माधुरी को मालूम हो जाएगा दीपा भाभी से छिपकर कुछ करने मतलब क्या है? मजा कैसा मिलता है? पीर का प्रसग कुछ ऐसा-वैसा नहीं है!

तभी उसने एक भयकर चीख सुनी—"या अल्लाह?" और कुछ गिरने और उठने की ध्वनि आई। उसका मन सशंकित हो उठा। परन्तु पहली बार भी बीच में उपस्थित होकर कीमिया के काम में विघ्न डालकर वह पछताई थी सो इस बार उसके लोभ ने उसे अपने स्थान से हिलने-डुलने न दिया। वह अपने आपको समेट कर एक कोने में बैठ गई।

"भय की बात नहीं। नि शक मेरे पीछे चली आइये। मैं आपको रगभवन तक पहुँचा दूगा।'

"अन्धकार में प्रकाश के पुंज तुम कौन हो?"

"समय नहीं है देवि, जीवन में परिचय देने लेन के अनेक अवसर उपलब्ध होंगे।"

"फिर भी मैं अपने उपकारी नाम जानना चाहती हूँ।"

"मेरा नाम विचित्र व्यक्ति है।"

अन्धकार मे माधुरी मुसकराई—"यह भी भला, कोई नाम है?"

: १५ :

पड से कटे हुए तनों की तरह टूटी हुई डालियों की तरह उड़े हुए पत्तों की तरह पिता से पुत्र, पति से पत्नी और माँ से शिशु बिछड़ गये थ। भाई से बहन, बहन से बहन और भाभी से भैया दूर हो गये थे। किसने इन्हें दूर किया था? किसने इन्हें यों विलग होने पर मजबूर किया था?

एक अनाचार ने।

एक अत्याचार ने।

जुल्म के काले पंजे ने।

क्षुद्र निकाय म कुछ भी बाकी नहीं रहा था। जो कुछ परिपूर्ण था सम्पूर्ण हो गया था। कुछ भी शेष नहीं रहा था। अनाचार की अग्नि सब कुछ स्वाहा कर गई थी। उसकी लपलपाती जिह्वाओं के सामने पदार्थ और प्राणी अपना अस्तित्व सचित न रख सके थे।

क्षुद्र निकाय म मात्र भस्म शेष रह गई थी, उसे देख कर ऐसा प्रतीत होता, इसके ढेर के नीचे अब भी वे देहधारी साँस ले रहे हैं जिनकी साँसें इस निकाय को विजन नहीं होने देती थीं।

सूनी रातो मे यह भस्म दूर दूर तक उड कर जाती और एकाकी राहगीरो और अश्वारोहियो की राह रोक लेती, मानो यह उन्हे कहती प्रतीत होती—'जहाँ तुम जाओ हमारी विनाश कथा भी साथ लेते जाओ ?'

इस प्रकार दूर-दूर तक विनाश की कहानी को भस्म के उडते हुए कण फैला आए थे और आस पास के प्रातर मे कोई ऐसा नही रहा था, जिसे यह कहानी अविदित हो !

मेवाड के सीमात पर अर्वली पर्वतमाला ढलती-और-ढलती जाती है, वहीं विपदा के मारे, भाग्य के सताए और मनुष्य की घृणा से हारे-हुए मनुष्य प्रकृति की प्रतिकूलताओ से जूझ रहे थे ।

लकडियाँ कट रही थी, बाँस चुने जा रहे थे । माटी भिगोई जा रही थी । रस्सियाँ बँटी जा रही थी ।

फावडे और कुदाली, हथौडे और फरसे चाकू और छुरे, भट्टियाँ और धौंकनियाँ चल रही थी । निहाई पर, गरम लोहे पर चोट पड रही थी ।

श्रम की प्रत्येक चोट, प्रत्येक प्रहार, प्रत्येक कदम, और प्रत्येक पदगति एक नई रचना कर रही थी । एक व्यक्ति, एक कुटीर और एक परिवार की नही, पूरे समाज, पूरी बस्ती और पूरी सभ्यता की रचना हो रही थी । अपने पसीने की बूँदो से, अपने आँसुओ की बूँदो से और अपने खून की बूँदो से मनुष्य उस मिट्टी को भिगो रहा था, जिससे नये मनुष्य की मूरत बनने वाली थी !

और नया इन्सान बन रहा था ।

निर्माण और रचना के इस आयोजन मे राजो भरपूर भाग ले रही थी । अँधेरे कुएँ और उसके-जैसे ही अँधेरे मार्गो और इन दोनो से भी निकट और विनाशी मानव-मन के अँधियारे कोनो मे घूम-भटककर रूपा लौट आई थी और वह भी अब रचना के इस महान्-कार्य मे लग गई थी । लेकिन रूपा न तो अकेली लौटी थी और न ही अकेली कार्यलीन थी । उसके साथ एक और बाला थी—रूप की देवी

के समान सुंदर, शक्ति की देवी के समान वीर और धन की देवी के समान भाग्यवान। यह दूसरी बाला उच्च क्षत्रियवंश की कुल कन्या थी। उसे देखकर लगता था—कल ही यह गगन का स्पर्श करने वाले ऊँचे शिखरों से सुशोभित राजमहलों को अपनी क्रीडा के कलरव से मुखरित रखती थी, आज अचानक इस विजन वन में भूली हुई देवी के समान आ निकली है।

इस नवागता बाला का नाम था तारा।

माटी को पैरों से रौंदते हुए रूपा ने पूछा—

"लेकिन, बहन तुमने अपना नाम नहीं बताया ?"

तारा ने कहा—"तारा।' और वह मुसकराई।

"टोडा में तुम्हारे यहाँ क्या काम होता था ?'

"काम ?"

"हाँ काम।"

'हमारे यहाँ पट के लिए कोई काम नहीं किया जाता। मेरे पिता पूरे गाँव के ठाकुर हैं।'

राजो ने फावड़े से मिट्टी एक ओर हटाते हुए कहा—

"ओहो, ठाकुर हैं! ठाकुर तो, भई, कुछ भी काम या कमाई नहीं करते!"

"तब भला, वे अपना उदर-पोषण कैसे करते होंगे ?'

"भोली हो," भाभी ने सीता को समझाया—

"ठाकुर सदैव दूसरों के श्रम पर जीते हैं, अतः उन्हें उदर पोषण की चिंता नहीं। दूसरे जो श्रम करके अपने उदर पोषण के अर्थ कमाई करते हैं, ठाकुर उसी का अधिकांश ले लेते हैं।'

"तो इसका मतलब यह निकला—" वे दूसरों की उदर-पूर्ति का हिस्सा बटाते हैं। लेकिन यह तो भीख माँगने के बराबर है।'

"भीख या लूट, कुछ भी कहो ननदिया।"

सूरज सिर पर चढ़ आया था।

धूप पतली परंतु तेज और नुकीली थी। गरम हवाएँ घर छोड़कर

चल पड़ी थी। पेड़ो के नीचे छायाएँ छोटी पड़ गई थीं और विहग-पक्षी पत्तों के नीचे छिपकर मुँह खोले साँस ले रहे थे। सभी लड़कियाँ पेड़ की छाया मे आकर बैठ गईं। उन्होने मिलकर पल्लवो की एक शैया बना दी और तारा को उस पर लिटा दिया।

राजो ने कहा—

"तुम्हारी यह सेवा हम मुफ्त मे नहीं कर रही हैं।"

"आज तुम्हे अपनी आप-बीती सुनानी ही पड़ेगी।" रूपा बोली।

"बहुत दिन से टाल रही हो, आज टल न सकेगी।" सीता ने आग्रह किया।

तारा हँसने लगी। उसने टोडा मे उच्च वर्गों की कई सहेलियाँ पाई थी परन्तु उनमे इतनी सरल और इतना भोलापन नहीं था। इसलिए वह इन हीन जन्मा कन्याओं की बात नही टाल सकी। अपनी पल्लव शैया पर एक हाथ का तकिया बनाए वह कुछ ऊँची होकर लेट गई और अपनी सरस वाणी मे कहने लगी—

"राजस्थान के मरुप्रदेश मे टोडा नामक हमारा गाँव है। बरसों से सोलंकी यहाँ के शासक रहे हैं। इस समय मेरे पिताजी श्री सुरताणजी टोडा के अधिकारी शासक हैं। मेरे दादाजी श्री हरराजजी के नाम पर हम लोग 'हरराजोत' कहलाए।

"पिछले दिनो टोडा पर पठान लल्लाखाँ ने आक्रमण किया! धोखे से उसने हमें हरा दिया और हम जब हार गए तो अपना राज्य छोड़ कर वनवासी बनने को बाध्य हो गए।" कहते-कहते सोलंकी राजकन्या की आँखें भर आई—

"मानव-जीवन कितना विचित्र है। मनुष्य अपने भविष्य की चिंता मे निरत रहकर जाने कितने साधन जुटाता है और जाने कितने लोगो को साधनहीन बनाता है।"

रूपा बोली—"यह तो सच है राजकुमारी जी," अब जब उसे यह मालूम हो गया था, उसकी नई सहेली साधारण ग्राम्या नही राज-कुमारी है तो उसका सम्मान आवश्यक था—

"जब हम किसी वस्तु का संग्रह करते हैं, केवल अपने निजी उपयोग के लिए उसे अपने भण्डार-गृह में बन्द कर देते हैं तो जाने कितने असहाय उससे वंचित हो जाते हैं। साधनों का हम सब मिलकर उपयोग करें, यह तो आज नहीं होता और होता यह है कि बलवान निर्बल का सर्वस्व छीन लेता है और उसे अपनी कृपा कर आश्रित रखता है।"

"किन्तु, जिस दिन हम सभी शक्तिहीन निर्बल जन एक हो जाएँगे और अपने साधनों का उपयोग अपने समूह के लिए ही करेंगे, उस दिन उन लोगों का क्या होगा, जो दूसरों के श्रम पर अपना उदर-पोषण करते हैं ?" राजो बोली। सीता ने सिर हिलाकर समर्थन किया राजकुमारी मुसकराई—

"इस तरह तो समाज कई समूहों में बँट जाएगा और हरेक समूह दूसरे समूह से लड़ेगा।"

सबने तारा की बात स्वीकार की—सच है समाज का हित, सबका हित—अलग-अलग समूह बनाने में नहीं, बाड़ेबंदी में नहीं सबके हित का दृष्टिकोण रखने में है। यदि सभी साधनों पर सभी का समान अधिकार रहे तो, फिर बखेड़ा किस बात पर हो ?

राजवती ने कहा—

"पवन में हम सभी समानरूप से साँस लेते हैं और ऊँच-नीच या राजा रंक का कोई भेद नहीं, बादलों के जल और सूरज के प्रकाश मुक्त रूप से उपभोग करते हैं, सभी करते हैं, यह नहीं कि चाण्डालों को सूरजकिरन कम ऊष्मा देती हो और पुरोहितों को अधिक। नहीं, ऐसा नहीं होता।"

"तो इसी प्रकार जीवन निर्वाह के साधन भी हम सबके सामाजिक अधिकार में क्यों न रहें ? क्यों न व्यक्ति के बदले, समाज का उन पर प्रभुत्व रहे ?" सीता ने उठते हुए, तारा से पूछा।

"हम अभी अनजान और नादान हैं, इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकती।" तारा बोली।

"जब आप राजरानी बन जाएँगी, हम आपके पास आएँगी।

आप सभी पण्डितो पुरोहितो, मन्त्रियो और विद्वानो को बुलाकर इन प्रश्नो का हल पूछना।'

"जरूर पूछूँगी।' तारा ने आश्वासन दिया—"तुम्हारे मुँह मे गुड और घी। बहनो, मैं राजरानी बनूँ या ठकुरानी बनूँ या किसी गरीब राजपूत की राजपूतानी बनूँ—महत्त्व इसका नही है, महत्त्व इस बात का है कि मेरे पूज्य पिताजी को टोडा का राज्य वापस मिल जाए। इसके लिए उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि जो कोई टोडा पर उनका खोया अधिकार स्थापित कराने मे सहायक होगा, उसी के साथ वे मेरा विवाह कर देंगे।' तारा ने कहा और लजा गई।

राजबसी ने चुटकी ली—

"यदि सहयोग 'देनेवाला' न होकर मुझ जैसी कोई सहयोग 'देनेवाली' हुई तो क्या राव सुरताणजी तुम्हारा ब्याह मुझसे कर देंगे?"

सभी सहेलियाँ खिलखिलाकर हँसने लगीं।

तारा ने स्पष्टीकरण किया —

"जो कोई से पिताजी का आशय 'जो कोई वीर राजपूत है।'"

"तब तो मुझे निराश होना पडेगा।' राजबसी ने दूसरी चुटकी ली और सहेलियाँ दूसरी बार खिलखिलाईं।

राजकुमारी तारा ने गम्भीर होकर कहा –

"बहनो, शायद हमे जल्द ही बिछुडना पडे। हम लोग यहाँ किसी आशा से आए थे, परन्तु कुमार जयमल ने मेरे विषय मे सुना और उसने पिताजी को कहलाया है—तारा को मुझे दिखाओ।'

"तो तुम उस बेचारे को दर्शन क्या नहीं देती ?'

"राजपूत कन्याएँ विवाह के लिए भी नही दिखाई जाती।'

'तब क्या उसका विवाह भाग्य पर छोड दिया जाता है।"

"हाँ !"

'इससे तो हम शूद्र ही अच्छे। लडकियाँ स्वय अपना वर पसद कर सकती है। लडके अपनी वधू का चुनाव कर सकते हैं।"

तारा कहने लगी—

निर्वासित कर दिया जाय। चारण राज्य की सीमा से सदैव दिए गए।
एक दिन महाराणा एकलिंगजी के दर्शनार्थ जा रहे थे। मन्दिर के प्रांगण में एक गौ खड़ी थी। गौ यह शुभ दर्शन नहीं थी। बहुत ही निर्बल और कृश सी। उसे देखकर महाराणा दुखी हो गए और वे दर्शन के उपरान्त लौट तबसे लेकर आजीवन बार-बार इस पद का पाठ करते रहे—"कामधेनु तांडव करिय ! कामधेनु तांडव करिय !"

'महाराणा ने एक ज्ञातियों की वाणी पर चारण-जाति को इतना कठोर दण्ड दिया परन्तु किसी ने कुछ न कहा ! चारण जो शान्ति और क्रान्ति में वीरों के गौरवशाली गायक थ, चुप रह गए। हृदय से जिसे 'महाराणा' और 'एकलिंग का दीवान' स्वीकार किया था, उसकी निंदा कैसे करते ?

"राणाजी अपने राजमहल म इधर उधर चहलकदमी किया करते। सायंकाल होते कुम्भश्याम के मन्दिर की सीढ़ियों पर जा बैठते।'

"कुम्भश्याम का मंदिर कुम्भलगढ़ म हमने देखा है। लोग इसे मामादेव का मंदिर कहते।' रूपा बोली।

राजकुमारी ने अपनी कथा का सूत्र टूटने न दिया—

"एक साँझ कुम्भा को अकेला देख ! अपने पिता को अकेला देख, हमारे राणाजी प्रातः स्मरणीय रायमलजी का " भाई "कलंकित नाम का उच्चारण मैं कैसे करूँ" ! मुझे पाप लगेगा।

"कथा सुनाने वाले को पापी का नाम लेने पर भी पाप नहीं लगता। श्रोता भलाई के साथ बुराई की भी पहचान जाए, इसी म उसका उसका कल्याण है। कथाकार का किसी कथन का दोष नहीं लगता, क्योंकि उसका ध्येय तो सत्य का प्रकाशन और असत्य का उन्मूलन है।" गुरु की वाणी थी।

रूपा ने, राजो ने, सोना न, कुटीर स बाहर आती राजो की माँ न—सबने देखा गुरु के सेवक पधारे हैं !

लड़कियाँ, गुरु की शिष्याएँ बहुत प्रसन्न हुईं। सबने बारी-बारी से दण्डवत् प्रणाम किया और चरण रज की मुट्ठियाँ भरकर शीश पर

अपने पढ़ाईं।

"बेटी, अपनी अमृतवाणी का प्रवाह न रोको! मैं भी श्रवण करूँगा।"

आशीष और आदेश पाकर राजकुमारी तारा हर्षित हुई—

"रायमलजी का भाई उदयसिंह यानी ऊदा, इतिहास के सबसे काले अध्यायों में जिसे 'पितृहन्ता', 'पितृघाती' 'नरहन्ता', 'हत्यारा' और पापी के उपनामों से पुकारा गया है वहाँ आया और आते ही उसने अपने पूज्य पिताश्री को प्रणाम किया? नहीं! नहीं!! आते ही उसने अपनी कटार से पिता की पीठ पर एक के बाद एक यों अनेक वार किए। महाराणा के प्राण पखेरू नश्वर नीड को छोड़कर उड़ गए!"

"धिक्! धिक्!!" उन क्षुद्र कन्याओं के कंठ से निकला और वे फूट-फूटकर रोने लगीं उन्हें क्या पता था कि जिस 'प्रतापी' राणा के गीत वे सुनती और गाती आई हैं, उसकी हत्या भी हो सकती है? और वह भी उनके अपने ही पुत्र द्वारा!

"सखियो! इस कुकर्म ने मेवाड़ के उज्ज्वल इतिहास पर कालिख पोत दी! अब हत्यारे के दुर्दिन आए, यद्यपि वह मेवाड़ के सिंहासन पर आ-बैठा! परन्तु उसका अभिवादन कौन करे? राजपूत—सामन्त और साधारणजन तो पितृहंता महापातकी का मुँह देखना—महापाप मानते हैं!"

"मैं पूछना भूल गई महाराणा ने क्या अपने कपूत को मरते मरते शाप नहीं दिया?" रूपा ने पूछा

"बहन! कटार का वार होते ही महाराणा के मुख से निकला—'आह! जोगी-ब्राह्मण का वचन सत्य सिद्ध हुआ। यह कोई हत्यारा चारण है'' और ज्यों ही उन्होंने घूमकर देखा, उनका अपना पुत्र उदयसिंह रक्तरंजित कटार लिए, पैशाचिक रूप में, सामने खड़ा है। महाराणा की आँखें फटी रह गईं। फिर उन आँखों की पुतलियाँ नहीं हिलीं, नहीं हिलीं!"···

गुरुजी बोले—"राजकन्या स्वयं भावावेश में सुधि भूलती जा रही हैं। आगे की घटना मैं सुनाता हूँ। सामन्तों और सैनिकों ने उदयसिंह को कभी अपना 'महाराणा' स्वीकार नहीं किया। रायमल इस समय अपनी ससुराल ईडर में थे। सरदारों ने उन्हें बुलाया और उनके नेतृत्व में उदयसिंह से घनघोर युद्ध हुआ। उदयसिंह हारा सिर्फ हारा ही नहीं हार कर भागा। भागकर वह माण्डू म, मालवा के सुलतान के पास पहुँचा। उनके दोनों लड़के—सहसमल और सूरजमल उसके साथ थे। दो लड़कियाँ भी संग में थीं।

'मालवा का सुलतान या भी मेवाड़ के प्रताप से जलाभुना बैठा था। गृह-कलह का यह अच्छा अवसर सामने देखकर ऊदा को अपने यहाँ शरण दी। ऊदा ने सैनिक सहायता का प्रस्ताव रखा। सुलतान टाल गया। टालता नहीं तो क्या करता? मेवाड़ का बल विक्रम उसे विदित था। जिस प्रलयंकर कुम्भा ने मालवा के सुलतान महमूद प्रथम को अपने दुर्ग चित्तौड़ म छह मास तक बन्दी बनाकर रखा था, उसे और उसके अधिकारी रायमल को वह क्या नहीं जानता था?

"काम बनते न देख उदयसिंह ने दूसरा पासा फेंका। उसने सुलतान से कहा कि यदि वह सहायता के लिए तैयार हो जाएँ तो ऊदा अपनी दोनों राजकन्याओं की शादी सुलतान से कर देगा। इस प्रस्ताव को सुनकर सुलतान के मुँह में पानी भर आया। वह राजी हो गया।

'इधर दोनों राजकन्याएँ संकट में पड़ गईं। पिता के कुकम देखकर वे मन ही मन उससे घृणा करती थीं उन्होंने निश्चय किया कि शादी से पहले ही वे आत्मघात कर अपनी धर्म परम्परा की रक्षा करेंगी। लेकिन ऐसा अवसर ही नहीं आया और परमात्मा ने दगा कि पापी ऊदा का पापकलश पूरी तरह भर गया है तो उसे अपने न्यायालय में बुला लिया। वर्षा के दिन थे। किसी कार्यवश ऊदा घोड़े पर सवार, कहीं जा रहा था कि मार्ग में अचानक उस पर प्रभु के कोप का प्रलयवज्र टूटा। बिजली गिरी। पितृहन्ता ऊदा वहीं ढेर हो गया। जिसने सुना घृणा से मुँह फेर लिया।

—गुरुजी मौन रह गए।

रूपा और राजो ने अश्रुओं से आर्द्र नयन ऊपर उठाए—

"कलंक की भी कथाएँ होती हैं, यह आज ही हमें ज्ञात हुआ! सुनकर हम अपना सिर झुकाती हैं लज्जा, अनुताप और ग्लानि से।"

भारी मन लेकर सब जन अपने-अपने डेरे की ओर चले गए।

गहरा अँधेरा घिर आया। वनान्तर का सूनापन और भयानक स्वरूप और भी सघन हो गया। पगडंडी में दोनों ओर की झाड़ियों में झींगुरों की झनझनाहट गूँजने लगी। बड़े-बड़े पुराने और ऊँचे पेड़ों पर डरावने पक्षी बोलने लगे। सियारों के रोदन उठने लगे। कभी-कभी दूर से सिंह की गर्जन भी सुनाई देने लगी।

भीमा अब तक लौटकर नहीं आया था। कुटिया के द्वार पर राजो की माँ उसकी राह देख रही थी। उसके मन में तरह-तरह की आशंकाएँ उठ रही थीं।

कुटिया में उसने बच्चों को खिला-पिला कर सुला दिया था। राजो भी एक ओर ऊँघ गई थी। सिर्फ रूपा जाग रही थी, क्योंकि वह ससुर के आने पर, उसकी सेवा में, अपनी सास की मदद करना चाहती थी। यह उसका धर्म था और कर्त्तव्य भी।

घड़ी-भर रात और बीत गई। भीमा अभी तक लौटकर नहीं आया था। रात इतनी भयानक हो गई थी कि वह दूसरी झोंपड़ी तक जाकर दूसरे पुरुषों की कुशल भी नहीं पूछ सकती थी कि वे समय पर वनों से लौटकर आए भी, अथवा नहीं।

"माँ ने अपने मन की यह शंका रूपा पर प्रकट की। उसने बतलाया—

"यदि दूसरे जन लौट आते तो, अवश्य यहाँ आकर, मुखिया के समाचार देते। आप चिन्ता मत करो, वे सकुशल लौटते ही होंगे।"

इस वार्ता के कुछ ही पल पश्चात्, दूर पर, चर्बी से जलती मशालों का प्रकाश ऊँची टेकरियों पर उजाला करता दिखाई दिया। उसके पश्चात्, उसी दिशा से कोलाहल सुनाई दिया। माँ ने रूपा

को बुलाया—

'बहू, मुझे लगता है, यह कोई नई विपदा आ रही है।'

रूपा उठकर बाहर आई—

"हमारे जीवन में इतनी विपदाएँ आ चुकी हैं कि अब किसी नई विपदा का भय हमारे मन में शेष नहीं रहा है। सचमुच तो, विपदाओं का अंत आ गया है।"

सास ने उत्तर नहीं दिया। उसकी एकाग्रता कोलाहल की ओर तल्लीन थी—

'बहू, तुम सुन रही हो? मुझे तुम्हारे ससुर का गहरा और ऊँचा स्वर सुनाई दे रहा है।'

"माँ, मुझे कुछ सुनाई नहीं देता। वर्षा के दिन कुमारों ने जो आक्रमण किया था उसमें, एक सिपाही ने मेरे मुँह पर एक घूसा चलाया था, उसकी चोट से मेरे कान लगभग बहरे हो गए थे।

कोलाहल निकट आ गया।

अब सभी आगन्तुक साफ नजर आ रहे थे। मशाल के मंद प्रकाश में उन्हें पहचानना सरल न था, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपनी चाल या बोली से पहचाना जा सकता था।

राजो भी जागकर बाहर आ गई थी। सीता अभी सोई थी। विलंब हो जाने के कारण, भोजन के बाद, आज वह यहीं रह गई थी। चाल और आवाजें पहचानने के बाद माँ और बेटी ने यह निर्णय किया कि समूह में कुछ बाहरी नए लोग भी हैं। इसलिए वे अनजान अतिथियों और पाहुनों के सत्कार की सामग्री जुटाने में लग गईं।

राजो दौड़कर दूर तक चली गई। उसने देखा, उसके पिता ने एक व्यक्ति को बाँध कर, घोड़े पर लटका रखा है। पीछे-पीछे शूद्र निकाय के दूसरे पंच और दो-एक बंदी राजपूत भी हैं जिन्हें शूद्रों ने रस्सियों से बाँध दिया है।

राजो सहमकर नीम के एक पेड़ की ओट हो गई।

मुखिया के आँगन में सब लोग इधर उधर धम्म-से बैठ गए, क्योंकि

वे बहुत थके हुए थे। रूपा ने बांस की खटिया डाल दी। भीमा अपनी भारी भरकम देह का भार ढोता हुआ, उस पर ढुलक गया।

भीमा की दारा भीतर से मद का पात्र भर लाई—

"तुम और सभी पच पी लो, थकान मिट जाएगी।"

भीमा ने एक ही घूंट मे पात्र खाली कर दूसरे साथी को दे दिया। दूसरे ने तीसरे को, इस तरह पात्र कई हाथो में घूमता रहा और पीने वाला के चेहरे अपनी मदिरा मे झलकाता रहा। अपनी-अपनी भावना और तृषा के अनुरूप वह भरा-भरा या खाली-खाली दिखाई दे रहा था। किसी ने एक ही प्याली पी। किसी की प्यास कई प्यालियो पर भी नही बुझी। किसी की प्यास बुझकर फिर जागृत हो गई। कोई ज्यो-ज्यो पीता था, त्यो त्यो प्यास बढती ही जाती थी।

मुखिया ने खटिया पर बैठे हुए, गम्भीर स्वर में पूछा—

'तो आप लोगो का वही फैसला है, जो हमने वन-देवता के सामने वन मे किया था।"

राजो और रूपा छिपकर देख रही थी। घोडे पर लदे हुए व्यक्ति ने तनिक ऊँचा उठने का प्रयास करते हुए पानी मांगा। किसी ने उसकी मांग पर ध्यान नहीं दिया तब वह फिर से कराहकर बोला—

हाँ, नायक ! हाँ मुखिया।" कई आवाजें आई।

'जल, मुझे थोडा जल तो पिलाओ !"

इस पर श्रोताओ मे भयकर एक अट्टहास उठा। भीमा नायक ने कहा—

"अपने गाँव मे हमारे निकाय को जब धू धू जला दिया था और हमारे दादा, शिशु और बूढ़े जब 'पानी पानी' पुकार रहे थे, तब राणा के बेटे तूने उन्हें कितना पानी पिलाया था ?"

एक पच बोला—

'तूने उन्हें एक बूंद के लिए तरसाया, अब तू एक चुल्लू के लिए तरस ! प्रभु का न्याय तो यह है कि जो चुल्लू नही देता, वह बूंद नही पाता।"

फिर से सब लोग खिलखिलाकर हँसने लगे।

माँ को दुखिया और अभागिन बनाना चाहते हो ? अत्याचार की प्यास बुझाने के लिए मेरे और रूपा के आँसू ही काफी हैं।"

"लेकिन न्याय का हमारे न्याय का क्या होगा ?"

'न्याय की चिन्ता तुम क्या करते हो? वह तो राजा और परमेश्वर का काम है। अपनी चिन्ता वे आप करेंगे। तुम तो अन्याय की चिन्ता करो—कहीं तुम्हारे हाथों जाने-अनजाने अन्याय न हो जाए।"

"तो तुम हमारे न्याय को अन्याय कहती हो ?" पंचों ने पूछा।

'जिस न्याय का परिणाम किसी दूसरे प्राणी की पीड़ा का कारण बने, वह अन्याय नहीं तो और क्या है ? जयमल की माँ निपूती हो जाएगी' तुम जयमल को दंड दे रहे हो या इसके अनेक संबंधियों को?"

"बात तो ठीक कहती है।' एक वृद्ध ने रानी की माँ का समर्थन किया।

"एक मैं निपूती हुई और मेरा हिया चलनी हो गया, अब एक और नारी निपूती क्या हो ? निपूतों की पीर मैं जानती हूँ नायक !"

रूपा ने कहा—

"यदि पंचों की अनुमति हो तो मेरा प्रस्ताव है, कुमार को छोड़ दिया जाए और दण्ड में इन्हें पानी न पिलाया जाए। कष्ट का एक क्षण और कष्ट का एक वर्ष, दोनों समान हैं।'

"तो इसे छोड़ दें ?" नायक ने खटिया से उठकर पंचों की राय पूछी।

"छोड़ दो, छोड़ दो।' सबने कहा।

दो आदमियों ने आगे बढ़कर, जयमल की उस के सिपाहियों की रस्सियाँ खोल दीं।

नायक और पंच फिर से मदिरापान करने लगे।

नायकपत्नी, सीता और रूपा उन्हें दूर तक विदा करने आईं।

जयमल का सिर झुका था। कठिनाई से वह घोड़े पर सीधा बैठा था। नायक-पत्नी की ओर एक बार देखकर उसने घोड़ा आगे बढ़ाया।

अँधेरे मे एक छाया निकल आई—

"जाने से पहले जल पी लो। अपने लोगों मे यह न कहना कि शूद्रो के हृदय नही है!"

कुमार जयमल चकित भ्रमित सा राजवसी को देखता रह गया।

"क्या मेरे हाथ का जल नही पीओगे? नही पीना चाहिए, मगर आपत्काल मे आत्म धर्म की अपेक्षा देह धर्म की रक्षा महत्त्वपूर्ण है। लो, पीओ। जल्दी करो हमारे पुरुष देख लगे।"

राजकुमार ने ठडे जल से अपनी प्यास बुझाई।

पीछे से रूपा की आवाज आई—

'मेरे पति का जब वध किया जारहा था, उसने पानी माँगा था। और वह तुम ही थे कुमार, जिसने जल पिलाने के लिए आगे बढ़ी मुझ अबला की कनसी तोड दी थी। जाओ कुमार, चिरजीवी और विजयी हो ओ, यद्यपि एक शूद्राणी तुम्हे आशीष नही दे सकती। इतना ही स्मरण रखना कि क्षत्रियो के समुदाय म एक दिन एक शूद्र न पानी पानी' पुकारते हुए प्राण त्याग किया था, परन्तु शूद्रा के समुदाय मे, न केवल, क्षत्रिय को प्राणदान ही मिला वरन् जलदान भी। राजकुमार, तुम बडे हो। बडा समुदर है जिसके किनारे आकर पथी और पछी प्यासा जा सकता है, परन्तु हम हैं छोटे जलाशय, हमारे तट तक आकर कोई प्यासा नही लौट सकता! यह और बात कि प्यास बुझाने से पहले और बाद मे पथी हम पर ढला फेंकता जाए!

कुमार का चेहरा झुक गया! सारा अभिमान गल गया।

मौन वह अपने घोडे पर बैठा। लाजो ने मज्जा की एक उल्का जलाकर कुमार के हाथ म थमा दी—

'यह तुम्हे राह दिखाएगी। बीच म बुझ जाए तो मेरे शहीद भैया का स्मरण करना अथवा इस सती का।"

राजो ने भाभी का ओर सकेत किया।

जयमल का अश्व आगे बढ़ गया।

सिपाही पीछे-पीछे चले!

दुर्दान्त दिशाओं की घृणा को अपने प्रचण्ड भाले की नोंक से बेधकर, त्रिपुरा को जीतने वाला, मेवाड़ के विश्वविजयी महाराणा का दुलारा, वह राजकुमार आज शूद्रा के प्रेम से पराजित होकर लौट रहा था !

उसके वैर को शूद्रों की क्षमा ने जीत लिया था।

उसके अनमोल अस्त्र किसी काम नहीं आये !

उसका प्रचण्ड पौरुष निरर्थक रहा !

एक मैली-कुचैली, गन्दी भद्दी शूद्र नारी के मातृत्व की मुसकान ने चित्तौड़गढ़ के उस अभिमान को चूर-चूर कर दिया, जिसे संसार के बलशाली योद्धा भी चूर्ण नहीं कर सके थे !

: १६ :

रूपराम और अन्य सेवकों ने मिलकर आगत अतिथियों के स्वागत सत्कार का सम्पूर्ण प्रबन्ध किया। तब तक सेवकराम भी आकण्ठ भंग का पान कर, आ डटा। उसकी अरोक धाराधर वार्ता सुनकर, अतिथि भी खिलखिला कर हँसते रहे।

सेवकराम वृद्ध चारण के पैर दबाने लगा। और आशीषा की बरखा करने लगा। फिर धीरे धीरे उसने अपनी हथेली फैलाकर वृद्ध अतिथि की गोद में रखदी। अनजान विदेशी, वह कुछ न समझा। रूपराम और दूसरे परिचारक होठ पर होठ दबाकर अपनी हँसी रोकने का प्रयास करने लगे।

जब बड़ी देर तक हथेली वैसी रही तो दूसरे फ्रांसीसी ने रूपराम से पूछा—'ये क्या चाहते हैं ?

रूपराम—श्रीमान्, ये सेवकरामजी चाहते हैं कि अतिथि महोदय इनका हाथ देखें, रेखाएँ पढ़ें और सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार बतलाएँ कि इनकी हस्तलिपि में पत्नी का योग लिखा है या नहीं ?'

वृद्ध अपने पोपले मुँह से मुसकराने लगा। उसकी लम्बी दाढ़ी और लम्बी पोशाक, उसकी लम्बी देह पर बहुत खिल रही थी और वह फ्रांसीसी से अधिक भारतीय लग रहा था, यदि उसकी आंखों का रंग नीला न होता तो सहज ही वह भारतीय मान लिया जाता। सन से

नहीं, फिर भी, मन प्राण से वह भारतीय था। अपने कुछ ही दिनों के भारत भ्रमण और परिवास में, वह भारत के कण-कण से प्रेम करने लगा था।

चारणराज ने सेवकराम की हस्त-रेखा तो नहीं, मुख रेखा और आकृति बड़े गौर से देखी और आँखों में आँखें डालकर कुछ देखा, कुछ पढ़ा। सेवकराम ने सहम कर आँखें नीची करलीं। वह वृद्ध की आँखों से, अपलक, आँखें न मिला सका।

वृद्ध की आँखों में आभा की अन्तहीन गहराइयाँ थी। माधुर्य के मानो निर्झर झर रहे थे। गौरव की गंगोत्रियाँ प्रवाहित थी और शांति के सरोवर लहरा रहे थे। यदि सचमुच फ्रान्स देश महान् था तो, वृद्ध चारण उस महानता का मूर्तिमत प्रतीक था। उसके शौर्य, त्याग और पराक्रम का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि था। अवश्य, उसके कलकण्ठ में विराजमान होकर फ्रान्स की मधुरी वाणी अधिक समर्थ हो उठी थी। वह जीवन में मानवी विजय की ज्वालवती आस्था का ज्वलंत उदाहरण था। युगकवि की वाणी अपने वक्त की मशाल होती है—सबसे ऊँचे स्थल पर वाणी इस सत्य का सबल सबूत थी।

उसी वाणी ने सेवकराम से कहा—"तू स्वामी के कारज में काम आएगा।'

सुनकर सेवकराम बहुत प्रसन्न हुआ।

बड़ी-बड़ी अँखियों में घनी अमा की अँधियारियों-सा घना घना अजन आँज कर श्यामल निशीथिनी पाटा वर्षिका के क्षितिजरहित मंदाना में उतर आई थी। चारोंओर से नौजवान फसलों के यौवन-पराग की गंध आ रही थी, किंतु अपने ही रस-राग के मारवश वह चल नहीं पा रही थी, इसलिए, उसका प्रेमी मरुत उसे भुजाओं में भर कर, आगे और आगे बढ़ा रहा था। गंधवाला की रूपभार शिथिल मन्दगति प्रति पद इसका सिंचन कर रही थी। रूप, रस, राग और गंध का यह मूर्च्छना-मेला प्रत्येक प्राणी—जीव-अजीव, जड़-चेतन को अपने प्राणों के स्वप्न प्रदेश में आत्म विस्मृत और आत्म-सम्मोहित कर रहा था।

अपने साथियों की अपेक्षा चारण कवि ने भोजन-समारम्भ में विशेष उत्साह दिखलाया। पूर्ण मनोयोग और रुचिपूर्वक उन्होंने विविध व्यंजनों और विभिन्न पकवानों पर दया दिखाई। इस परिवृद्ध आयु में भी फिरंगी कवि के आहार की मात्रा विपुल थी। भोजन विषयक उनकी जानकारी, सूझबूझ और दिलचस्पी देखकर कुमार दंग रह गए। स्वयं उन्होंने आग्रहपूर्वक कवि को थाली में विशिष्ट व्यंजन परोसवाए! थोड़ी थोड़ी देर में अपनी दाढ़ी के बालों को अपने रूमाल से पोंछते हुए चारणराज अन्नदेवता का समुचित सत्कार कर रहे थे। परन्तु प्रस्तुत समाज में भोजन में उनकी बराबरी करनेवाला कोई न था, बूटीवाला की खुमारी पर आसक्त एक सेवकराम था, लेकिन सेवक होने के कारण वह स्वामियों के सम्मुख, उनके साथ बैठकर, भोजन कैसे करता? अतः पिछवाड़े रसोई महाराज की सीमा से परे एक ओर बैठा, तात्कालिक तन्मयतापूर्वक वह उन राजसी पकवानों का सहार कर रहा था।

प्रज्वलित दीपमालाओं के झिलमिल प्रकाश में राजकुमार मेदिनीराय और उनके स्थानीय साथियों, नागरिक और सामरिक अधिकारियों की सभा विराजित हुई। एक उच्चासन पर फ्रांसीसी चारण-कविजी बैठे। उनके आसपास, इधर उधर, इतस्ततः श्रोताजन बैठे। यह राजा का नहीं कवि का दरबार था अतः तदनुसार मेदिनीरायजी ने अपने लिए उच्चासन स्वीकार नहीं किया और शेष भद्रजनों के समान, वे भी साधारण बिछावन पर बैठ गए।

अपना यह स्वर्गीय, अति सुसभ्य सम्मान देखकर चारण-कवि की आँखें बार-बार भर भर आती थीं। फ्रान्स के राजा ग्यारहवें लुई की राजसभाओं में कवि जिस सम्मान की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था, वह अनमांगे, अनचाहे ही यहाँ सहज सुलभ था! अब, कवि की समझ में आया कि क्योंकर हिंदू जन साहित्य-वाणी को सरस्वती कहते हैं! और सरस्वती कहते हैं, अवतारी देवी मानते हैं, तभी न सरस्वती के सपूतों—

: १७ :

एक-एक कर अतिथि आने लगे—
ग़ालिबख़ाँ बहुत मोटा था !
सुलैमान मोदी सितार के तार की तरह पतला था !
साहिबख़ाँ नाटा था !
उसके साथ लम्बे कद का एक अतिथि था—
शायद वह गुजराती था !
महाबली श्रेष्ठी ने सबका स्वागत किया।

साहिबख़ाँ ने खड़े होकर कहा—"पहले कुछ अर्ज़ करने की बेअदबी के लिए माफ़ी चाहता हूँ। ये हैं मेरे दोस्त जाने जिगर जनाब ज़फ़रशाह—आप गुजरात के सुलताने-मुअज़्ज़म, जहाँपनाह मुज़फ़्फ़रशाह के छोटे भाई हैं ! मुझ पर आपकी मिहरबानियाँ उतनी हैं, जितने आसमान में सितारे भी नहीं हैं !

"साधु ! साधु !" श्रेष्ठी ने कहा और वे उठकर ज़फ़रशाह के गले मिले। श्रेष्ठी ने ज़फ़रशाह को आग्रहपूर्वक अपने पास बिठाया। कुछ देर श्रेष्ठी का मान रखने के लिए, उनके निकट बैठकर, ज़फ़रशाह जाकर अपने आसन पर बैठ गया।

स्वागत-सत्कार के पश्चात् मन्त्रणा आरम्भ हुई।

नगरश्रेष्ठी ने साहिबखाँ से कहा—

"मान्यवर, अब आप उपस्थित अधिनियो के सम्मुख अपनी भावना प्रस्तुत कीजिए। मालवा के सिंहासन और शासन के विषय मे आप क्या चाहते हैं ?"

"जरूर !" साहिबखाँ अपने आसन के आगे खड़ा हो गया। और कहने लगा—

"आलीजनाब, यह तो आपको मालूम है कि मेरे बड़े भाई मुहम्मद खानो हिन्दुओ और खासकर राजपूतो के तरफ़दार है। मालवा की सल्तनत हड़पने के लिए उन्होने यह साजिश की है। और राजपूतो से मेलजोल बढाया है।"

"यह मैंने अपनी आँखो देखा है, क्योंकि मैं बरसो मे माण्डु का सूबेदार रहा हूँ, जिसे आप लोग राज्यपाल कहते हैं। हजरत ने हिंदुओं को तरजीह दी और जैनियो को अपने से दूर रखा।" शालिवखाँ बोला। और उसने सुलेमान लोदी की ओर आँख से इशारा किया।

शालिवखाँ की बात समझकर सुलेमान लोदी आगे बढ़ा—

"साहबान्, दिल्ली की सल्तनत हिन्दुओं मे सिर्फ बम्हनो और राजपूतो के खिलाफ है क्योंकि ये दोनो कौमें बड़ी अक्खड़ और सरफरोश हैं। बाकी जैनियो से हमारी कोई शिकायत नहीं। आज भी दिल्ली, गुजरात और दक्खन मे जैनी, सेठ्ठि और महाजन हमारे खजाची यानी कोषपाल और भण्डारी हैं। दोस्तो, इससे बड़ा भरोसा और क्या हो सकता है ?"

तब नगरश्रेष्ठी ने सुलेमान लोदी की बात का अनुमोदन किया—

"राजपूत हिंसक हैं। हिंसा मे उनका विश्वास है। और ब्राह्मणो की गीता कहती है कि 'मारो' जो भी कोई समाज का शत्रु हो, उसे मारो ! लेकिन हम समस्त जैनी-जन तो अहिंसा का पालन करते हैं और हमारे तीर्थंकरो का आदेश है कि किसी को मत मारो।"

सूरजसिंह ने अपने श्रेष्ठी की चर्चा की अर्चा की—

"धन्य है, धन्य है श्रीमान् ! किसी को न मारने की भावना रखने

पर ही आप सबसे व्यापार कर सकते हैं। आपकी दृष्टि में ऊँच-नीच और बड़े-छोटे सब समान हैं। तभी आप गुजरात के शाह और मेवाड़ के महारानाओं और दिल्ली के लोदी बादशाहों से समान रूप से व्यापार करते हैं और सर्वत्र आपकी पहुँच है।"

"हमारे लिए क्या गुजरात, क्या मालवा, क्या खानदेश, क्या दिल्ली क्या दक्खन और क्या मेदपाट—सभी धरती समान है। हम तो अहिंसक हैं। यदि लोदी राज्य करते हैं तो करें। दूर उत्तर से मोगल आते हैं तो आएँ, खानों की सेना चढ़ाई करती है, तो करे। हमें तो अपने पवित्र जिन धर्म का पालन करते हुए सबसे व्यापार करना है। जो द्रव्य-धन दे सकता है, वह हम से सब कुछ ले सकता है वैसे जिन धर्म की वृद्धि के लिए हम बम्हनों और राजपूतों के शत्रुओं की सहायता भी कर सकते हैं किंतु केवल धन-साधन से।

नगरश्रेष्ठि के इस कथन पर सूरजसिंह ने एक बात का स्मरण दिलाया—

"महाराज, हमसे सहायता लेने वाले बाहुबली को पत्रक पर यह लिख देना पड़ेगा कि हमारी सहायता के कारण युद्ध आदि हिंसक कार्यों में जो अनन्त जीव-हानि और हिंसा होगी, उसका उत्तरदायित्व उसे लेने वाले दल पर रहेगा।"

"साधु-साधु! यह हमारी पहली शर्त है क्योंकि जिसमें जीव-हिंसा होती हो ऐसे किसी भी कार्य में हम भाग नहीं ले सकते।"

"वाह, वाह, मजहब का यह शौक और जोश कोई आप जैनियों से सीखे!" गालिबखाँ ने अपने मोटे गले से निकली बारीक आवाज में कहा।

सुलेमान लोदी बोला—

"अब साहिब खाँ साहब! आप क्या चाहते हैं? फरमाइए।"

"मेरा सवाल है आलीजनाब, पहले आप ही फरमाइए कि दिल्ली के लोदी सुलतान और उनके अमीर उमरा की क्या मर्जी और शर्तें हैं?"

साहिबखाँ के इस कथन पर सूरजसिंह ने सुलेमान लोदी और ग़ालिबखाँ की ओर देखते हुए साहिबखाँ से कहा—

'अच्छा तो यही होगा, खाँसाहब पहले आप अपनी शर्तें महाबली श्रेष्ठी के सम्मुख रखें।' और उसने श्रेष्ठी की ओर देखा। श्रेष्ठी ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

सुलेमान लोदी ने सरजसिंह के शब्दों का समर्थन किया—

"बहतर तो यही होता कि आपकी मशा क्या है, यह मालूम हो जाए, ताकि हम उसे पूरा करने की कोशिश में खच होने वाली अपनी और अपने दोस्तों की ताक़त का अन्दाज निगह म रखते हुए सारी बातो पर गौर करें।"

"बेहतर है।" कहकर साहिबखाँ ने श्रेष्ठी और सूरजसिंह की ओर अर्थमयी दृष्टि डाली और साफ आवाज मे कह दिया—

"मैं मालवा का सुल्तान बनना चाहता हूँ।'

"सुल्तान बनने का यह मतलब है कि आप दिल्ली के लोदियो और उनके तख्त की आलमपनाह ताकत के साए से अपने आपको अलग रखना चाहते हैं।" सुलेमान लोदी बोला।

"मालवा के इस पठानो ने दिल्ली के अपने दोस्तों को हमेशा दोस्त माना है। और एक न हमेशा दूसरे की मदद की है, ऐसी हालत मे मालवा दिल्ली की सल्तनत के साए मे रहे या आज़ाद एक हुकूमत रहे, यह तो आलीजनाब वक्त की तब्दीलियो और हालात को जेरेनजार रखते हुए तय किया जाएगा। हाँ, इस वक्त मैं तहेदिल से इतना कह सकता हूँ कि मालवा के मुसलमान कभी दिल्ली की हुकूमत के खिलाफ नही जाएँगे। कभी उनकी हुकमउदूली नहीं करेंगे।"

"इतना काफी है।'

श्रेष्ठी ने गुजरात के शाह मुजफ्फरशाह के छोटे भाई जफरशाह से कहा—

"हजूर, क्या चुप ही रहेंगे ? कुछ आप भी कहिए।"

"मैं क्या कह सकता हूँ, भला, जहाँ, इतने बडे बडे साहबान और

उनके बड़े-बड़े दमाग़ लगे हुए हैं।"

"फिर भी ?" सूरजसिंह ने इसरार किया।

'मुझे कुछ और वाकफ़ियत दीजिए, तो कुछ अर्ज करूं !" —जफ़रशाह ने नम्र शब्दों में कहा।

विवरण सूरजसिंह ने दिया—

"किस्सा कोताह यह है हुजूर कि मुहम्मद सानी के जुल्मों से तंग आकर साहिबखाँ साहब ने बग़ावत का झंडा ऊँचा उठाया। इस काम में सबसे बड़ी मदद जनाब ग़ालिबखाँ से मिली और मुहम्मदखाँ, जो खुद अपने को मुहम्मद सानी कहकर मालवा के तख्त पर बैठना चाहते थे, भाग जाने को मजबूर हुए। और इस वक्त चित्तौड़गढ़ के करीब पहुँच चुके हैं। वहाँ वे महाराणा रायमल्ल की शरण लेंगे और उन्हें खुश करके फौजी मदद भी लेंगे।"

'और बीच राह में हमारे जासूस हमलावरों ने उनके डेरे को तितर बितर कर दिया। भगदड़ मची। और उनकी साली अपनी सहेलियों से बिछुड़ गई। उसने किसी तरह चन्देरी के राजकुमार मेदिनीराय को अपने प्रेमपाश में बाँध लिया। कुछ दिन की लीलाओं के पश्चात् उसने मेदिनीराय से यह वचन ले लिया कि वे उसके जीजा मुहम्मदखाँ को माडू का राज्य दिलाने में मददगार साबित होंगे। मेदिनीरायजी ने तो इस ईरानी रमणी से मांडू में मिलने का वादा भी किया है।'

ये शब्द अपने पिता के मुख से आस्तरण की ओट, वल्लभी के निकट बैठी माधुरी ने भी ध्यान से सुने और वल्लभी की ओर देखा। वल्लभी ने कहा—

'देवि धीरज रखिए।'

'धीरज ही अब मेरा जीवन-धन है, सखि! वे चाहे किसी के पाश में बँधकर रहें, मेरे हैं। और मेरे पास कोई पाश नहीं है। मेरी ओर से वे सदैव पूर्ण मुक्त हैं।"

वल्लभी ने आँखों ही आँखों से उत्तर दिया।

जफरशाह कह रहा था—

अगर मेदिनीराय ने उस ईरानीपरी से कोई वादा किया है तो जरूर उसे पूरा करने की कोशिश करेंगे और उनकी हरचंद यह भी कोशिश रहेगी कि महाराना सांगा मुहम्मदखां साहब के मददगार बनें। इन हालात को देखते हुए मेरा ख्याल तो यही है कि झगड़े की जड़ मेदिनीराय हैं।

और हमें चाहिए कि झगड़े की इस जड़ को अपने रास्ते से हटा दें। सुलेमान लोदी ने कहा।

इसका समुचित प्रबन्ध हो चुका है।

नगरश्रेष्ठि बोला।

किस प्रकार? गालिबखां ने पूछा।

सूरजसिंह अपने अतिथियों को अपनी बात बतलाने में कोई हानि नहीं है। यहां सब एक ही परिवार के परिजन हैं।

जो आज्ञा! सूरजसिंह उठकर खड़ा हो गया— श्रीमान् मैंने मेदिनीरायजी के एक सेवक को अपनी ओर मिला लिया है।

सो कैसे?

वह सेवक मंत्रसिद्धि का बड़ा लोभी है। और आप जानते हैं कि मैं भेष बदलकर महामंत्र का ज्ञानी औघड़ अवधूत बन सकता हूं। मेरे साथ मेरी शिष्या चामुंडा नाम से रही। हम अपने स्वांग का सफल प्रयोग कर चुके हैं। मेदिनीरायजी के सेवक को हमने पहली बार तो अपना चमत्कार दिखलाकर ठुकरा दिया। परन्तु हम जानते थे कि वह दूसरी बार भी जब वह आया तो दूसरा चमत्कार देखकर पागल हो गया। हमने उसे राजी कर लिया है कि वह मेदिनीराय के भोजन में विष मिला देगा। (सुनकर माधुरी कांप उठी और उसकी आंख भर आई।) और उसे मंत्र सिखलाने का पूरा प्रबंध कर दिया है। हमारे कई विश्वस्त चर वरो-समाज में छाए हुए हैं।

नगरश्रेष्ठी ने सूरजसिंह की बात की पुष्टि की—

चित्तौड़गढ़ का प्रसिद्ध एक सेना-नायक तेवर मालविकाओं का

बड़ा मनुरागी है। उसे हम धीरे धीरे अपने पक्ष में मिला लेने का प्रयत्न कर रहे हैं यदि हमारा यह प्रयास सफल हुआ तो भ्राप इस बात को कभी न भूलिएगा कि राजपूतों की शक्ति सदासर्वदा के लिए मिट जाएगी। और हिन्दुत्व का निर्बल दीपक बुझ जाएगा।' सेठ ने अपने मुख से, आह्लाद प्रकट करते हुए कहा "प्रत्येक निवालय के सम्मुख एक जिनालय की स्थापना करने की मेरी उत्कट अभिलाषा है। देखें जिनदेव कब इसे पूरी करते हैं।

'आपकी मंशा जरूर पूरी होगी।" जफ़रशाह बोला—

"और वह नया कापालिक कहाँ है ?" शानिदखाँ का सवाल था।

"इस समय वह गौतमनाथ में है।'

"गौतमनाथ ?" सुलेमान सोदी ने पूछा।

"श्रीमान्, काँठल प्रदेश में अरुणोदय नामक ग्राम के निकट गौतमनाथ शैवों का एक स्थान है। उस स्थान को मैंने भी देखा और देखकर प्रसन्न हुआ। हमारी पुत्रवधू, धन-लक्ष्मी दीपादेवी का नैहर उसी अरुणोदय ग्राम में है।"

"इसी गौतमनाथ के मशहूर शिवलिंग पर साहिबखाँ ने हमला किया और अपनी भारी गदा से चोट पर चोट मारी। और सुनो यह देखिए कि जो कुछ किया अपने आका मुहम्मदखाँ के नाम पर किया।"

"ताकि वे काफ़िरों से मेलजोल बढ़ाने में कामयाब न हो। उनमें और काफ़िरों में फूट पड़ जाए।

'अच्छा, तो वह नया बाबा आजकल गौतमनाथ में है ?" जफ़र शाह ने कुतूहल प्रकट किया।

सूरजसिंह बोला—"जी श्रीमान्, आपके इस बड़ा-बैरागी ने अवधूत बनकर उन्हें खूब छकाया है और उनके पास चुनौती भेजी है कि अगरचे वो सच्चे कापालिक हैं तो, हमारे अखाड़े की एक शिष्या चामुण्डा के साथ मैदान में उतरें और उससे रति-स्पर्धा करें। इसमें कापालिक की हार और मौत निश्चित है क्योंकि रति-स्पर्धा के लिए

हम चामुंडा के नाम से जिस महनाज नूरेजहाँ को पेश कर रहे हैं, उसके एक ही दाँव से कापालिक हार जाएगा। उसकी एक ही भदा से उस मग़रूर नंगे आदमी का गुमान गल जाएगा। और, आली जनाब, वह खुश दिन दूर नहीं होगा, जब मालवा के तख्त पर हमारे दोस्त और सिपहसालार साहिबखाँ रौनक अफ़रोज होंगे।"

"आमीन! आमीन!" सभी मुसलमान अतिथियों ने समवेत स्वर में कहा।

"तथास्तु!" श्रेष्ठि ने कहा—

इस महत्कार्य के निमित्त जितना धन—जितनी दौलत चाहिए, मैं दूँगा और इस शर्त पर कि इसमें होने वाली हिंसा का उत्तरदायित्व आप लोग अपने सिर पर लें। क्योंकि आप जानते हैं कि मेरे लिए तो जीवन में अहिंसा का महत्त्व मेरे प्राणों से भी अधिक है। शैवों और ब्राह्मणों की बढ़ती हुई शक्ति के समकक्ष आप जिन धर्म को प्रतिष्ठित कर दें, मेरी इतनी ही कामना है। मेरी पूँजी का ब्याज आप दें या न दें, मुझे इसकी चिंता नहीं। आप गांधार, खुरासान, तातार और उज़बक प्रदेश से अपने बिरादरों को बुलाइए और एक बहुत बड़ी सेना का संगठन कीजिए और एकओर मालवा पर आधिपत्य स्थापित कीजिए, दूसरी तरफ मेदपाट और राजस्थान पर आक्रमण कीजिए।"

'बहुत खूब! बहुत खूब!

'साहबान, इस सारी तैयारी और लड़ाई में मैं आपकी पूरी पूरी कामयाबी और फतह का तरफ़दार हूँ, और मैं आपको कभी निराश नहीं करूँगा। किन्तु हमें राणा रायमल्ल के विरुद्ध आक्रमण करने या उनकी सहायता लेकर आनेवाले मुहम्मदखाँ के खिलाफ लड़ने के पहले अपनी ताकत और अपनी कमजोरियों को भी अच्छी तरह देख-परख लेना चाहिए। क्योंकि अभी मालवा के अफ़ग़ान जातीय सुन्नी फिरके के रहनुमा दिल्ली के ग़ोरी खानदान के वंशज दमश्क के सुल्तान शहाबुद्दीन के सम्बन्धी दिलावरशाह के शाहज़ादे

होशगवाँ और उनके नामदार वारिस मुहम्मद खिलजी यानी मुहम्मद पहले को महाराणा कुम्भा अर्थात् हिन्दू-सूर्य महाराणा कुम्भकर्ण ने मसीही सन् १४४० में बहुत बुरी तरह हराया था। और अपनी फ़तह की खुशी में चित्तौड़गढ़ में १२२ फुट ऊँचा विजय-स्तम्भ बनवाया था।

'आज भी उस लड़ाई के घाव हरे हैं। आज भी पठानों उज़बकों और लोदियों को राणा कुम्भा का नाम सुनकर कँपकँपी चढ़ती है। ऐसी दशा में इस समय मेवाड़ की महाबलधारिणी सेनाओं से जूझना बुद्धिमानी नहीं होगी।' श्रेष्ठि-पत्नी मीनाक्षीदेवी ने कक्ष में प्रवेश करते हुए कहा। उन्हें देखकर सभी अतिथि खड़े हो गए। उन्होंने अत्यन्त मधुर वाणी में पूछा— इस समय आप अपने पान के लिए कौन-सा पदार्थ पसन्द करेंगे ? क्षमा करें मैंने आपके राजकाज में विघ्न डाला।

'नहीं नहीं देवी आपके तशरीफ़ लाने से हमारे किसी काम में कोई खलल नहीं पड़ा। उल्टे इस महफ़िल को आपने रौनक अफ़रोज़ किया ! सुलेमान लोदी ने म्लेच्छ प्रकृत्यानुकूल विलासी स्वर में कहा।

श्रेष्ठि-पत्नी उसकी ओर तनिक मुसकराईं।

'मेरे विचार से इस वेला शीतलपेय अधिक अनुकूल रहेगा। आगे जैसी आपकी इच्छा ' सूरजसिंह ने विनम्रतापूर्वक कहा।

साहिबखाँ बोला— साहबान अब हमारे और नगरश्रेष्ठि के बाहमी दस्तावेज़ की शर्तों को खयाल में रखते हुए कागज़ पर लिखा पढ़ी हो जानी चाहिए।

ज़फ़रयाह ने साहिबखाँ के कथन को सराहा।

सूरजसिंह लिखने बैठा।

ग़ालिबखाँ ने कहा— सूरजसिंह पहले सादे काग़ज़ पर सभी शर्तें लिख ली जाएँ बाद में रात में या कल सुबह पक्के दस्तावेज़ तयार कर लिए जावें !

'उत्तम विचार है यह !" श्रेष्ठी ने कहा।

शाफरशाह बोला—'अब आप अपनी मर्ज़ी इशारे में बिना किसी हिचक के, बतला दीजिए सूरजसिंह लिखने जाएँ।"

मैं प्रस्तुत हूँ श्रीमान् !"

नगरश्रेष्ठी ने कक्ष मे चारोओर अवलोकन कर कहा—'लिखो, मालवा की नयी सरकार, नई हुकूमत अर्थात् नवीन शासन रुस्ता अवन्तिका के नगरश्रेष्टि परिवार को सदा-सवदा के लिए सभी प्रकार के राजकीय नियमो, विधानो कानूनो करो और महसूलो से मुक्त करती है। लिखो सूरजसिंह कि मालवा के भावी सुलतान आलीजाह साहिबख़ाँ बहादुर, इस बात का इकरार करते हैं कि उनके समस्त राज्य और शासन की सीमा मे शैव और वैष्णवो तथा उनके मंदिरो का उन्मूलन राजकीय रीति से किया जाएगा और जिनालयो की प्रतिष्ठा मे पूरा योग दिया जाएगा। पूर्णिमा, अमावस्या और अष्टमी के दिन जीव हिंसा नहीं होगी। अब लिखिए—सूबा मन्दसौर की जागीर सुलतान के दोस्त और खैरख्वाह सूरजसिंह को दी जाएगी। सूरजसिंह नए सुल्तान के वजीरे आज़म होंगे।

"अरुणोदय ग्राम के प्रसिद्ध श्रेष्ठी नाहरमल्ल मालवा के कोषपाल नियुक्त होंगे और उनके पश्चात् चन्द्रावति-पुत्र रत्नचन्द्र राज्य के कोषपाल का काम करेंगे। अब जबतक मैं कुछ और सोच विचार कर लूँ, तबतक जनाब सुलेमानसाहब आप भी कुछ लिखवाइए।'

सुलेमान लोदी ने हुक्के की सुनहरी नली अपने दढ़ियल मुह से हटाते हुए कहा—

'कातिब लिखिए उज्जयिनी के नगरसेठ्ठि इस बात का यकीन दिलाते हैं कि वे सुल्ताने आलम आफताबेमुल्क जहाँपनाह सिकन्दर लोदी के हुजूर में मेवाड के राजपूतो और मालवा के काफिरो के सभी राज और अन्दरुनी हालात दिल्ली पहुँचाते रहेंगे और बराबर यह कोशिश करेंगे कि अपने जैन मजहब की तरक्की और हिंदू मजहब की पायमाली के लिए बादशाह सलामत के हको को खयाल मे रखते

हुए राजपूतों और दम्हना में फूट फैलाएँगे। महाराज कुमार मेदिनीराय की कार्रवाहियों को कामयाब न होने देंगे और अपने बहादुर जासूसों के जरिए महाराजकुमार को जल्द-से-जल्द क़त्ल करवाने का इन्तजाम करेंगे।'

यह सब लिखकर सूरजसिंह ने नगरश्रेष्ठी की ओर देखा। वे बोले—

'लिखो सूरजसिंह, मालवा के भावी सुल्तान साहिबखाँ-साहब की ओर से अवन्तिका के नगरश्रेष्ठी को आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक प्रकार की सहायता दी जाएगी। और बाहरी तथा भीतरी शत्रुओं से उनकी रक्षा की जाएगी। उनके द्वार पर दस हजार सरकारी सिपाहियों का पहरा रहेगा और उन्हें १०८ हाथी, २० हजार घोड़े रखने का अधिकार रहेगा। उनके या उनके किसी इष्ट परिजन, पुत्र पौत्र या नाती आदि सम्बंधीजनों पर किसी प्रकार का कोई कानून लागू नहीं होगा और बाहर की कोई सरकार या ताक़त, चाहे वह कितनी ही बड़ी और शक्तिशाली क्यों न हो, उसके माँगने पर, उसके आरोप, दोष या इल्जाम लगाने पर, श्रेष्ठी परिवार के किसी भी संबंधी या आप्तजन को उस सरकार या हुकूमत या ताकत के हवाले हरगिज न किया जाएगा। इसकी सारी जिम्मेदारी मालवा के सुल्तान के विशाल कंधों पर, व्यक्तिगत रूप में भी रहेगी। दशपुर-मंदसौर की नर्तकी दण्डकणिका दमयन्ती मालवा के राजदरबार में नए सुल्तान सलामत साहिबखाँ के तख्तनशीनी के वक्त और उसके बाद राजदरबार की पहली राजनर्तकी होगी। और उसे ग्राम जावरा की जागीर प्रदान की जाएगी।

"यह दमयन्ती कौन बला है?" माडू के राज्यपाल ग़ालिबखाँ ने अपनी कालों आँखों से सूरजसिंह को इशारा करते हुए धीरे-से पूछा लेकिन सुलेमान लोदी और गुजरात के बादशाह के छोटे भाई जाफ़रशाह ने सुन लिया और वे अपना गर्दन लम्बाकर व्यग्रतापूर्वक सुनने लगे।

उस समय निजी कक्ष के मारवाल रक्तिम और सुनहरे आस्तरण हटा कर एक प्रलम्ब और सशक्त नारि छाया भीतर आई। सूरजसिंह ने

उसका स्वागत किया—

"पधारिए, देवि, आपकी अनुपस्थिति में यह समिति अपूर्ण थी।"

छायामूर्ति ने सूरजसिंह के कथन पर तनिक मुसकरा-भर दिया परन्तु सबने देखा कि इस मुस्कान में पूर्ववत् रसार्द्रता नहीं है।

गुजरात का जफरशाह इस प्रलम्ब रति पुत्री को सतृष्ण नेत्रों से देखता रह गया। उसके हृदय की गति वर्द्धमान हुई और विलास-वासना की वैभव विधायिनी वसुधा का अन्तर विस्फारित हो गया!

नगरश्रेष्ठी ने उस दिव्य पर दानवीय नारी-प्रतिमा के शीश पर हाथ फेरकर आशीर्वाद देते हुए कहा—

"दीपा, इतने प्रहर कहाँ रह गई थी, पुत्रि! मैं तुमसे कई विषयों में परामर्श लेना चाहता था। तुम कुछ थकी-थकी-सी प्रतीत हो रही हो, जाओ विश्राम करो!"

दीपा ने उपस्थित समुदाय का, अपनी चपल, ईषत् दृष्टिकोर से निरीक्षण करते हुए धीमे धीमे कभी सूरजसिंह और कभी माहिबखाँ और अन्ततया जफरशाह की ओर देखकर कहा—

"भाग्यवान् श्रेष्ठी, मुझे यह कहते हुए अत्यन्त खेद है कि कुलपुत्री रूपकन्या माधुरीदेवी हमारी इन बहुमूल्य, महत्त्वपूर्ण परन्तु परम गोपनीय वार्ताओं की विरोधिनी-वैरिन हैं। वे प्रामाणिक रूप से, मेदिनीराय के साथ हैं। इसलिए मेरा निवेदन है कि अपनी प्राण-रक्षा के निमित्त उन्हें तत्काल गिरफ्तार कर लेना चाहिए।" कहते-कहते दीपा का चेहरा लाल हो गया और भृकुटियाँ तन गईं। आहत सर्पिणी के समान वह फुफकारने लगी!

नगरश्रेष्ठी ने नागरी, मालती, रम्भा और रेखा को आदेश दिया कि वे माधुरी को तुरन्त बुला लाएँ। यदि वह न आए तो बलात् ले आएँ! चारों दासियाँ चली गईं।

कुछ देर पश्चात् नागरी और मालती लौट आईं। सिर झुकाकर बोलीं—

"महाबलि, रूपकन्या माधुरी का आवास-कक्ष खाली पड़ा है।"

'हैं !" श्रेष्ठी अपने सिंहासन से उठ खड़ा हुआ।

'हैं !!" दीपादेवी ने दासियों को देखा।

'जी, स्वामिनि, माधुरीदेवी का विलास-कक्ष, सौंदर्य-कक्ष, परिधान कक्ष, चित्रलोक, रंगमंदिर, धनागार, ग्रंथागार, क्रीडालय, लासालय, नाट्यशाला, नर्तन भवन, मिलन-कक्ष और प्रियोद्यान—सभी देख डाले। वे कहीं भी नहीं हैं। रेखा और रम्भा अब भी उन्हें छान रही हैं।"

दीपादेवी ने सूरजसिंह के पास आकर कहा—'सूरजसिंह यह तुम्हारा काम होगा कि कल सूरज ढलने से पहले माधुरीदेवी को जीवित या मृत ले आओ। वरना यों समझो तुम्हारे धड़ पर सिर सलामत नहीं रहेगा।'

"जो आज्ञा देवी। सूरजसिंह ने जाने की तत्परता दिखाई—"क्या मैं एक सौ अश्वारोही अपने साथ ले जा सकता हूँ—कुल-लक्ष्मि?"

'एक सौ नहीं, एक सहस्र ले जाओ किन्तु स्मरण रहे कल की सन्ध्या तुम्हारे या माधुरीदेवी के शव पर बैठकर ही अपना सिंगार सजाएगी!' जाओ!

सूरजसिंह चला गया। कक्ष में अवसादपूर्ण खिन्नता छा गई।

नगरश्रेष्ठी अपने सिंहासन पर अर्धचेतन से संज्ञाविहीन से गिर पड़े। साहिबखाँ ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—

"श्रीमानजी, आप ही जब हिम्मतहार बैठेंगे तो हमारा क्या हश्र होगा ?'

दीपादेवी वहाँ से उठकर जाने को उद्यत हुई थी कि पीर के मजारवाली उसकी संगिनी दासी काशी उस विशाल कक्ष में छोटे से एक शून्य बिंदु की तरह आई—

'देवि वह अश्वारोही माधुरीदेवी को अपनी गोद में बिठाकर, अश्व को उड़ाकर ले गया।

धनलक्ष्मी दीपा ने काशी की बात को टालते हुए कहा—

"अवश्य वह मेदिनीराय है!'

: १८ :

संवत् १५६१ के ज्येष्ठ मास की तपती हुई दुपहरी थी। सारंगदेव को सूचना मिली कि पृथ्वीराज और जयमल अपने सैनिकों के साथ फिर से चढ़कर आ रहे हैं।

पहले तो सारंगदेव घबराया परन्तु फिर उसने सोचा—"आज दोनों कुमारों से या तो लड़कर फैसला किया जाय या दोनों को समझा-बुझाकर शान्त किया जाय।'

दोनों को समझाने-बुझाने का निर्णय ही सारंगदेव के मन को मान्य रहा, जब तक शान्ति से सुलह हो जाए, कलह की राह क्यों अपनाई जाए!

पृथ्वीराज और जयमल आ पहुँचे। पीछे-पीछे काका सूरजमल भी आए।

भोजनोपरांत सारंगदेव ने सबसे विचार विनिमय का निवेदन किया। पृथ्वीराज अपनी हठ पर अड़ा रहा। जयमल का स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं था, वह पृथ्वीराज से प्रभावित उसका समर्थन करता रहा। प्रत्येक ने अपनी बात पर अड़े रहने में ही अपनी विजय समझी।

यह देखकर सूरजमल बोला—

विक्रम संवत् १५६१, सन् १५०४ की ६ मई के दिन।

"तुम सब यह सोचते हो कि अपनी हठ पर अचल रहना तुम्हारी विजय का सूचक है परन्तु वास्तव में यही तुम्हारी सबसे बड़ी पराजय है। एक बात कह दूं : घृणा को लेकर तुम कदापि विजयी नहीं हो सकते।"

सारंगदेव ने समझाया—

"भविष्य को सुरक्षित करने के लिए भाई भाई के रक्त का प्यासा हो जाए, इससे अधिक पतन और क्या हो सकता है? अच्छा तो यह है कि यदि तुम्हें अपने भाग्य का निर्णय ही कराना है तो चलो भीमलगांव की चारणी देवी बीरी के पास!"

"काकाजी, अभी तो महाप्रतापी महाराणाजी जीवित हैं। उनके रहते सिंहासन के लिए कुमारों का यह स्वार्थ-सम्पर्षण अच्छा नहीं है। भाग्य में मेरा विश्वास नहीं है, मैं तो कर्म में विश्वास करता हूं।"

"सत्य है, सूरजमल! क्षत्रिय का भुजबल ही उसका सबसे बड़ा बल है। फिर भी यदि कुमारों की यही कामना है कि इन्हें अपने भावी और भाग्य का संकेत मिल जाए तो आओ चलें तुगन-कुल की उस चारणी के पास। भीमलगांव में देवी के मन्दिर की वह पुजारिन है।"

राजकुमारों ने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया।

पृथ्वीराज, जयमल, संग्रामसिंह, सूरजमल और सारंगदेव अपने-अपने वायुवेगी अश्वों पर चढ़कर भीमलगांव की दिशा में उड़ चले।

उद्दण्ड कुमारों की उतावली देखकर, आंधी-झंझा और वायु भी विकम्पित हो चले!

मन्दिर के अजिर में राजपुत्र पुजारिन की प्रतीक्षा करने लगे। जब वह सामने आई तो उसका दिव्य स्वरूप देखकर राजकुमार चकित रह गए। बारी-बारी से सब ने उसे प्रणाम किया। चारणी बीरी ने एक नजर उठाकर राजकुमारों के वदन-मण्डल का अवलोकन किया और वह लौटकर मन्दिर में चली गई।

पृथ्वीराज बड़ी बेचैनी से पुजारिन के लौटने की राह देखने लगा।

सारंगदेव उठकर मन्दिर के द्वार तक गया—

"माई, ये राणाजी के तीन राजकुमार तुझसे यह पूछने आए हैं कि एकलिंग का दीवान इनमें से कौन बनेगा ? साथ में, इनका काका सूरजमल है। मैं सारंगदेव हूँ। माँ, देवी से हमारा भाग्य तो पूछ।"

चारणी मुसकराती हुई लौटी—

"बेटा, माँ की मर्जी है, वीर पृथ्वीराज और सूरमा जयमल वीरगति पाएँगे और मेवाड की राजगद्दी सग्रामसिंह को मिलेगी, क्योंकि राजयोग उसके पक्ष में है। सूरजमल मेवाड के तटवर्ती प्रदेश कांठल का अधिकारी होगा और सारगदेव, तुम तनिक सावधान रहना, तुम्हारा अन्त समय निकट आ गया है। सग्रामसिंह और सूरजमल की संतति अपने प्रदेशों में स्वतन्त्र रूप से शासन करती रहेगी—यही देवी की इच्छा है। अन्त में राज्य परिवर्तन होगा और पश्चिम से गोरी जाति के लुटेरे आएँगे। उनके बाद समुदाय का शासन होगा।"

चारणी चली गई।

पृथ्वीराज ने उसके पीछे चिल्लाकर कहा—

"अरे चारणि, तू अबला न होती, तो अभी हम तेरी भविष्य-वाणी को यहीं समाप्त कर देते।"

इस ललकार के साथ ही पृथ्वीराज और जयमल साँगा पर टूट पड़े।

मेवाड के राजकुमारों की, राज्य के लिये एक भाई की तलवार दूसरे के कण्ठ पर चलने को मचलने लगी।

सारंगदेव भज्जावत पहले से सावधान था। उसने फुर्ती दिखलाई और तलवार लेकर पृथ्वीराज और साँगा के बीच में कूद पडा—

"मैं कहता हूँ, भाई भाई से लडना बन्द करें।"

"दूर हटो।" कहते पृथ्वीराज ने तलवार का भयकर प्रहार किया।

अब सारंगदेव को प्रत्युत्तर देना ही पडा। एक ओर वह पीछे से साँगा पर होने वाले जयमल के प्रहारों को रोक रहा था, दूसरी ओर पृथ्वीराज से साँगा की रक्षा कर रहा था। इस भीषण सघर्ष की

"तुम सब यह सोचते हो कि अपनी हठ पर अचल रहना तुम्हारी विजय का सूचक है परन्तु वास्तव में यही तुम्हारी सबसे बड़ी पराजय है। एक बात कह दूँ घृणा को लेकर तुम कदापि विजयी नहीं हो सकते।"

सारंगदेव ने समझाया—

"भविष्य को सुरक्षित करने के लिए भाई भाई के रक्त का प्यासा हो जाए, इससे अधिक पतन और क्या हो सकता है ? अच्छा तो यह है कि यदि तुम्हें अपने भाग्य का निर्णय ही कराना है तो चलो भीमलगाँव की चारणी देवी बीरी के पास।"

'काकाजी, अभी तो महाप्रतापी महाराणाजी जीवित हैं। उनके रहते सिंहासन के लिए कुमारों का यह स्वार्थ-संघर्षण अच्छा नहीं है। भाग्य में मेरा विश्वास नहीं है, मैं तो कर्म में विश्वास करता हूँ।

"सत्य है, सूरजमल ! क्षत्रिय का भुजबल ही उसका सबसे बड़ा धन है। फिर भी यदि कुमारों की यही कामना है कि इन्हें अपने भावी और भाग्य का संकेत मिल जाए तो आओ चलें तुगल-कुल की उस चारणी के पास। भीमलगाँव में देवी के मन्दिर की वह पुजारिन है।'

राजकुमारों ने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया।

पृथ्वीराज, जयमल, संग्रामसिंह, सूरजमल और सारंगदेव अपने अपने वायुवेगी अश्वों पर चढ़कर भीमलगाँव की दिशा में उड़ चले।

उद्दण्ड कुमारों की उतावली देखकर, आँधी झंझा और वायु भी विकम्पित हो चले !

मन्दिर के अजिर में राजपुत्र पुजारिन की प्रतीक्षा करने लगे। जब वह सामने आई तो उसका दिव्य स्वरूप देखकर राजकुमार चकित रह गए। बारी-बारी से सब ने उसे प्रणाम किया। चारणी बीरी ने एक नज़र उठाकर राजकुमारों के वदन-मण्डल का अवलोकन किया और वह लौटकर मन्दिर में चली गई।

पृथ्वीराज बड़ी बेचैनी से पुजारिन के लौटने की राह देखने लगा।

सारंगदेव उठकर मन्दिर के द्वार तक गया—

"माई, ये राणाजी के तीन राजकुमार तुमसे यह पूछने आए हैं कि एकलिंग का दीवान इनमें से कौन बनेगा ? साथ में, इनका काका सूरजमल है। मैं सारंगदेव हूँ। माँ, देवी से हमारा भाग्य तो पूछ।"

चारणी मुसकराती हुई बोली—

'बेटा, माँ की मर्जी है, वीर पृथ्वीराज और सूरमा जयमल वीरगति पाएँगे और मेवाड़ की राजगद्दी संग्रामसिंह को मिलेगी, क्योंकि राजयोग उसके पक्ष में है। सूरजमल मेवाड़ के तटवर्ती प्रदेश काँठल का अधिकारी होगा और सारंगदेव, तुम तनिक सावधान रहना, तुम्हारा अन्त समय निकट आ गया है। संग्रामसिंह और सूरजमल की सन्तति अपने प्रदेशों में स्वतन्त्र रूप से शासन करती रहेगी—यही देवी की इच्छा है। अन्त में राज्य-परिवर्तन होगा और पश्चिम से गोरी जाति के लुटेरे आएँगे। उनके बाद समुदाय का शासन होगा।"

चारणी चली गई।

पृथ्वीराज ने उसके पीछे चिल्लाकर कहा—

"अरे चारणि, तू अबला न होती, तो अभी हम तेरी भविष्य-वाणी को यहीं समाप्त कर देते।"

इस ललकार के साथ ही पृथ्वीराज और जयमल साँगा पर टूट पड़े।

मेवाड़ के राजकुमारों की, राज्य के लिये एक भाई की तलवार दूसरे के कण्ठ पर चलने को मचलने लगी।

सारंगदेव झज्जावत पहले से सावधान था। उसने फुर्ती दिखलाई और तलवार लेकर पृथ्वीराज और साँगा के बीच में कूद पड़ा—

"मैं कहता हूँ, भाई भाई से लड़ना बन्द करे।"

"दूर हटो।" कहते पृथ्वीराज ने तलवार का भयंकर प्रहार किया।

अब सारंगदेव को प्रत्युत्तर देना ही पड़ा। एक ओर वह पीछे से साँगा पर होने वाले जयमल के प्रहारों को रोक रहा था, दूसरी ओर पृथ्वीराज से साँगा की रक्षा कर रहा था। इस भीषण संघर्ष की

घमाचौप मे सूरजमल ने बुद्धिकौशल का परिचय दिया और साँगा के घोड़े की बागडोर एक झटका में मोड़ दी। घोड़ा हवा हो गया।

पृथ्वीराज और सारगदेव अधिक घायल होगए और लड़ते-लड़ते वहीं गिर पड़े।

लेकिन जयमल घायल नहीं हुआ था उसने जब देखा कि साँगा बचकर भागा जा रहा है तो अपने घोड़े को ऐड़ लगाई। सूरजमल उन के पीछे दौड़ा—कहीं भाई के हाथों ही भाई की हत्या न हो जाए।

चिलचिलाती धूप से जलते हुए खुले मैदान में पृथ्वीराज और सारगदेव घायल पड़े थे। अपार रक्त शरीर से बह गया था। आँखों के आगे अँधेरा छाया था। दोनों के बड़े-बड़े घावों से मांस बाहर निकल रहा था प्यास से कण्ठ सूखे जा रहे थे। राज्यपद का अभिलाषी धूल की सेज पर लेटा था।

पृथ्वीराज के घाव पर बड़ी-सी चील आ बैठी। उसने चोंच मारी। पीड़ा से मेवाड़ का महाबली कुमार कराह उठा।

सारगदेव ने कान से कराह सुनी अपने ही कुल के रक्त की पुकार थी यह। आँख खोलकर देखा पृथ्वीराज के घाव का चील नोच रही है।

'दाता दाता सारगदेव!

कुमार पृथ्वीराज घाव को ढँक लो। सारगदेव ने अपनी पगड़ी कुमार की ओर फेंकी।

चील उड़ गई। कुमार ने घाव ढक लिया और फिर से वह बेसुध हो गया।

महारथी सारगदेव के मन का ममत्व रो उठा।

उसने यह सोचकर कि चील फिर से आएगी और कुमार को कष्ट देगी चील को लुभाने और भुलाने के लिए अपना घाव खोल दिया!

भीमल का चारण एक हाथ में मलहमपट्टी और दूसरे में जल की बड़ी-सी मटकी उठाए वहाँ आया। अनायास उसके मुह से निकल पड़ा—

पीथल खग हाथा पकड़ वह सागा किय वार।
सारग झले सीस पर, उणवर साम उबार॥'

चारणी वीरी भी वहाँ आई।
दोनों घायल वीरों के उपचार में लग गए।
ज्येष्ठ का दिवाकर तीव्र तेज से तप रहा था!
क्षतो से शोणित बह रहा था।
कण्ठ मे जैसे काँटे उग आए थे।
आँखों के सामने एक हल्की-झीनी रेखा-सी पगडंडी मात्र दिखाई दे रही थी।
कान पीछे उठने वाली आहट पर लगे थे। जाने कब घोड़े के खुरों की आवाज निकट आ जाए! जाने कब पीछे से शत्रु प्रहार कर बैठे!
शत्रु और-दूसरा-कोई नही, अपना ही भाई! एक पिता की संतान। एक पादप की दो शाखाएँ। एक फूल की दो पखुड़ियाँ। एक मन के दो बोल!
साँगा की समस्त चेतना एकाग्र होकर सम्भावित अनुगामी स्वर की दिशा मे केंद्रित थी!
अश्व पर शरीर उसका एक ओर ढल गया था।
धीमे धीमे वह सेवन्त्री गाँव पहुँचा।

रात्रि का तमस धरती पर उतर कर, और भी घना हो गया था। गाँव मे सर्वत्र नीरवता का पहरा था। पशु पक्षी और मानव प्राणी सभी सो गए थे और तो और श्वान भी ऊँघ चले थे।
पूरे गाँव मे केवल एक ही प्राणी जाग रहा था। और गीता के अनुसार जिस निशा मे ससार सोता है, योगी जागता है। यह जाग्रत व्यक्ति भी योगी ही था— रूपनारायण के मदिर का पुजारी। समाधि म ध्यानस्थ बैठा था!
पुजारी के वृद्ध कानो मे, जिनके सिरे पर श्वेत रोम उग आए थे। साँगा के घोड़े की पदचाप पड़ी और वह चौकन्ना हो गया। उठकर

पराचौंप में सूरजमल ने बुद्धि-कौशल का परिचय दिया और साँगा के घोड़े की बागडोर एक दिशा में मोड़ दी। घोड़ा हवा हो गया।

पृथ्वीराज और सारंगदेव अधिक घायल होगए और लड़ते-लड़ते वहीं गिर पड़े।

लेकिन जयमल घायल नहीं हुआ था, उसने जब देखा कि साँगा बचकर भागा जा रहा है तो अपने घोड़े को ऐड लगाई। सूरजमल उन के पीछे दौड़ा—कहीं भाई के हाथों ही भाई की हत्या न हो जाए।

चिलचिलाती धूप से जलते हुए खुले मैदान में पृथ्वीराज और सारंगदेव घायल पड़े थे। अपार रक्त शरीर से बह गया था। आँखों के आगे अँधेरा छाया था। दोनों के बड़े-बड़े घावों से मांस बाहर निकल रहा था, प्यास से कण्ठ सूखे जा रहे थे। राज्यपद का अभिलाषी खून की सेज पर लेटा था।

पृथ्वीराज के घाव पर बड़ी-सी चील आ बैठी। उसने चोंच मारी। पीड़ा में मेवाड़ का महाबली कुमार कराह उठा।

सारंगदेव ने कान से कराह सुनी, अपने ही कुल के रक्त की पुकार थी यह। आँखें खोलकर देखा पृथ्वीराज के घाव को चील नोच रही है।

"दादा, दादा सारंगदेव !'

'कुमार पृथ्वीराज, घाव को ढँक लो।" सारंगदेव ने अपनी पगड़ी कुमार की ओर फेंकी।

चील उड़ गई। कुमार ने घाव ढक लिया और फिर से वह बेसुध हो गया।

महारथी सारंगदेव के मन का ममत्व रो उठा।

उसने यह सोचकर कि चील फिर से आएगी और कुमार को कष्ट देगी, चील को लुभाने और भुलाने के लिए अपना घाव खोल दिया।

भीमल का चारण, एक हाथ में मलहमपट्टी और दूसरे में जल की बड़ी-सी मटकी उठाए, वहाँ आया। अनायास उनके मुँह से निकल पड़ा—

> 'पीथल खग हाथा पकड़, वह सागा किय वार।
> सारंग झेले सीस पर, उणवर साम उवार॥"

धारणी वीरी भी वहाँ आई।

दोनों घायल वीरों के उपचार में लग गए।

ज्येष्ठ का दिवाकर तीव्र तेज से तप रहा था।

क्षतों से शोणित बह रहा था।

कण्ठ में जैसे काँटे उग आए थे।

आँखों के सामने एक हल्की-झीनी रेखा-सी पगडंडी मात्र दिखाई दे रही थी।

कान पीछे उठने वाली आहट पर लगे थे। जाने कब घोड़े के खुरों की आवाज़ निकट आ जाए! जाने कब पीछे से शत्रु प्रहार कर बैठे!

शत्रु और-दूसरा-कोई नहीं, अपना ही भाई! एक पिता की संतान। एक पादप की दो शाखाएँ। एक फूल की दो पंखुड़ियाँ। एक मंत्र के दो बोल!

साँगा की समस्त चेतना एकाग्र होकर सम्भावित अनुगामी स्वर की दिशा में केंद्रित थी!

अश्व पर शरीर उसका एक ओर ढल गया था।

धीमे धीमे वह सेवत्री गाँव पहुँचा।

रात्रि का तमस धरती पर उतर कर, और भी घना हो गया था। गाँव में सर्वत्र नीरवता का पहरा था। पशु पक्षी और मानव प्राणी सभी सो गए थे और तो और श्वान भी ऊँघ चले थे।

पूरे गाँव में केवल एक ही प्राणी जाग रहा था। और गीता के अनुसार जिस निशा में संसार सोता है, योगी जागता है। यह जाग्रत व्यक्ति भी योगी ही था—रूपनारायण के मंदिर का पुजारी। समाधि में ध्यानस्थ बैठा था!

पुजारी के वृद्ध कानों में, जिसके सिरे पर श्वेत रोम उग आए थे। साँगा के घोड़े की पदचाप पड़ी और वह चौकन्ना हो गया। उठकर

ऊपर गोपुरम् के वातायन में आया। दीप उठाकर दूर तक देखने का प्रयत्न किया। इसके पूर्व कि वह आगन्तुक को देखता, स्वयं आगन्तुक ने ही बहुत ही क्षीण कण्ठ से याचना की—

"महाराज, एक घायल राजपूत को प्रभु के दरबार में रात भर के लिए शरण मिलेगी ?"

"अवश्य !" उत्तर आया। और प्रदीप वातायन से हट गया।

पुजारी दौड़कर नीचे आया। उसकी वृद्ध काया में अब भी बहुत शक्ति थी। उसने दीपक ऊँचा उठाकर राहगीर का राजसी चेहरा देखा और सहारा देकर उसे घोड़े से नीचे उतारा।

मंदिर के पथिकाश्रम में दौड़कर उसने बिछौना बिछा दिया और पहले साँगा को एक ओर बिठाकर उसके घावों को गरम पानी से धोया। फिर मंदिर के पिछवाड़े वाड़ी में जाकर एक जड़ी खोदकर ले आया। पत्थर पर उसे घिसकर साँगा के घावों पर उस रस का लेपन किया। और पट्टियाँ बाँध दीं।

कुछ ही देर बाद एक श्वेतवसना कुमारी बड़े से कटोरे में गरम दूध ले आई—

"लो पीओ, इससे तुम्हें नींद आजाएगी और श्रम भी दूर हो जाएगा।"

साँगा ने कटोरा ले लिया।

दूध पीकर पूछा—

'देवि, मैं तुम्हारा, अपने उपकारी का नाम जान सकता हूँ ?"

'मैं मेवाड़ की राजकन्या तो हूँ नहीं और न ही वहाँ के राजकुमार जितना महत्त्व है मेरा। पथिक मेरा नाम जानकर क्या करोगे ?"

"शुभे, तुमने मुझे कैसे पहचाना ?'

"भारत के भावी सम्राट् को कोई भी पहचान लेगा।"

"शुभे, तुम्हारी वाणी मुझे कुछ परिचित प्रतीत होती है।"

"पथिक विश्राम करो। तुम्हारे घाव बहुत गहरे हैं।"

कुमार संग्रामसिंह चुप होकर लेट गया। युवती वहाँ से चली गई।

पथिकाश्रम मे कुछ ही दूरी पर एक और पथिक सोया हुआ था। इस हल-चल और बोल-चाल से उसकी नींद उड़ गई। उसने अपने सेवक से मशाल जलाने को कहा।

मशाल के उजाले मे साँगा के मुख-मंडल को ध्यानपूर्वक देखकर वह पूछने लगा—"यदि प्रश्न अनुचित न हो तो बताओ, तुम कौन हो? तुम्हारे मुख-मंडल से प्रकाश की छटाएँ छूट रही हैं! तुम्हें देख-देखकर मेरे मन मे जाने क्यो आनन्द की तरगें उठ रही हैं।"

"पहले तुम बताओ वीर, तुम कौन हो? इसलिए पूछ रहा हूँ कि मैं अपरिचित प्रदेश मे हूँ और अकारण शत्रु मेरा पीछा कर रहे हैं।"

भाग्यवान्, मैं हूँ राव सलखा राठौर का वंशधर बीदा। दादाजी सलखा के चार पुत्र थे। चौथा पुत्र जैतमल। मैं उसी के वंश मे हूँ। हम लोग जैतमालोत कहलाते हैं। जैतमाल के बाद मे क्रम से बैजल, कांधल, ऊदल तथा मोकल हुए। मोकल राठौर ने मोकलसर बसाया। मैं इन्हीं मोकलजी राठौर का पुत्र हूँ।"

"बीदाजी, तुम्हारा परिचय पाकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई। यहाँ कैसे पधारे?"

"पथिक वीर, मैं भगवान् रूपनारायण के दर्शन के निमित्त अपने सैनिको के सहित यहाँ आया हूँ। भाग्य मे आपकी भव्य प्रतिमा के दर्शन भी अंकित थे, मैं धन्य हुआ! अब उचित समझें तो अपनी कुछ पहचान दीजिए!"

साँगा बोला—

"बीदाजी, मैं मेवाड के महाराणाजी का छोटा पुत्र हूँ। मेरा नाम संग्रामसिंह है। आत्मीय मुझे 'साँगा' के नाम से पहचानते हैं!"

बीदा जैतमालोत चौंककर खड़ा हो गया। उसने झुक-झुककर अभिवादन करते हुए कहा—

"मैं धन्य हूँ—मैं धन्य हूँ! आज परम वीर साँगा के दर्शन कर मैं धन्य हूँ। श्रद्धा और स्नेहवश उस वीर राजपूत की आँखें भर आईं।

उसने दौड़कर अपने साथियों और सैनिकों को जगाया। सभी जाग कर राजकुमार साँगा की सेवा में लग गए।

बीदा ने साँगा को सुला दिया और स्वयं अपने हाथ में नंगी तलवार लेकर द्वार पर पहरा देने लगा।

कठिनाई से एक घड़ी बीती होगी, घाटियों के पार द्रुतगामी अश्वों की गूँजती पदचाप सुनाई दी।

साँगा जैसे स्वप्नावस्था से चौंक पड़ा हो—

"बीदाजी, आने वाले घुड़सवार और कोई नहीं, मेरे प्राणों के प्यासे, मेरे भाई जयमल और उसके साथी हैं।

"चिंता नहीं राजकुमार, स्वयं काल भी आ जाए। जब तक जैतमल राठौर की सन्तान बीदा के तन म रक्त की एक भी बूँद शेष है, जयमल आपका बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा।"

"अच्छा तो यह हो मैं ही यहाँ से चला जाऊँ।"

"ऐसा कदापि नहीं हो सकता। और अभी देखिए, कौन कह सकता है, अश्वारोही दूसरे राहगीर हों, जयमलजी नहीं हों।"

"मेरा अनुमान है, वही है।"

"तो होने दीजिए। आप तनिक भी चिंता न करें।"

साँगा बीदा का आग्रह न टाल सका। उसने देखा युवती जो उसे दूध पिलाकर कुछ समय पूर्व लौट गई थी, वापस आ गई है। अपने हाथ में एक तीक्ष्ण कटार लिए अँधेरे कोने मे खड़ी, वह उसकी रक्षा में तत्पर खड़ी है।

बाहर ज़ोर-ज़ोर से बोलने की आवाज़ आई।

फिर ललकारें उठीं।

फिर जैसे, शेरों के दहाड़ने का स्वर गूंजा।

कोने म खड़ी छाया-मूर्ति कटार सम्भालकर सचेत हो गई।

जयमल ने जब देखा कि मन्दिर के द्वार पर एक वीर राठौर पहरा दे रहा है और उसके साथ कुछ सैनिक भी हैं तो उसने चतुराई से काम

निकालना चाहा। यद्यपि उसके साथ जो सैनिक थे उनकी सख्या राठौर के सैनिकों से अधिक थी।

सबसे पहले जयमल ने वीर राठौर का परिचय प्राप्त किया। फिर उसके कंधे पर हाथ रखकर जयमल ने भेद-नीति का आश्रय लिया—

"बीदाजी आपका और सांगा का क्या साथ ? राणाजी स्वय उस पर अप्रसन्न हैं और भाई पृथ्वीराजजी इनका सिर काटने के लिए तलवार लेकर घूम रहे हैं। पीछे-पीछे वे आते ही होंगे। देखो आप साँगा का साथ छोड दें। मैं आपको मेवाड में बहुत बडी जागीर देने का वचन देता हूँ। राह चलते बखेडा मोल लेने मे आपको क्या लाभ?"

'कुमार जयमल मैं राठौर हूँ विश्वासघात नहीं करूँगा। मैं जैतमल के नाम को नही लजाऊँगा। राठौरो को कलङ्कित नहीं करूँगा। प्राण और सत्ता रहते मुझसे ऐसा कर्म नही होगा, जिससे राठौर जाति दुनियाँ मे मुँह दिखाने के काबिल न रह जाए।"

जयमल ने निराश होकर कहा—

'बीदाजी आप भूल रहे हैं मैं आपसे कब कहता हूँ कि आप सांगा या किसी अन्य साथी से विश्वासघात कीजिए, मैं तो आपसे इतना ही निवेदन करता हूँ कि आप दो भाइयो के बखेडे मे न पडिए।'

"यदि आप यही चाहते हैं तो यहाँ से चले जाइए। न जाएँ तो भी परवाह नही। आप मेरे रहते साँगा को मारने का विचार छोड दीजिए।'

'विचार तो जो मन मे है सो है ही और उसे छुडाने का साहस एक क्या हजार राठौर भी मिलकर नहीं कर सकते! सम्भलो!' जयमल क्रोध से आग-बबूला होकर तलवार लेकर बीदा जैतमालोत पर टूट पडा।

साँगा ने सुनी—बाहर तेज तलवारो की भारी झनझनाहट। उनकी टकराहट से ही स्पष्ट था कि कितने वेग और कितनी शक्ति से

दोनो लड़ाया जूझ रहे हैं।

अँधेरे प्रकोष्ठ मे खड़ी छाया मूर्ति सांगा की ओर बढ़ी और उसने उसकी बाँह थामकर कहा—

'उठिए समय नहीं है। बाहर आपका घोड़ा तैयार है। सेवूरी चलना होगा। मैं आपका साथ दूँगी।'

'मैं बीदाजी को देखना चाहता हूँ।"

"वे बाहर जयमल से जूझ रहे हैं।" छोटी-सी खिड़की खोलते हुए—'सुनिए उनकी तलवारों की नृत्यमयी झकारें।"

"बीदा, तुम्हारे इस उपकार को आजन्म नहीं भूलूंगा। अपना भाई ही मेरी हत्या करना चाहता है और पराया आदमी मेरी रक्षा में अपनी जान की बाजी लगा रहा है।'

"धन्य है बीदा!"

"मुझे, मैं अपने भाई को भाई समझूँ? या अपने उपकारी बीदा को अपना भाई समझूँ?'

"कुमार, कुमार! बीदा के भाई रायमल जैतमालोत का शीश धड से छिन्न हो गया है और वीर पर वीर रायमल जैतमालोत, अब कबन्ध उनका कबन्ध लड रहा है।'

"शुभे, मुझे मार्ग दिखाओ अब सांगा की तलवार म्यान में नहीं रह सकती। बन्धु विग्रह के भय से मैंने आज तक पृथ्वीराज और जयमल का सामना नहीं किया किन्तु अब मैं रुक न सकूँगा। शुभे, अत्याचारी चाहे अपना सहोदर ही क्यो न हो उसका संहार करना ही पड़ेगा' 'देखो, देखो, शुभे भगवान् सूर्यनारायण की मुसकान भी यही कह रही है।' सांगा एक झटके में बिछौना छोड़कर खड़ा हो गया। उसके घावों से रुधिर बहने लगा। उसने पल भर में अपनी भयंकर तलवार उठाकर द्वार की ओर कदम बढ़ाया।

श्वेतवसना छायामूर्ति सांगा की ग्रीवा में अपनी दोनो भुजाएँ डालकर उससे लटक गई—

"नहीं, नहीं, आप नहीं जा सकते, प्राण रहते आपको न जाने देंगे

का आदेश मुझे मिला है।"

"मुझे मत रोको! मुझे मत रोको!!"

छाया ने पुन. खिडकी मे झाँककर देखा और उसके मुख से एक चीत्कार निकली—

"कुँवर, बीदा⋯जैतमालोत⋯"

"हूँ!"

"हाँ, बीदा, शरणागत का सरक्षक बीदा वीरगति पा गया है।⋯ अनाचारी इधर ही आ रहे हैं⋯"

"मुझे, मैं उनसे लड़ूँगा।"

"राजपूत रणनीति नही अपनाएगा, तो पराजित होगा। अकेले होकर भी, क्या इतने शत्रुओ का सामना करोगे?"

"कुछ भी हो! मैं अपने उपकारी का बदला लूँगा।"

"कुमार, जीवित रहोगे तो, जब चाहोगे, बदला ले सकोगे। अकेले, निर्बल शरीर और अस्वस्थ होकर भी प्रबल शत्रु को ललकारना मृत्यु के मुख मे जाना है।"

"भगवान् रूपनारायण⋯"

"कुमारदेव, सोचने का समय नहीं है। आपका अश्व प्रस्तुत है। " इतना कहकर वह छायामूर्ति साँगा को खीचकर मूर्ति के पीछे गुप्त द्वार की ओर ले गई। पलभर मे उसे घोडे पर बिठा दिया और स्वयं भी एक घोडे पर सवार हो गई।

"पुत्रि, मुझे देख रही हो, अँधेरी झाडियो से आवाज आई— "मेरे पीछे चली आओ। भगवान् रूपनारायण का प्रसाद मेरी पगडी मे बँधा है।⋯बेटी, यदि हमारा साध्य शुद्ध है और साधन अशुद्ध नहीं है तो एक क्या, सहस्र शत्रु भी हमारी छाया तक छू नही सकते।"

छायामूर्ति वृद्ध पुजारी की आवाज के सहारे उसी दिशा मे आगे बढी। साँगा का घोडा उसके पीछे था। साँगा के घाव कसक रहे थे। नीद लगी न थी, इससे उसका सिर भारी हो रहा था।

अनाचारियों ने रूपनारायण के मन्दिर के पथिकाश्रम का द्वार तोड दिया।

जयमल ने नंगी पूनी तलवार लिये भीतर प्रवेश किया। वह खाली था। उसके मुख से निकला—

'चिड़िया उड़ गई है। गजब हो गया। इतने वीरों के प्राण गए और हमारी दशा वही रही।

—निराश होकर जयमल वहीं धरती पर बैठ गया।

इस समय सांगा और उसके साथी दूर दमूरी की दिशा में पवनविजयी अश्वों पर उड़े जा रहे थे।

निर्भर के द्वन्द्व और नर संहार के कारण जयमल का मन उद्विग्न हो गया। जी व्यथ ही गया। उसे बड़े जोर की भूख लगी। तत्काल उसे ध्यान आया— सांगा भी भूखा होगा। मैं प्यासा हूँ, सांगा को भी प्यास लगी होगी आज यदि हम छोटे होते तो माँ के निकट बैठकर पकवानों के लिए मिलकर मचलते यह क्या हुआ। किसने मुझे सहोदर से सांगा से अपने ही भाई से अलग कर दिया।

—जयमल ने अपनी रक्तरंजित तलवार परे फेंक दी। मन्दिर के कुट्टिम की पाषाणशिला में वह टकराई और विलम्ब तक उस टकराहट की प्रतिध्वनि पूरे देवालय में गूँजती रही।

जयमल ने सहमकर सिर नीचा कर लिया।

उसी समय उसे आने का पदचाप की आहट का भान हुआ। उसने चौंककर इधर-उधर देखा। कोई नहीं था। उसकी दृष्टि सीधी भगवान् रूपनारायण की पुण्यमयी प्रतिमा की अन्तर्वेधी दृष्टि से मिली और वह नख से शिखा तक कांप उठा।

एक भीषण भयद और भीमाकार अट्टहास प्रतिमा के मुखारविंद से उठकर वातावरण में गूंजता रहा।

रणराज प्रलयंकर भगवान् एकलिंग के परमप्रिय दीवान महाराजाधिराज परमभट्टारक महाराणा रायमल्ल का प्रियपुत्र जयमल संज्ञाहीन होकर देवालय के सोपान पर गिर पड़ा।

: १९ :

महाराणा ने सुना तो वे बहुत अप्रसन्न हुए।

मंत्री ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—

"अन्नदाता, यद्यपि कुमार पृथ्वीराज और कुमार जयमल का उपद्रव अमित है तथापि दीनानाथ, उनका अपराध ऐसा नहीं कि आपकी क्षमा के सिंधु में बिंदुवत् विलय न हो सके।"

महाराणा तनिक शांत हुए।

जयमल के प्रति उनका अनन्य प्रेम था, इसलिए उन्हें और भी अधिक आघात लगा कि जयमल ने पृथ्वीराज के बहकावे में आकर, इस प्रकार सांगा को मेवाड़ छोड़ने पर बाध्य किया!

उन्होंने जयमल को क्षमा नहीं किया, क्योंकि वे उसे बहुत प्यार करते थे। जयमल अपने अगाध पितृ-वात्सल्य की गंभीरता से परिचित था, अतः वह डर गया और पिता के सामने न आकर सीधा कुम्भलगढ़ चला गया।

कुम्भलगढ़ में रहकर भी उसे चैन कहाँ था? वहीं, राव सुरताण की कन्या तारा को देखने की पिपासा उसके मन में सुलगने लगी! बन्धु-विग्रह की प्रतिहिंसा के पश्चात् वह वासना के विनाशक पथ पर दौड़ पड़ा!

इधर, पृथ्वीराज और सारंगदेव के घावों का उपचार चल रहा था। बड़े-बड़े वैद्य दूर-दूर से आते और अनोखी जड़ी-बूटियाँ लाते। अंत में गयासपुर के वैद्य पंडित जीवराज का यत्न मिल ही गया। उनकी बूटी ने संजीवनी का प्रभाव दिखाया और पृथ्वीराज सकभाया स, साक्षात् मृत्यु के मुख से, उठकर खड़ा हो गया। उसने वैद्य जीवराज के द्वारा सारंगदेव के समाचार भी पूछे। यदाकदा सारंगदेव के सेवक राजकुमार का कुशलक्षेम पूछने के लिए आते। बस सूरजमल से राजकुमार को सारंगदेव की स्वस्थता के संवाद मिलते ही थे। सूरजमल दोनों की सेवा कर रहे थे।

दोनों स्वस्थ हो गये थे।

स्वस्थ होकर पृथ्वीराज ने चित्तौड़ लौटने का विचार किया तभी उसे अपने पिता महाराणा की ओर से एक पत्र मिला—

पृथ्वीराज! तूने मेरी विद्यमानता में ही राज्य-लोभ से प्रेरित होकर कई अकरणीय और अनाचरणीय कर्म किए हैं। मैंने पितृमोह के कारण और तेरा बचपन देखते हुए या तो उन्हें क्षमा किया है या उन पर ध्यान नहीं दिया है। आज मैं सोचता हूं कि ऐसा करके मैंने तेरे उन दयावंचित बैरियों के प्रति अन्याय ही किया है। कुमार तेरी क्षुद्रता में कहाँ कमी है?

'तूने मेरे भाई, काकाजी सूरजमल को परेशान किया। आज वे मन-ही मन हमसे अप्रसन्न और असंतुष्ट हैं। मेरा तो दाहिना हाथ टूट गया! यदि सूरजमल कठिन की ओर चला गया और उसने अपना भाव व्यक्तताओं से मजबूर होकर युग की माँग और नीति की रीति को रखते हुए, कहीं मालवा के सुल्तान से मैत्री-संबंध स्थापित कर लिए तो बेटा, (यद्यपि तुम्हें बेटा कहते हुए मुझे लज्जा आती है!) मेवाड़ सत्ता के लिए संकट में पड़ जाएगा। गुजरात और मालवा के आक्रमणकारियों के लिए मालवा के पठार का द्वार खुल जायगा और वे सहज ही चित्तौड़ के आँगन में अपना डंका बजा सकेंगे। यदि तुमने अपनी

प्रवृत्ति मे परिवर्तन नही किया और यदि तुम अपने दुराग्रह पर अडे रहे तो भविष्य मेरे उपर्युक्त कथन को सत्य सिद्ध करेगा।

'सारगदेव मेरे पूज्य काकाजी हैं। अरे, उन पर शस्त्र उठाते तुम धरती मे क्यो न धँस गए! तुम्हारे-जैसे पुत्र का पिता होने से निपूत होना, यही अच्छा है!

"मेरे रहते, तेरी यह उछलकूद, तेरा यह ज्योतिषियो के यहाँ जाना, देवी चारणी के प्रतिकूल वचन पर उनका तिरस्कार करना, साँगा के विरुद्ध षड्यन्त्र करना, सारगदेव और सूरजमल का निरतर अपमान करना मेरी दृष्टि में राजद्रोह से रचमात्र भी कम नही है। मैं तो तुझे कठोर-से-कठोर दड देना चाहता हूँ, क्योकि तूने न केवल इन बन्धु-बान्धवो का वरन् मेरा भी अपमान किया है। इतना ही नही तूने मेवाड के पवित्र नाम पर कलक लगाया है। तेरे ही कारण साँगा—गृह-कलह के भय से मेवाड छोडकर वनो में अज्ञातवास के लिये चला गया है! एक तूने अनेक को कितना कष्ट दिया है? कभी तूने सोचा? कभी तू सोचता भी है? क्या तेरी मति ही भ्रष्ट हो गई है?

"पृथ्वीराज, तूने जो कुछ किया, बहुत बुरा किया। कठोरतम दण्ड तेरे प्रति न्याय होगा। किन्तु इस समय मैं दण्ड न देने के लिए बाध्य हूँ, क्योकि तेरी माता की यही पुकार है। इस पुकार को मैं अनसुनी कर भी दूँ, परन्तु राजसभा के वृद्ध पडितराज और महामन्त्री के आवेदन को टालना मेरे वश की बात नही है। तुझे इन ज्ञानियो का उपकार मानना चाहिए कि भगवान् एकलिंग के दीवान के कोप से तू बच रहा है!

"मैंने सुना है कि तेरे घाव भर गए हैं और तू पुन चित्तौडगढ लौटने को कटिबद्ध है, परन्तु मेरा यही आदेश है और मेरी यही अभिलाषा है कि पृथ्वीराज, तू अपना काला, कलकित मुँह मुझे मत दिखला! अपने कुटिल चरणों से चित्तोड की पवित्र भूमि को अपवित्र न कर!

"जिस चित्तौड-दुर्गराज की अपराजेय दुर्दम्य शक्ति—उसकी अटूट एकता और उसका वज्र सगठन है, जिसके कारण वह आजतक

विश्व के किसी भी सर्वशक्तिमान् सत्ता से भी नमित भ्रमित नहीं हुआ है उसमें तूने सिंहासन के प्रलोभन चक्र में पड़कर, अनक्यता और फूट के बीज बो लिए हैं इसलिए मेरा हृदय अत्यन्त दुखी होकर यही चाहता है—तू अब इस दिशा में न जाना। अन्यथा महाकाल भी रायमल्ल के रोष से तेरी रक्षा नहीं कर सकेगा।

तेरी माता का स्वास्थ्य कुछ म्लान है। जय एकलिंग!'

—पत्र पढ़कर पृथ्वीराज कटी हुई डाल की तरह नीचे बैठ गया। युवराज होने के अपने दम्भ में उसे कभी यह विचार ही नहीं आया था कि राणाजी उससे अप्रसन्न भी हो सकते हैं! और यदि सम्भव है अप्रसन्न हो भी गए तो अपराध का आरोप न लगाएँगे, और यदि अपराधी रूप में उसका नाम अंकित कर भी दिया तो भी दण्ड तो नहीं ही देंगे। लेकिन आज यह पत्र क्या मिला? समस्त राज-दण्ड ही जैसे उस पर टूट पड़ा हो।

पृथ्वीराज अपनी व्यथा में विक्षिप्त-सा हो गया!

उसे कुछ सूझ न पड़ा।

इस कर्त्तव्याकर्त्तव्य की भ्रमित चित्तावस्था में करणीय और अकरणीय की सीमाएँ तड़क गई और मेवाड़ का राजकुमार उनकी गहरी खाइयों में गिर पड़ा!

इधर एक नई घटना घटी!

पिता की देखरेख से दूर रहकर, जयमल अपने संस्कारहीन पथभ्रान्त साथियों की छाया में और भी अधिक उच्छृंखल और दायित्वहीन हो गया था।

उसने अपने अन्यायी साथियों के सहयोग से राव सुरताण को इस सीमा तक भयभीत और व्यग्र कर दिया कि उसने बदनोर की जागीर का त्याग कर दिया और निरन्तर वनों में वास करने लगा।

जयमल ने देखा कि राव सुरताण पर प्रहार करने का यही अद्वितीय अवसर है! उसके साथियों ने भी उसके दृष्टिकोण का समर्थन किया—

जयमल ने भोजन के थाल ठुकरा दिये।

रूपसिंह ने भी वही किया। अनूपसिंह ने भी वैसा ही किया। केवल भूपसिंह ने एक कौर तोड़कर, पगड़ी के पल्लव से बाँध लिया, ताकि सामने परसे हुए भोजन का अपमान न हो। फिर यह साधारण भोजन नहीं था इसके साथ भगवान् एकलिंग का प्रसाद भी रखा था।

इन चारों के पीछे-पीछे इनके आठ-दस सैनिक भी चले।

मंजिल पर मंजिल काटते जयमल और सैनिकगण बदनोर आए।

बदनोर में कोई न मिला!

न राव सुरताण था न उनकी पत्नी थी न उसका साला सांखला रतनसिंह था न तारा था न कोई सेवक या परिचारक ही था!

और पूरे कस्बे में एक भी प्राणी नहीं था। जयमल के अत्याचारी प्रस्ताव से कि वह जबरन तारा को देखने आएगा राव सुरताण और उनके समर्थक ग्रामीण गाँव-गाँव छोड़कर वनों में चले गए थे!

जयमल ने यह दशा देखी तो वह आगबबूला हो गया। उसने जहाँ भी हो राव सुरताण का पीछा करने का निश्चय किया।

इस समय राव सुरताण बदनोर से सात कोस की दूरी पर आऊड मादा नामक स्थान पर था। टोडा से निकलने के बाद उसने दिनों तक मेवाड़ का नमक खाया था इसलिए वह नहीं चाहता था कि अपने स्वामिपुत्र पर शस्त्र उठाए और यदि ऐसा अवसर आ ही जाए तो उसे क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए, यही विचार-गुत्थी सुरताण के सतत मनोमंथन का कारण थी। उसकी पत्नी सांखली ने उसे बहुत समझाया।

'माना कि हमने राणाजी का नमक खाया है उन्होंने कृपा कर हमें जब कि हम आश्रयहीन भटक रहे थे बदनोर-जैसी बड़ी जागीर दी। लेकिन राणाजी न्याय प्रिय हैं उन्होंने हमें यह तो नहीं कहा कि अन्याय का प्रतिरोध नहीं करना चाहिए।

राव सुरताण सांखली रानी की चतुराई समझ गया—

'मांखली देवी, मैं सीधा-सादा राजपूत हूँ। मातृभूमि के लिए लड़ना मेरा काम है। अबल की रक्षा करना मेरा धर्म है। विश्वास-घात और रणभूमि मे पीठ दिखाना मेरे लिए पाप है। इसलिए मैं तुम्हारी बात नही मान सकता। कुछ भी हो जयमल मेरा स्वामी है। उस पर हाथ उठाकर मैं महाराणा को कौन-सा मुँह दिखलाऊँगा।"

"इसमे मुख दिखलाने की कौन-सी बात है, रावजी ?"

"मैं तर्क के भँवर मे नही पड़ूँगा क्योंकि मैं तर्क और बुद्धि का नही, हृदय और श्रद्धा का सहचर हूँ।"

रावजी को अपनी बात यो टालते देखकर मांखली उदास हो गई। सुरताण ने एक घुड़सवार भेजकर दूर निवास से भीमा के एक साथी को बुलवाया।

भीमा ने तुरन्त एक आदमी भेज दिया। राव सुरताण ने उसे एक पत्र देकर आज्ञा दी कि कुमार जयमल जहाँ कही मिलें, यह पत्र उन्हे दे देना और विनम्रता सहित भलीभाँति समझा देना कि राज कुमार आप बड़े हैं। मेवाड़ के महाप्रतापी महाराणा के भाग्यवान् राजकुमार हैं। आपको यह शोभा नही देता कि आप एक छोटे-से राजपूत और वह भी जो कि आपका अनुचर है। जिसका शीश राणाजी के उपकारो के भार से झुका हुआ है, को परेशान करें। बड़े लोग अपनी बड़ाई की ओर देखते हैं और उसी की उच्चता के अनुसार अपनी रीति नीति का निर्णय करते हैं। सूँड से धूल का स्पर्श कर लेने से गजराज का मस्तक धूलि धूसरित ही होता है। महाराज धूल का कुछ नही बिगड़ता। पर गजराज के मस्तक महान् की खंडित होती है। यदि राव सुरताण पराजित और पददलित भी हो गया तो वह कौन-सा सम्राट् या राजकुमार है। प्रभु न करे, यदि कुमार आप कही मुझ जैसे मजबूर और अनाथ राजपूत सिपाही का प्रहार न काट सकें तो लोग क्या कहेंगे ? पत्थर को धूल मे लोटने की लज्जा नही, लज्जा हीरे को है। राजकुमार आप तारा से विवाह करना चाहते हैं तो मैं प्रस्तुत हूँ। इतना बड़ा घर और वर पाकर तारा का भाग्योदय

ही होगा और मेरे स्वाभिमान में भी शत-गुनी वृद्धि होगी। लेकिन विवाह के पूर्व तारा को मैं आपको दिखाने में असमर्थ हूँ क्योंकि हमारी जाति में ऐसी रीति नहीं है—विवाह के पूर्व क्षत्रिय-पुत्री सम्भावित वर को दिखाई नहीं जाती। यह परम्परा है और मैं परम्परा का तुच्छ प्रहरी हूँ। आप मेरी परम्परा की रक्षा करें, मैं तारा का विवाह आपसे कर दूँगा।

इस प्रकार राव सुरताण का संदेश लेकर संदेशवाहक आकड़सादा से रवाना हुआ।

राजकन्या तारा और उसकी माँ साँखली को अब नई चिंता लग गई कि संदेशवाहक कौन से नए समाचार लाता है? जयमल क्या जवाब देता है? हमारे सुदिन कब आते हैं! अहंकार की इस अगम रात्रि का अन्त कब होता है?

दोनों की उत्सुकता बहुत बढ़ गई।

सन्देशवाहक को भेजकर राव सुरताण कुछ थकित, कुछ चिंतित एक ओर जाकर सो गए। उन्हें नींद आ गई।

रानी साँखली, और राजकन्या तारा अभी जग रही थी। एक ऊँचे पेड़ पर बैठकर सीता पहरा दे रही थी। रूपा और राजो यहीं आकड़सादा आने वाली थी। शूद्र निकाय के कई पुरुष भी रानी साँखली के संकेत पर आकड़सादा आने की तैयारी में थे, किन्तु सायंकालीन भोजन-पान में उन्हें विलम्ब हो गया था और वे अब तक नहीं पहुँच पाए थे।

रानी मौन बैठी थी। मन में कई द्वन्द्व चल रहे थे। यदि अचानक जयमल ने आक्रमण कर दिया तो क्या होगा? उसकी शक्ति अपार है। रावजी ने वीरगति पाई तो साँखली सती हो जाएगी। तब अकेली तारा का क्या होगा? वैसे, घर में भाई साँखला रतना है, परन्तु वह अभी अल्हड़ और अनजान है। हानि-लाभ का विचार उसमें नहीं है। अपने पराए का बोध उसे नहीं है। इन परिस्थितियों में

परमेश्वर ही सर्वज्ञ है, केवल वही जानता है कि इस परिवार का भरण या मरण कैसे होगा ?

यही चिंताएँ रानी को चाट रही थीं।

लेकिन इनसे बेखबर तारा, ऊपर बरगद की ऊँची डार पर बैठी सीता से चुहल कर रही थी—

"सीते ! देखना इस पेड पर तेरे सिवाय एक और सीता रहती है। कही वह तुझ पर बिगड न जाय, अनपूछे तू उसके डेरे पर चढ़ बैठी है !"

"राजकुमारीजी, वह दूसरी सीता कौन है ? कैसी है ? आपने क्या उसे देखा है ? वह मुझसे क्यो लडने लगी ? क्या वह अपने अतिथि का आदर-सत्कार नहीं करेंगी ?"

राजकुमारी बोली—

"सीते, वह दूसरी सीता ठीक तेरे विपरीत है। तेरे मुँह से अमरित की वर्षा होती है। उसके मुख से ज्वालाएँ बरसती हैं। तेरे पैर सीधे, उसके उल्टे हैं, पीठ की ओर उसके पजे हैं। वह तुझसे इसलिए लडेगी कि तू उसकी जगह उसकी डाली पर आ बैठी है। और वह अपने अतिथि का सत्कार उसे मार कर ही करती है। भला इससे अच्छा तेरा सत्कार और क्या होगा ?"

सीता कुछ-कुछ समझी और तत्क्षण उसके मुँह से एक चीख निकली—"डायन !"

तारा खिलखिलाकर हँसने लगी। रानी साँखली का ध्यान भग हुआ। उसने तारा को बरज दिया—

"क्यो डराती है बेचारी को ?" सीता से कहने लगी—"सीते, डरना मत। मैं खुद जो यहाँ तेरे पास बैठी हूँ।" सीता ने उत्तर नहीं दिया। कुछ पल पश्चात् उसने डरते-डरते कहा—

"डायन ! रानी माँ ! वह देखिए डायन, अपने मुख से ज्वाला निकाल रही है।"

रानी ने सिर उठाकर सीता को देखना चाहा तो वह चौंक पडी—

विगान वन-वृक्ष के सर्वोच्च शिखर पर सुमन्द प्रकाश की परछाइयाँ पड़ रही थीं।

रानी मौसनी सावधान चिल्लाती, बिजली की तरह खड़ी हो गई और अपने मन म जागृत शंका के प्रमाण के लिए वह गिलहरी की भाँति वन के उस वृक्ष पर चढ़ गई। सीता जहाँ बैठी थी उससे भी ऊँची डाल पर वह चढ़ गई फिर वहीं बिना सहारे सीधी खड़ी होकर दूर-दूर तक नजरें फैलाकर देखने लगी—

तारा उसने पुकारा—"रतना मामा को जल्दी जगादे। दुश्मन बहुत पास आ गया है।

फिर शीघ्र ही वह नीचे उतर आई।

मौसला रतना उमका नादान, किन्तु शूरवीर भाई खड्ग-हस्त सावधान खड़ा था। वह दिन से जयमल से मार खाए बैठा था। उसे आशा थी जल्द ही मौका मिलेगा। उसने बहन से पूछा—

"क्या बात है जीजो ?"

"भैया बदनार से आने वाली राह पर, ऊँची घाटी पर, सैकड़ों मशालें जल रही हैं। तुम मेरी मानो या न मानो यह अवश्य कुमार जयमल है। यह ऐसा ही क्रूर और उद्दण्ड है।"

'अब क्या होगा ?' सीता भयभीत खड़ी थी। तारा ने उसे साहस दिलाया।

मौसनी रानी और उसका भाई मौसला रतनसिंह अँधेरे में एक ओर जाकर, कानाफूसी करने लगे।

भानु के आने से पहले, पूरे निवास से राजो रूपा और अन्य स्त्रियाँ वहाँ आ गईं। उनके पीछे निवास के सभी पंच और मुखिया भीमा भी आ गए।

भीमा ने आते ही कहा—

"रानी माँ आप चिन्ता न करें। कुमार जयमल को देखता हूँ। मेरे सामने कैसे खड़ा होता है ?"

हाथ नचाकर राजो की माँ बोली—

"अभी कल ही तो मेरे सामने धूल चाट कर गया है। आज तो लगता है, रावडो के भी दाँत आ गए हैं।"

रानी सांखली को इन भोले लोगो की भोली बातो पर हँसी आ गई। लेकिन चिन्ता के भारवश वह हँस न सकी। वह जानती थी कि शूद्र निकाय म एक उद्दण्ड युवा का फँस जाना और बात थी और टोडा के राव सुरताण की कन्या के लिए आगे बढकर बात बढाना और बात है।

सांखली और आँगन मे खडे सभी नर-नारी चौंक पडे।

तीर की तरह सनसनाता हुआ घोडा उसके पास से गुजरा —रतनसिंह था!

"शायद, जयमल से मिलने जा रहे हैं, मामाजी!"

—नायक भीमा बोला। लेकिन रानी सांखली जानती थी रतना किधर, कहाँ और क्यो जा रहा है! वह कुटिया मे, भीतर चली गई। उसने राव सुरताण को नहीं जगाया।

बाहर सभी जन बैठे, मामा की राह देखने लगे।

घोड़े को उसी गति से दौडाता हुआ सांखला रतना, ठेठ जयमल की सेना की टुकडी मे प्रविष्ट हो गया! सैनिक यही समझे कोई अपना ही सैनिक है! भला, शत्रुपक्ष के किसी वीर की क्या बिसात कि जयमल की सेना मे यो प्रविष्ट होता चला आए! क्या ऐसे किसी वीर को अपनी रक्षा का विचार भी नही? माना कि वीर मौत से नही डरते, लेकिन हरदम सिर को हथेली पर रखकर तो दुनियाँ मे जीवित नही रहा जाता! रणक्षेत्र मे युद्ध विराम पर सायकाल और रात्रि मे, और, घोडे की पीठ पर हमेशा सवार रहनेवाले सूरमा भी नीद का स्वागत करते ही हैं। विश्राम उनके लिए भी आवश्यक होता है!

अतएव, सांखला रतना रुका नहीं, किसी ने उसे रोका नही।

वह उसी द्रुतगति से सेना के केन्द्रीय भाग तक चला गया।

मशालो की, रात को दिन बनाती रोशनी मे देखा—कुमार जयमल

सुन्दर अश्वों की बहुत ही सुन्दर गाड़ी में, सुनहरी झालरों और रेशमी आच्छादना के मध्य विराजमान है। उसका मासूम भोला मुंह देखकर पल भर के लिए रतना के मन में अपनी कठोरता के प्रति द्वंद्व उपजा! परन्तु दूसरे ही पल अपनी भाजी तारा का उतना ही, नहीं उससे अधिक मासूम मुखड़ा सामने आया! रक्षा की विनती और कुशल की कामना से आर्द्र!

फिर भी सांखला रतना का अश्व धीमा पड़ गया।

उसी क्षण, बहन का चेहरा सामने आया। यह तारा के मुखड़े की अपेक्षा अधिक सदय करुणा और अश्रुस्नात था! आर्त के धनी राव सुरताण का प्रदीप्त मुख-मण्डल झिलमिलाया। वनराज केसरी-सी सुरताण की कभी न झुकनेवाली मूंछें फहराईं!

और तत्क्षण एक विचार आया—इस सबका रक्षण, इन सबकी आन का मान केवल यही, यही, यही रख सकता है और शिवशंकर के उठे हुए त्रिशूल की तरह भयंकर वेग से विद्युत् से भी तीव्रतर गति से सांखला रतना का भाला हाथ में उठा और कण्ठ से ये विनम्र, वचन उठे—

"कुंवरजी, सांखला रतना का मुजरा पहुंचे!"

भाला कुमार की छाती को पार कर गया!

हाहाकार मच गया!

कुमार के अगरक्षक सांखला रतना पर टूट पड़े। पल भर में उसके टुकड़े-टुकड़े उड़ा दिए!

उस निर्जन में दो चिताएं एक साथ जल उठीं!

पुरातन वट-वृक्ष की सनातन कोटर में बैठे वृद्ध शुक ने शुकी से कहा—

"सुनती हो? चितादाह की गंध आ रही है। दो चिताएं पास-पास जल रही हैं—मरने वाला भी जल रहा है और मारने वाला भी जल रहा है!"

"एक दिवस हम भी जल जाएंगे!"

—कहकर, शुकी, पंखों की ऊष्मा में सिर छिपाकर, फिर से ऊंघने लगी!

: २० :

महाराणा ने अपने पत्र मे जो आशका प्रकट की थी, वह सच निकली। वे अनुभवी थे। न केवल राजस्थान के वरन् समस्त भारत और पडौसी देशो के समाचार उन्हें समय-समय पर मिलते रहते थे। उनका यही अनुभव उनकी दूरदर्शिता की नीव थी!

पृथ्वीराज ने सहसा, दो हज़ार घुड़सवार लेकर सारगदेव पर, अपने पिता के काका पर-आक्रमण कर दिया।

सारगदेव और उसका साथी और भतीजा सूरजमल सोच मे पड गए। यदि पृथ्वीराज का दर्पदमन नहीं होता तो वह आए दिन एक-न-एक सकट उपस्थित करता रहेगा! इस प्रयास मे यदि पृथ्वीराज की प्राणहानि होती है तो मेवाड का राज्य सिंहासन युवराज से वचित हो जाता है और वृद्ध महाराणा के हृदय को भी धक्का लगता है।

इसके अतिरिक्त भाई से भाई का वैर! मेवाड मे बधु विग्रह का नया विष फल परिपक्व होता है और उसका विषैला प्रभाव समस्त राजस्थान पर, पूरे भारतवर्ष पर पडता है!

सारगदेव सोच मे पड गया!

सूरजमल को चिंता हुई। प्रश्न राजकुमार पृथ्वीराज के अश्वारोहियो के पलायन का नहीं था, प्रश्न यह था कि पृथ्वीराज की बढती हुई उच्छृखलता का प्रतिरोध कैसे किया जाए—कि साँप भी मर जाए

सुन्दर अश्वों की बहुत ही सुंदर गाड़ी में, सुनहरी झालरों और रेशमी आच्छादना के मध्य विराजमान है। उसका मासूम भोला मुँह देखकर पल भर के लिए रतना के मन में अपनी कठोरता के प्रति द्वंद्व उपजा! परन्तु दूसरे ही पल अपनी भाजी तारा का उतना ही, नहीं उससे अधिक मासूम मुखड़ा सामने आया! रणा की विनती और कुशल की कामना से आर्द्र!

फिर भी साँखला रतना का अश्व धीमा पड़ गया।

उसी क्षण, बहन का चेहरा सामने आया। यह तारा के मुखड़े की अपेक्षा अधिक सदय करुणा और अश्रुस्नात था। आन के धनी राव सुरताण का प्रदीप्त मुख-मण्डल झिलमिलाया। वनराज केसरी-सी सुरताण की कभी न झुकनेवाली मूँछें फहराई!

और तत्क्षण एक विचार आया—इस सबका रक्षण, इन सबकी आन का मान केवल यही, यही, यही रख सकता है और शिवशंकर के उठे हुए त्रिशूल की तरह भयकर वेग से विद्युत् से भी तीव्रतर गति से साँखला रतना का भाला हाथ में उठा और कण्ठ से ये विनम्र वचन उठे—

"कुँवरजी, साँखला रतना का मुजरा पहुँचे!"

भाला कुमार की छाती को पार कर गया!

हाहाकार मच गया!

कुमार के अगरक्षक साँखला रतना पर टूट पड़े। पल भर में उसके टुकड़े-टुकड़े उड़ा दिए!

उस निर्जन में दो चिताएँ एक साथ जल उठीं!

पुरातन वट-वृक्ष की सनातन कोटर में बैठे वृद्ध शुक ने शुकी से कहा—

"सुनती हो? चितादाह की गंध आ रही है। दो चिताएँ पास पास जल रही हैं—मरने वाला भी जल रहा है और मारने वाला भी जल रहा है!

"एक दिवस हम भी जल जाएँगे!'

—कहकर, शुकी, पंखों की ऊष्मा में सिर छिपाकर, फिर से ऊँघने लगी!

: २० :

महाराणा ने अपने पत्र में जो आशंका प्रकट की थी, वह सच निकली। वे अनुभवी थे। न केवल राजस्थान के वरन् समस्त भारत और पड़ोसी देशों के समाचार उन्हें समय-समय पर मिलते रहते थे। उनका यही अनुभव उनकी दूरदर्शिता की नींव थी।

पृथ्वीराज ने सहसा दो हजार घुड़सवार लेकर सारंगदेव पर, अपने पिता के काका पर—आक्रमण कर दिया।

सारंगदेव और उसका साथी और भतीजा सूरजमल सोच में पड़ गए। यदि पृथ्वीराज का दमन नहीं होता तो वह आए दिन एक-न-एक संकट उपस्थित करता रहेगा। इस प्रयास में यदि पृथ्वीराज की प्राणहानि होती है तो मेवाड़ का राज्य सिंहासन युवराज से वंचित हो जाता है और वृद्ध महाराणा के हृदय को भी धक्का लगता है।

इसके अतिरिक्त भाई से भाई का वैर! मेवाड़ में बन्धु विग्रह का नया विष-वृक्ष पल्लवित होता है और उसका विषैला प्रभाव समस्त राजस्थान पर, पूरे भारतवर्ष पर पड़ता है।

सारंगदेव सोच में पड़ गया।

सूरजमल को चिन्ता हुई। प्रश्न राजकुमार पृथ्वीराज के अश्वारोहियों से पलायन का नहीं था, प्रश्न यह था कि पृथ्वीराज की बढ़ती हुई उच्छृंखलता का प्रतिरोध कैसे किया जाए—कि साँप भी मर जाए

विशाल वट-वृक्ष के सर्वोच्च शिखर पर सुमन्द प्रकाश की परछाइयाँ पड़ रही थी।

रानी साँवली 'सावधान' चिल्लाती, बिजली की तरह खड़ी हो गई और अपने मन मे जागृत शका के प्रमाण के लिए वह गिलहरी की भाँति वट के उस वृक्ष पर चढ गई। सीता जहाँ बैठी थी उससे भी ऊँची डाल पर वह चढ गई, फिर वही बिना सहारे सीधी खडी होकर दूर-दूर तक नजरें फैलाकर देखने लगी—

'तारा, उसने पुकारा—"रतना मामा को जल्दी जगादे। दुश्मन बहुत पास आ गया है।

फिर शीघ्र ही वह नीचे उतर आई।

साँवला रतना, उसका नादान, किन्तु शूरवीर भाई खड्ग-हस्त सावधान खडा था। वह दिन मे जयमल से खार खाए बैठा था। उसे आशा थी, जल्द ही मौका मिलेगा। उसने बहन से पूछा—

"क्या बात है जीजी ?"

'भैया, बदनोर से आने वाली राह पर, ऊँची घाटी पर, सैंकडो मशालें जल रही हैं। तुम मेरी मानो या न मानो, यह अवश्य कुमार जयमल है। वह ऐसा ही मूर्ख और उद्दण्ड है।'

"अब क्या होगा ?" सीता भयभीत रुडी थी। तारा ने उसे साहस दिलाया।

साँवली रानी और उसका भाई साँवला रतनसिंह अँधेरे मे एक ओर जाकर, कानाफूसी करने लगे।

शत्रु के आने मे पहले, शूद्र निकाय से राजो, रूपा और अन्य स्त्रियाँ वहाँ आ गई। उनके पीछे निकाय के सभी पच और मुखिया भीमा भी आ गए।

भीमा ने आते ही कहा—

"रानी माँ आप चिन्ता न करें। कुमार जयमल को देखता हूँ मेरे सामने कैसे खडा होता है ?"

हाथ नचाकर राजो की माँ बोली—

"अभी कल ही तो मेरे सामने धूल चाट कर गया है। आज तो लगता है, रावडी के भी दाँत आ गए हैं।"

रानी साँखली को इन भोले लोगों की भोली बातों पर हँसी आ गई। लेकिन चिन्ता के भारवश वह हँस न सकी। वह जानती थी कि युद्ध निकाय में एक उद्दण्ड युवा का फँस जाना और बात थी और टोडा के राव सुरताण की कन्या के लिए आगे बढ़कर बात बढ़ाना और बात है।

साँखली और आँगन में खड़े सभी नर-नारी चौंक पड़े।

तीर की तरह सनसनाता हुआ घोड़ा उसके पास से गुजरा —रतनसिंह था!

"शायद, जयमल से मिलने जा रहे हैं, मामाजी!"

—नायक भीमा बोला। लेकिन रानी साँखली जानती थी रतना किधर, वहाँ और क्यों जा रहा है! वह कुटिया में, भीतर चली गई। उसने राव सुरताण को नहीं जगाया।

बाहर सभी जन बैठे, मामा की राह देखने लगे।

घोड़े को उसी गति से दौड़ाता हुआ साँखला रतना, ठेठ जयमल की सेना की टुकड़ी में प्रविष्ट हो गया! सैनिक यही समझे कोई अपना ही सैनिक है! भला, शत्रुपक्ष के किसी वीर की क्या बिसात कि जयमल की सेना में यों प्रविष्ट होता चला आए! क्या ऐसे किसी वीर को अपनी रक्षा का विचार भी नहीं? माना कि वीर मौत से नहीं डरते, लेकिन हरदम सिर को हथेली पर रखकर तो दुनियाँ में जीवित नहीं रहा जाता! रणक्षेत्र में युद्ध विराम पर सायंकाल और रात्रि में, और, घोड़े की पीठ पर हमेशा सवार रहनेवाले सूरमा भी नींद का स्वागत करते ही हैं। विश्राम उनके लिए भी आवश्यक होता है।

अतएव, साँखला रतना रुका नहीं, किसी ने उसे रोका नहीं।

वह उसी द्रुतगति से सेना के केन्द्रीय भाग तक चला गया।

मशालों की, रात को दिन बनाती रोशनी में देखा—कुमार जयमल

सुन्दर अश्वों की बहुत ही सुन्दर गादी में, सुनहरी झालरों और रेशमी आच्छादनों के मध्य विराजमान है। उसका मासूम भोला मुँह देखकर पल भर के लिए रतना के मन में अपनी कठोरता के प्रति द्वंद्व उपजा! परन्तु दूसरे ही पल अपनी भाजी तारा का उतना ही, नहीं उससे अधिक मासूम मुखड़ा सामने आया। रक्षा की विनती और कुशल की कामना से आर्द्र!

फिर भी साँवला रतना का अश्व धीमा पड़ गया।

उसी क्षण, बहन का चेहरा सामने आया। यह तारा के मुखड़े की अपेक्षा अधिक मदय करुणा और अश्रुस्नात था! आन के धनी राव सुरताण का प्रदीप्त मुख-मण्डल झिलमिलाया। वनराज केसरी-सी सुरताण की कभी न झुकनेवाली मूँछें फहराईं!

और तत्क्षण एक विचार आया—इस सबका रक्षण, इन सबकी आन का मान केवल यही, यही, यही रख सकता है और शिवशंकर के उठे हुए त्रिशूल की तरह भयंकर वेग से विद्युत् से भी तीव्रतर गति से साँवला रतना का भाला हाथ में उठा और कण्ठ से ये विनम्र वचन उठे—

"कुँवरजी, साँवला रतना का मुजरा पहुँचे!"

भाला कुमार की छाती को पार कर गया!

हाहाकार मच गया!

कुमार के अंगरक्षक साँवला रतना पर टूट पड़े। पल भर में उसके टुकड़े-टुकड़े उड़ा दिए!

उस निर्जन में दो चिताएँ एक साथ जल उठीं!

पुरातन बट-वृक्ष की सनातन कोटर में बैठे वृद्ध शुक ने शुकी से कहा—

"सुनती हो? चिताग्नि की गंध आ रही है। दो चिताएँ पास-पास जल रही हैं—मरने वाला भी जल रहा है और मारने वाला भी जल रहा है!"

"एक दिवस हम भी जल जाएँगे!"

—कहकर, शुकी, पंखों की ऊष्मा में सिर छिपाकर, फिर से ऊँघने लगी!

: २० :

महाराणा ने अपने पत्र मे जो आशका प्रकट की थी, वह सच निकली। वे अनुभवी थे। न केवल राजस्थान के वरन् समस्त भारत और पड़ौसी देशों के समाचार उन्हें समय-समय पर मिलते रहते थे। उनका यही अनुभव उनकी दूरदर्शिता की नींव थी।

पृथ्वीराज ने सहसा, दो हजार घुड़सवार लेकर सारंगदेव पर, अपने पिता के काका पर-आक्रमण कर दिया।

सारंगदेव और उसका साथी और भतीजा सूरजमल सोच मे पड़ गए। यदि पृथ्वीराज का दर्पदमन नहीं होता तो वह आए दिन एक-न-एक सकट उपस्थित करता रहेगा। इस प्रयास में यदि पृथ्वीराज की प्राणहानि होनी है तो मेवाड़ का राज्य सिंहासन युवराज से वंचित हो जाता है और वृद्ध महाराणा के हृदय को भी धक्का लगता है।

इसके अतिरिक्त भाई से भाई का वैर! मेवाड़ मे बंधु-विग्रह का नया विष-फल परिपक्व होता है और उसका विषैला प्रभाव समस्त राजस्थान पर, पूरे भारतवर्ष पर पड़ता है।

सारंगदेव सोच मे पड़ गया।

सूरजमल को चिंता हुई। प्रश्न राजकुमार पृथ्वीराज के अश्वारोहियों के पलायन का नहीं था, प्रश्न यह था कि पृथ्वीराज की बढ़ती हुई उच्छृंखलता का प्रतिरोध कैसे किया जाए—कि साँप भी मर जाए

किन्तु, अपने हृदय मे नवयुवा पुत्र की मृत्यु का जलता हुआ दाग लेकर भी महाराणा मौन ही रहे।

लेकिन, महाराणा के इस मौन के विपरीत पृथ्वीराज का क्रोध कालाहलपूर्ण था।

राणाजी जितने प्रशान्त थे, पृथ्वीराज उतना ही अशान्त था।

जयमल-जैसे भाई का देहावसान उसके हृदय पर, कभी न सूखने वाला घाव बन गया था ! सबसे अधिक दुःख तो उसे इस बात का था कि जयमल के जाने से वह अकेला रह गया था। जयमल ही उसका, हृदय और मन से पक्षपाती था।

दोनो साथ रहते साथ खेलते, साथ ही क्रीडा करते, साथ ही राह चलते-राहगीर से झगडा-बखेडा मोल लेते और रहस्य और रोमाच की खोज म अनजानी राहो पर बेधडक, चल देते !

वही जयमल अब नही रहा।

राव सुरताण को भयानक दड देने के लिए कुमार विकल हो गया और जयमल के अभाव ने इस विकलता को और भी घनीभूत कर दिया।

जयमल कितना अच्छा था। उसके मन मे न केवल पृथ्वीराज के लिए किन्तु सभी भाइयो के लिए अपार स्नेह था। वही नहीं रहा, अब कौन पृथ्वीराज का साथ देगा ? राज्य सिंहासन का अधिकार सकट मे पड जाएगा ? सॉगा स्वार्थी है। वह मुझसे द्वेष रखता है और चाहता है—वही भारत-सम्राट बन जाए। जबसे ज्योतिषी मगल मेनारिया ने सॉगा के भाग्य में राजयोग बतलाया और जबसे चडिका के मन्दिर मे मुगल-कुल की चारणी बीरी ने सॉगा के भाग्य म सिंहासन की निश्चयता बतलाई तब से वह और भी अभिमान से भर गया है। सारगदेव को मैंने अच्छा दड दिया, वह भी क्या याद रखेगा—भैसरोडगढ़ को भस्म कर दिया। अरे, वह पृथ्वीराज के प्रबल प्रकोप से परिचित नहीं है क्या ? मैंने तो पहले ही चुनौती दे दी थी—

"दादाजी, आपने मेरा साथ न दिया और सॉगा को इसी प्रकार

रक्षा की तो याद रखिए, मैं आपके भैंसरोडगढ़ को आपकी देखती आँखों मिट्टी में मिलाकर उस पर हल चलवा दूँगा। और मैंने उस बस्ती की जगह खेत बनवाकर कितने ही हल चलवा दिये। सारी प्रजा हाहाकार कर उठी। दुनियाँ जान गयी कि पृथ्वीराज का क्रोध, साक्षात् महाकाल का क्रोध है। लेकिन दुःख है, मन में दर्द है एक वीर और कसक है जयमल चला गया। अरे, मेरे राजतिलक और सिंहासनासीन होने का समारोह तो देखकर जाता! देवता—पृथ्वीराज के कभी न झुकने वाले इस शीश पर बाप्पारावल का प्रतापी राजमुकुट कैसा सुशोभित होता है। जिस मुकुट की चकाचौंध पैदा करनेवाली जोत की ओर किसी नश्वर की नजर नहीं उठती, उसे अपनी पूर्ण प्रभा में प्रकाशित होते देखकर मेरा भाई जयमल अवश्य हर्षित होता!

अब कौन इस दिव्यता के दर्शन करेगा?

दर्शन करनेवाले तो हजारों होंगे किंतु मन में जिसके मोद की मुकुल महके ऐसा मित्र एक न होगा।

भाई प्रतापसिंह*—'पत्ता' अभी नादान है। उसे भेद की बात बतलाता हूँ तो बाहर निकलते ही वह सबसे कह देता है। रायसिंह की माँ मुझसे ईर्ष्या रखती है। कल्याणमल और किशनदास मन-ही-मन सांगा के साथ हैं, इसलिए उनका भरोसा नहीं किया जा सकता। भवानीदास काकाजी सूरजमलजी के प्रभाव में हैं। और अब निश्चय ही सूरजमलजी से मेरी टक्कर होगी। पृथ्वीराज किसी के प्रति आशंका लेकर राज्य करना नहीं चाहता।

नारायणदास शंकरदास और देवीदास यदि कुछ बड़े होते तो मैं उन्हें अपने वश में कर लेता किन्तु बालक होने के कारण वे या तो मेरी सौतेली माँओं के वश में हैं या अपने अपने मामाओं की देखरेख में हैं।

---

* प्रसिद्ध राणा प्रताप नहीं। यह प्रतापसिंह राणा रायमल का पुत्र और सांगा का भाई था—रायमल के १३ पुत्रों में से एक।

सुन्दरदास और बैनीदास की मानाएँ निर्णयानिर्णय के चक्र में चक्रित हैं। वे सोचती हैं—सांगा की विजय हो तो उसका साथ दें, पृथ्वीराज की जीत हो तो उसके सग हो जाएँ! विजेता की जय-जय कार करने म ही लाभ है! स्वार्थ-दृष्टि तो यही देखती है। किन्तु ऐसे सहयोगियो से तो वैरी ही क्या बुरे हैं।

पृथ्वीराज का यह निर्णय है कि जो कोई उसका साथी नही है, वह उसका शत्रु है!

"भगवान् रूपनारायण ने हमें यहाँ तक सकुशल पहुँचा दिया!" वृद्धा पुजारी ने छाया स कहा।

छाया न अपना घोडा रोक लिया—

"बाबा, इन्हें प्यास लगी होगी। मैं जल ले आती हूँ।"

"तुम रहो पुत्री, मैं स्वय जाऊँगा।"

"अरे, य तो अचेत होते जा रहे हैं! बाबा उस झाडी की ओट मे इन्हें लिटा दें। अब रुकने के सिवाय और कोई चारा नही है।"

वृद्ध पुजारी और छाया ने मिलकर सांगा को घने झुरमुट की ओट में एक छायादार हरे पादप के नीचे सुला दिया। पुजारी पानी लेने चला गया। छाया ने वृक्ष से घोडे बाँध दिए और एक बडा-सा पत्ता तोडकर, उससे कुमार के मुख पर विजन डुलाने लगी।

पुजारी नए पत्तो के दोने में जल भर लाया। उसने मन्त्र-सा कुछ पढते हुए सांगा के मुँह पर शीतल जल के कुछ छींटे दिए। चेहरे का कुछ रंग बदला। पुतलियों पर हलचल हुई।

छाया ने पुजारी से कहा—

"बाबा, पूरब में उषा की लाली खिल उठी है। प्रभात का प्रथम अरुणोदय होने ही वाला है। मंद-मरुत प्रवाहित हो रहा है। नूतन दिवस मुझे मगल-सूचक प्रतीत हो रहा है" कुमार के मुख-मडल पर रगो की

छायाएँ आ-जा रही हैं। लगता है अब इन्हें सुधि आएगी। मैं सोचती हूँ, अब मेरा बूँदी लौटना आवश्यक है।"

'बेटी तुम्हारा कथन यथार्थ है।"

"मैं दिन में तो कुमार की सेवा नहीं कर सकती। इनके साथ नहीं रह सकती। लोग देखेंगे। क्या कहेंगे? हाय रे, नारी-जीवन की विडम्बना! सेवा की मूर्ति कहलाने वाली नारी का सेवा का अपना अधिकार भी सुरक्षित नहीं है।"

'बेटी चिंता न करो। रूपनारायण सबके रक्षक हैं। तुम जा सकती हो।"

"जाने की मेरी इच्छा नहीं है परन्तु मैं रुक भी तो नहीं सकती! भोर का उजाला होते ही और सुधि आते ही कुमार मुझे पहचान लेंगे! और कहीं कोई पथिक-चारण या भाट मिल गया तो, लोक में प्रवाद प्रचलित हो जाएगा कि बूँदी के पराक्रमी राव सूरजमल की कुमारी बहिन कर्मवती अपरिचितों के साथ घूमती है।'

"तुम जाओ बेटी, रूपनारायण तुम्हारे साथ है।"

युवती ने पेड़ों की ओट में जाकर राजपूती पुरुषवेश पहना और फिर आकर बाबा के, चरण छुए और अर्धचेतन कुमार सग्रामसिंह की ओर स्नेहार्द्र दृष्टि डालती हुई अपने श्वेतारुण अश्व पर सवार हो गई।

कुछ कदम उसका अश्व धीमे-धीमे चला, ताकि मोगा सहसा जग न जाए। फिर एकदम तीव्रतम गति के पवन के वेग को थरथराता हुआ दौड़ा कि दिशाओं की देवियाँ उस अश्व की गति और शक्ति की, उसकी आरोहिणी युवती की छवि और सुषमा की चर्चा करने लगीं—

"बूँदी की राजकन्या कमवती जा रही है!"

पृथ्वीराज चला तो राव सुरताण को दंड देने, किन्तु स्वयं ही दंडित हो गया!

एक दिन सरोवर के तीर पर प्रशान्त आम्रवन में वह अपने सैनिकों के साथ विश्राम कर रहा था कि जाने कहाँ से एक चारण आ पहुँचा। लम्बी सफेद दाढ़ी और सिर के केश भी, जिसके पूरे सफ़ेद थे। बड़ी-

बड़ी आँखों में मातृभूमि की विजय देखने की लालसा झलक रही थी। कंठ में जिसके काव्य की देवी विराजमान थी और ओजस्वी वाणी में विचित्र सिंहनाद समाया था।

पृथ्वीराज ने चारण के मुख से राजकन्या तारा के रूप और राव-सुरताण के स्वाभिमानी-स्वभाव की प्रशंसा सुनी तो, वह बहुत प्रभावित हुआ।

"राव सुरताण अपनी कन्या तारा का हाथ उसी वीर नर के हाथ में थमाएगा, जिसकी भुजा में इतनी शक्ति हो कि टोडा को पुन जीतकर, *राव सुरताण का अधिकार वहाँ स्थापित करा दे।"* चारण ने, अपने इस कथन से पृथ्वीराज के मन में नई एक प्रेरणा भर दी। टोडा विजय के लिए उसके सैनिक कटिबद्ध हो गए।

कुमार पृथ्वीराज ने राव सुरताण को संदेश भेजा—

"टोडा विजयकर उस पर आपका अधिकार स्थापित कराने में कोई प्रयास अपूर्ण न रहेगा। आप अपनी राजकन्या के विवाह की तैयारियाँ कीजिए।"

राव सुरताण को विश्वास हो गया कि टोडा-जैसे विकट स्थान को, विकट परिस्थितियों में, विकट वैरी से मुक्त कराने के निमित्त 'उड़ने वाला पृथ्वीराज' ही योग्य वीर है, यदि वह विजयी हुआ तो, राव सुरताण का भाग्योदय होगा—टोडा पर पुन अपना—राठौरों का अधिकार हो जाएगा। तारा का विवाह मेवाड़ के महाबली महाराणा के युवराज से होगा और एक दिन वह पटरानी बनेगी! जयमल की मृत्यु के कारण जो पारस्परिक संकोच और मनमुटाव पैदा हो गया है, वह भी दूर हो जाएगा।

राव सुरताण ने रानी साँखली से सारा हाल कहा। वह प्रमुदित हुई। अज्ञातवास और वनवास की लम्बी और कष्टकर अवधि के पश्चात् आज पहली बार आनन्द और उत्सव का सुदिन समीप आता दृष्टिगोचर हुआ।

आकस्मात् के अनन्तर तारा के विवाह की तैयारियों से गूँज

उठे। सबसे अधिक प्रसन्न थीं रूपा, राजो और सीता। बड़ी रात तक अपने अछूते कंठ से वे मंगल-गीत गाया करतीं। उनकी एक सहेली—यद्यपि वह राजकन्या है, जो कुछ समय उनके साथ रही, उनके दुख सुख में जिसने समान भाग लिया, सज-धज कर वधू का परिवेश पहनकर ससुराल जाएगी!

तारा का ससुराल! वही—गढ़ों का राजा, चित्तौड़गढ़! दुर्गराज चित्तौड़—इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ पर जिसके पराक्रम की गौरवगाथा अंकित है!

एक दिन तारा, चुपचाप अनकहे, अनसुने घोड़े पर बैठकर कहीं चली गई।

राणी साँखली ने रावजी से पूछा। उन्होंने इतना ही कहा—

"चिन्ता न करो! तारा के विषय में शीघ्र ही आनन्द के समाचार मिलेंगे।"

माँ उँगलियों पर दिन गिनने लगी। सहेलियाँ ऊँचे वटवृक्ष पर चढ़कर पगडंडियों पर धूल उड़ने की प्रतीक्षा करने लगीं। शूद्र निकाय के वासी विवाह के भोज की राह देखने लगे, जिस दिन उन्हें छक्-छक् कर भोजन-पान का अवसर प्राप्त होगा!

उधर पृथ्वीराज टोडा विजय पर तारा के पाणिग्रहण की प्रतीक्षा करने लगा!

इस प्रकार आश्विन के निरभ्र नभ की एक, अकेली शशिबाला सी राजकन्या तारा अगणित तारकों की आशा का केन्द्रबिन्दु बन गई!

सूरज बहुत तेजी से चमक रहा था। चमाचम धूप ने पर्वतमालाओं, घाटियों और मैदानों को अपनी पीली चमक से भर दिया था! चारों ओर हरियाली नजर आ रही थी। पवन का मद स्पर्श पाकर घास झूम रही थी और वनैले फूल अपनी सघन सुगन्ध बिना ऊँच-नीच के भेद, के सबको लुटा रहे थे।

सीता ने उँगली का इशारा किया—

"देख • वो • उधर ! कोई भूला-भटका राहगीर है।"

राजो ने पुरुष की छाया और आकार देखकर कहा—

"शक्ल सूरत से भला करने वाला, इस धूप में झुलस गया है ! शायद यह भूखा है और प्यासा भी।"

राजो वहीं खड़ी रही। अपरिचित के निकट नहीं आई। बोली—

"सीते, तू पत्ता तोड़कर, इसे पंखा कर। मैं गुरु की गुफा से दोने में पानी लेकर अभी आती हूँ।"

राजो चली गई।

सीता पत्ता झलने लगी।

राही वैसा ही लेटा रहा !

सीता ने पथिक की आकृति ध्यानपूर्वक देखी। यद्यपि वेशभूषा से वह शिकारी प्रतीत होता था, परन्तु उसका सुगौर शरीर और प्रशस्त ललाट उसके उच्च वर्ण को प्रमाणित करते थे। उसके एक हाथ में हीरे की अनमोल अँगूठी जगमगा रही थी। उसके कटिपट से सुनहरी मूँठ की तलवार लटक रही थी, जिसकी म्यान पर खरे सोने की रेखाएँ और चित्रावली अंकित थी।

सीता चुपचाप देखती रही, देखती रही !

उसने राजो की झाँझर की झँकार सुनी, पीछे मुड़कर देखा और संकेत से उसे रोक दिया।

फिर अपनी जगह से उठी और जाकर उसके कान में कहने लगी—

"यह तो कोई, उच्चजाति का जवान है ! राजा है या ब्राह्मण-कुमार ! इसे बिना-पूछे हम जल कैसे पिला सकती हैं ?"

"तो मरने दे ! न पिलाएँगी।"

"लेकिन वह प्यास से मर जाएगा हमारी देखती आँखों, तो क्या हमें पाप नहीं लगेगा ?"

"पाप तो लगेगा। पाप का और जाति का, छोटे-बड़े का, ऊँच-नीच का कोई सम्बन्ध नहीं। पाप सबको लगता है।"

"तब, इसके प्राणों की रक्षा हमारा धर्म हुआ।"

"शायद।"

"शायद क्यों रि ?"

"जिस प्रकार, उच्च जाति के कुलीन निम्न जाति के अकुलीन को शूद्र कहकर तिरस्कार करते हैं और उसकी कभी रक्षा नहीं करते, उसी प्रकार अकुलीन और शूद्र के लिए भी यह जरूरी नहीं है कि वह उच्चजन्मा कुलीन के प्राणों की रक्षा करे। हत्यारे की प्राण रक्षा 'धर्म' कैसे हो सकता है।"

"लेकिन गुरुजी तो कहते हैं सबको सदैव सब जीवों की रक्षा करनी चाहिए। कभी किसी जीव को नहीं मारना चाहिए। हिंसा सबसे बड़ा पाप है। हिंसक का मन कभी शान्त नहीं रह सकता, वह कभी प्रसन्न नहीं रह सकता, वह कभी निर्भय नहीं रह सकता—"

राजो हँसने लगी—"तुझे तो गुरुजी का सिखलाया पूरा पाठ कंठस्थ है।"

"सुनती हूँ, बार-बार सुनती हूँ, एकाग्रचित्त से सुनती हूँ तो पाठ कंठस्थ क्यों न हो ?"

"तेरा प्रश्न बड़ा टेढ़ा है—सबको सदैव सबकी रक्षा करनी चाहिए।"

"मगर, तेरे तर्क जितना समय ले रहे हैं, उतने में राही का प्राणान्त हो जाएगा।"

"क्या करें ? तारा भी तो आस-पास नहीं है। यदि वह होती तो, हमें कोई राह दिखाती।"

"एक ओर इसके प्राणों की रक्षा और दूसरी ओर हमारा अहंग्रस्त गर्व। एक ओर शूद्र-कन्या के जल का द्रोण, दूसरी ओर उच्चजन्मा यशी का प्यासा कण्ठ।"

"सीता, सोच विचार का समय नहीं है। देख, हम हिंसा नहीं कर रही हैं किसी की हत्या नहीं कर रही हैं, फिर हमें पाप क्यों कर लगेगा ?"

मीना उल्टे पैरों दौड़ गई।

डेरों और रैन-बसेरों में कोलाहल फैल गया।

पड़ोसी भीलों मीणा को बुलाने के लिए 'आमन्त्रण का ढोल' बज उठा।

लकड़ी काटते मीणे कुल्हाड़ी वहीं छोड़कर भागे। मक्का और कोदों चुनती मीणियाँ सूप वहीं छोड़कर भागी। बच्चों को कंधे पर उठाए, पीठ पर चिपकाए, छाती से लगाए मीणा-समुदाय दौड़ा—उसी दिशा में जिस दिशा में ढोल उन्हें बुला रहा था—आज अवश्य आनंद का पर्व विशेष अचानक आया है! वरना ऐसा ढोल पिछले पच्चीस वर्षों में नहीं बजा!

बूढ़े जो पशुओं के चर्म को रुन्ध से अलग खींच रहे थे, अपना काम अधूरा छोड़कर दौड़े! कफन माँगने वाले श्मशान से दौड़े।

सीता हवा की तरह हरेक द्वार पर थपकी दे आई थी।

लेकिन राजो कहीं दिखाई नहीं दी!

उसकी माँ ने सीता से पूछा था—

'मगर राजो कहाँ है?'

सीता सुनी-अनसुनी करके चली गई—दौड़ती हुई! 'पाटी' देती हुई!!

तारा ठण्डी छाया में ऊँघ रही थी।

राजो ने फूलों की एक डाली तोड़ कर उस पर फेंकी। और लताओं के निकुञ्ज में छिप गई।

'सीता है?'

उत्तर नहीं मिला।

"राजो है?

उत्तर नहीं मिला।

"अरि, सामने नहीं आती राजो! यहाँ क्या तेरा दुल्हा बैठा है।"

"दुल्हा बैठा है आपका!"

"हद।"

राजो की साँस फूल रही थी। उसके सिर के बालों में छोटे छोटे पत्ते और तिनके उलझे हुए थे।

"तू कहाँ से आ रही है?" तारा ने पूछा।

"वहीं से।"

'वहीं से! कहाँ से?'

"जहाँ वे बैठे हैं।"

"कौन?"

'वे! मेवाड़ के युवराज!"

"धत्!"

"सच! मैंने अपनी इन्ही आँखों से उन्हें देखा है।" राजो ने अपनी आँख को एक उँगली से फैलाकर कहा।

"झूठी कहीं की!"

"अब मैं किसकी शपथ लूँ? आपकी शपथ, यदि मैं सच बोलूँ! नहीं, नहीं झूठ बोलूँ!" राजो गड़बड़ा गई।

—वह बहुत खुश थी कि तारा पृथ्वीराज को देख सकेगी।

तारा स्तब्ध रह गई—

पृ थ्वी रा ज!

कुमार पृथ्वीराज!!

"क्या सोच रही हैं?"

"कुछ नहीं!"

"उन्हें नहीं देखोगी?

"किसे?' तारा ने झूठे रोष से पूछा।

राजो भी कुछ कम नहीं थी। तुरन्त बात बदल कर बोली—

"मेवाड़ के युवराज को! प्रजा के नाते हम-सब को उनका दर्शन तो करना चाहिए।"

"जयमलजी की घटना को लेकर, कुमार हम से नाराज हैं।"

"बहाना? और वह भी राजो से? मगलगीत सबसे अधिक मैंने ही

गाए हैं। सब युद्ध निर्विघ्न हो चुका है। युवराज टोडा पर चढ़ाई करेंगे और अवश्य विजयी होंगे।"

"इससे क्या ! मैं अभी से उनसे सम्भाषण करूँ?···पर पुरुष से?"

"पर पुरुष कैसे? जब उनसे आप के विवाह की बातचीत पक्की हो चुकी है ! और दर्शन सम्भाषण में भला, कौन-सा दोष है?'

'परम्परा का उल्लंघन।'

'नारी स्वयं एक परम्परा है।"

'अच्छा !"

"हाँ, राजकन्ये, उससे बड़ी परम्परा कोई नहीं, कहीं नहीं !"

'फिर भी !"

'क्या जगदम्बा जानकी ने जनक वाटिका में परम पुरुष को नहीं देखा था? उनके दर्शन नहीं किए थे—विवाह के पूर्व? क्या वे श्रीराम को देखकर मोहित नहीं हुई थीं?"

"हुई थीं !" तारा का गौर वदन लज्जारुण हो गया।

"और क्या जानकी ने उर्मिला से नहीं कहा था—उर्मिल···नील नभ अनन्त है अहा!

"कहा था, नभ के लिए कि महाकाश कितना स्वच्छ सुन्दर और सुनीलवर्ण है! बस, यही!!"

'बस, यही तो मैं, आपसे कहलाना चाहती हूँ।" ताली बजाकर बोली—'आइए, वनवासी आश्रमकन्या का परिवेश पहन लीजिए। वे क्या, इधर का कोई परिजन आपको पहचान न पाएगा!"

'वनवासी आश्रम-कन्या?" तारा के विशाल लोचन विस्मय से विस्फारित हुए।

"हाँ, राजकुमारी! आज राजराज दुष्यंत आश्रमवासिनी शकुन्तला को देखेंगे!"

"कहीं अँगूठी देकर भूल गया तो!" तारा अदृश्य को देखती-सी मुस्कराई।

"भूल गया तो क्या ! एक नए 'महाभारत' की रचना होगी।"

"क्या कहती है ?"

"सच कहती हूँ ! राजकुमारीजी, प्रवृनि-नारी को मुद्रिका देकर पुरुष-नर यदि भूल जाता है तो महाभारत न होगा तो आपही बताइए और क्या होगा ?"

'तो महाभारत का मूल एक मुद्रिका है ?"

"कोई एक मुद्रिका नहीं । देकर भूली हुई मुद्रिका !"

"मुद्रिका और नारी ! दोनो ही नर की शोभा हैं। अच्छा, अब आप जल्दी कीजिए ।"

राजो बाहर खडी रही। तारा आश्रम-कन्या के वेश में और भी सुन्दर बनकर लौटी।

दोनो की दृष्टियों का मिलन होते ही, मन के भावो का सहज ही आदान-प्रदान हो गया।

तारा की बाईं आँख फडक रही थी। सामने खुली पगडडी पर लाल कलशी सिर पर उठाए, एक कन्या मिली। पगदडी के दोनो ओर झाडियो से लिपटी हुई लताओ के जगली फूलो की घनी-घनी गध उठ रही थीं।

दूर कहीं पर कागा बोला।

तारा की एडी मे काँटा गड गया। खून बहने लगा। तारा एक हाथ से राजो के कधे का सहारा लेकर खडी रह गई। राजो ने काँटा निकालते हुए कहा—

"शकुन अच्छा हुआ !"

: २१ :

साँगा का मन निर्मम होगया। स्वयं अपने प्रति। अपने मित्रों के प्रति। प्रमाण-पुजारी को भी एक दिवस सोता छोड़कर वह चल दिया। और घने वनान्तरों की खोज में। और अधिक कष्ट और अज्ञातवास की चिंता में।

साँगा ने सोचा—

"यदि मेरे कारण भगवान् रूपनारायण के वृद्ध पुजारी का जीवन सङ्कटग्रस्त होता है तो, मैं पाप का भागी ही होता हूँ। एक तो वृद्ध, दूसरा ब्राह्मण! इस जीवन में इस वृद्ध महात्मा का उपकार और ऋण अपने सिर पर उठाऊँगा तो जन्मान्तरों तक उसे ढोना पड़ेगा। ऋण लेना आसान है, उऋण होना कठिन है। उपकारी का उपकार स्वीकार करना सहज है, उपकार कर दिखाना बहुत कठिन है।"

वृद्ध पुजारी सोया रहा।

साँगा चोर की तरह, जूते बगल में दबाए चुपचाप खिसक गया।

पुजारी के मन में अपनी निद्रा पर बड़ा मनस्ताप उपजा।

किसी भी व्यक्ति का अपने स्वकार्य में भी प्रमाद करना पाप है तो परोपकार में निद्राधीन हो जाना तो परम पाप है!

"मैंने प्रमाद में साँगा को खो दिया। अब उसे खोज निकालने में

समय लगेगा। कर्मा क्या कहेगी— 'बाबा तुमसे हमारा छोटा-सा काम भी नही बना। सूरजमल काका सुनेंगे तो प्रसन्न तो नहीं ही होंगे। अब क्या करूँ क्या न करूँ ?

पुजारी, यो ही, खिन्न अवसन्न मन लिए चिंता-मग्न रहा।

फिर उसने पास के गाँव में जाकर अपने परिचित दो ब्राह्मणो को ढूँढा और उनमें-से एक को कर्मवती को सवाद देने बूँदी भेजा और और दूसरे को सादडी। काकाजी सूरजमल को कहलाया कि निश्चित तिथि पर रूपनारायण के मदिर में मिलें और भावी कार्यक्रम बनाएँ।

दोनो दूत प्रस्थान करने के पूर्व हिचकिचाए—

देवता वर्षा निकट आगई है। लौटना कठिन हो जाएगा।

अच्छा! रूपनारायण तुम्हारा कल्याण करे। लौटने से पहले *मगल मेनारिया मेरे गुरुभाई से उसके आश्रम में मिलना और अपनी* कठिनाई सुनाना वह तुम्हे एक ही दिन में वापस अपने गाव में पहुँचा देगा। उसके पास कई तरह की सिद्धियाँ हैं सकेत समझ!

'मगर महाराज, मगल पण्डित ने हमारा अविश्वास किया तो ?

यह माला उन्हे दिखा देना। पुजारी ने अपने गले से एकादश रुद्राक्ष की माला उतार कर दी।

दोनो ब्राह्मण विदा हुए।

साँगा चलता गया।

चलता गया। चलता गया।

जब वह थक जाता किसी पेड के नीचे सो जाता। रात होने पर किसी गाँव के बाहर मन्दिर में ठहर जाता। वनों में कन्दमूल, फलफूल मिल ही जाते।

पिछले दिनो वह साधु से लेकर सामन्त तक सभी प्रकार के लोगो के बीच रहा था—सवत्र उसने एक ही प्रकार की मानवता के दर्शन किए। एक ही प्रकार का प्रम और अमृत पाया। सर्वत्र उसने एक ही

और सांगा यह भी जानता था कि महारावत सूरजमल और अज्जावत सारगदेव, बूंदी के राव सूरजमल और रूपनारायण के महात्मा चाहे जितना प्रयास करें पृथ्वीराज के रहते उन्हें मुक्त सहयोग मिलना कठिन है।

इस कठिनाई का एक कारण है—

लोग उसी की सहायता करते हैं, जिससे उन्हें 'कुछ' मिलने की आशा रहती है। फिर चाहे वह व्यक्ति या समुदाय कितना ही क्षुद्र और हीनकर्मा क्यों न हो। मनुष्य अपनी प्राप्ति का स्रोत नहीं देखता, प्राप्त पदार्थ को देखता है। अतएव, जो उसे देता है, वह उसी के पास जाता है।

लोग उसकी सहायता नहीं करते जिससे उन्हें कुछ भी मिलने की आशा नहीं रहती है। फिर चाहे वह व्यक्ति या समुदाय कितना ही उच्च और शुद्धकर्मा क्यों न हो! मनुष्य अपनी प्राप्ति का स्रोत देखे और उसकी शुद्धि-अशुद्धि के चक्कर में पड़े तो उन्हें क्या लाभ?

इसलिए लोग त्यागी, विरागी का साथ नहीं देते, अनुरागी का साथ देते हैं। भोगी और अनाचारी से मन ही मन घृणा करते हुए भी उसी का अनुसरण करते हैं, योगी का नहीं। सज्जन का हितवचन भी उन्हें अप्रिय और कटु लगता है और दुर्जन का अहितवचन भी प्रिय और मधुर प्रतीत होता है। यही विडम्बना है जो मनुष्य को मृत्यु की ओर ले जाती है। प्रकाश का पथ भुलाकर, उसे अंधकार की राह पर दौड़ाती है।

सांगा का प्रण था मृत्यु के मार्ग पर नहीं चलूंगा।

प्रकाश को विस्मृत नहीं करूंगा। अंधकार के वैभव को अंगीकार नहीं करूंगा, चाहे प्रकाश कितना ही दीनहीन और वैभवरहित क्यों न हो।

और इसी प्रकार की विचार-तरंगों में वह तल्लीन रहता।

इसी तल्लीनता में एक दिन उसकी दृष्टि अपने अतुल बलशाली अश्व पर गई।

—सारा शरीर जिसका मूसवार निर्बल हो चुका था।

आज साँगा के पास उसे खिलाने को कुछ भी नहीं था। उसका मन पसीज उठा। वह चिंता में पड़ गया।

इस प्रकार पशु ने उसे कितने कितने वैरियों के बीच सुरक्षित रखा था! कितनी राह, पगडंडियाँ और मंजिलें पार कराकर यह उसे यहाँ तक ले आया!

और बदले में साँगा उसे हरी घास भी नहीं खिला सकता!

उसने अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाली!

भीषण रणक्षेत्र में काल के कराल डाढ़ों को दाव पर शवों का उपहार देनेवाली कराली करवाल! जिसकी चमक भाद्रपद के घने अँधियारे अम्बर-कोण में विलोल करनेवाली मत्युज्ज्वला दामिनी की दिव्य दमक को भी लज्जित करती थी!

—यही परमस्वी साँगा की तलवार!

उसे देखकर साँगा को मनुष्य के भाग्य की विडम्बना पर विचार आया और हँसी आ गई!

आज यही तलवार घास काटेगी!

भाई के गले पर चलने से तो यही अच्छा है कि तलवार मेरी घास के मैदान में चले!

हरी-हरी, नरम नरम घास वह काट लाया।

और, इसके लिए उसे बड़ी दूर, वन में जाना पड़ा।

घोड़ा बड़ी ललक से उसे खाने लगा। और मानो आभार प्रदर्शन करता हो, इस प्रकार बीच-बीच में साँगा की ओर देखने लगा!

जब वह घास खा चुका तो साँगा उसे एक स्वच्छ, शीतल जल के नाले के निकट ले गया। उसे अपने हाथों से स्नान कराया। और जल पिलाया।

साँझ समीप आ गई थी। जैसे जीवन के पथ पर आगे-पीछे-देखे-बिना-दौड़नेवाले यात्री के समीप आयु की दोपहरी या सन्ध्या आ जाती है और चौंककर वह देखता है—

मंजिल बहुत बाकी है। दिन बहुत कम रह गए हैं। सीमाएँ अछोर हैं और समय का छोर है!

साँझ के तारे चंदा पंडित की पाठशाला में, खेलकूद से मनमारे, अपनी-अपनी पोथी लेकर पढ़ने बैठ गए थे। उनके मन्त्रों के वृक्षों के नीड़ में पक्षीगण दुहरा रहे थे।

साँगा अकेला था।

जीवन की पाठशाला में भी नाट्यशाला में भी वह अकेला और एकाकी था। कोई उसका साथी, संगी नहीं था। यदि वह किसी को अपना साथी बनाता, तो उस बेचारे का जीवन भी संकट में पड़ जाता!

संगी यही एक अश्व था।

आज साँगा ने इससे भी पलायन करने का निर्णय कर लिया था। उसे जब आधा पेट घास भी नहीं खिला सकता तो क्या लाभ? छोड़ दिया जाए! कहीं चला जाएगा। वीरों और वीरांगनाओं का युग है। इस समय राजपूत और अश्व कहीं अछूते नहीं रह सकते। इन्हें काम मिल ही जाता है!

साश्रु नयन साँगा अपने अश्व की ओर मुड़ मुड़ कर देखता हुआ विदा हुआ लेकिन अश्व को जैसे गंध मिल गई। घास छोड़कर वह धीमे धीमे हिनहिनाने लगा।

कभी न लौटने वाला साँगा लौट आया। उसने इस अश्व की ग्रीवा में बाँहें डाल दीं और सहोदरवत् उसे चुमकारने लगा। अश्व की आँखों से आँसू गिरने लगे। कभी-कभी पशुओं का प्रेम मनुष्य के प्रेम को भी पीछे छोड़ देता है। कर्त्तव्य परायणता के क्षेत्र में मानव को भी वह मात कर देता है।

अश्व अपनी वल्गा से बँधा हुआ भी मुक्त था और साँगा मुक्त होते हुए भी अश्व के स्नेह की सौ-सौ शृंखलाओं से बँधा हुआ था।

मन में इस बंधन को लेकर वह चल पड़ा। अब उसके पास न तो कोई सेवक ही था और न अश्व ही था। इसका मन वेदना से निरन्तर भरता जा रहा था परन्तु यह सोचकर उसने अपने आपको सान्त्वना दी

"न हो मैं भी भेड़ चराऊँगा। ऊन तैयार करूँगा और घास-पात के सैनिकों के घोड़ों के लिये घास काटकर लाऊँगा।"

"तब तो बड़ी अच्छी बात है। मैं भी यहाँ वन के पुराने बाँस की तरह बूढ़ा और अकेला हूँ। एक लड़की है, जो तुम्हें सामने की टेकरी पर बनी उस कुटिया में मिलेगी अथवा चलो मैं ही तुम्हें पहुँचा दूँ।"

साँगा गड़रिये के पीछे पीछे चला।

कुटिया के निकट पहुँचकर वृद्ध ने पुकारा—

"पूनम, ओ पूनम!"

सोलह-सत्तरह साल की एक सुन्दर लड़की कुटिया के द्वार पर आकर खड़ी हो गई। उसके हाथ आटे में सने थे।

साँगा ने उस नवयुवती की ओर देखा और उसने भी साँगा की ओर देखा।

साँगा को लगा जैसे, उसके सामने आनन्दी खड़ी है। उसका मन पुलकित हो गया। मोह के कटे हुए बन्धन मानो पलभर में जुड़ गये। मोह के बन्धनों को यद्यपि उसने काट दिया परन्तु रक्षा के बन्धनों को वह नहीं काट सका। साँगा वीर ही नहीं, परम वीर था। वह समर्थ ही नहीं, महा समर्थ था, परन्तु वह इतना निर्बल और असमर्थ था कि सूत के दो धागों की ग्रंथि का भी नहीं तोड़ सकता था। संसार में कुछ ऐसे बन्धन और ऐसी ग्रंथियाँ भी हैं जिनमें बंधकर रहना ही श्रेयस्कर और सुन्दर है।

हठात् साँगा के मुख निकला—

"दादा, मेरी भी ऐसी ही एक बहन है।"

पूनम की ग्राम्यबाला-सुलभ-लज्जा रेखा टूट गई—

"तो भैया, उसे भी यहीं ले आओ। कितनी बड़ी है वह? छोटी होगी तो, मैं उसे घर के सारे काम सिखा दूंगी और बड़ी होगी तो उससे सीखूँगी।"

साँगा बोला—

'मगर अब तो वह अपनी ससुराल जा चुकी है।'

"अच्छा!" कहकर लडकी भीतर गई और हाथ धोकर एक छोटी-सी कलशी मे शीतल जल ले आई। उसने बडे प्रेम से साँगा के हाथ-पैर धुलाये। जब वह हाथ पैर धो चुका तो दादा ने उसे अपना अगोछा देते हुए कहा—

'बेटा इससे पोछ लो।'

पूनम दूध का बडा सा एक कटोरा ले आई।

साँगा ने कहा—

"भूखा तो हूँ परन्तु, बहन, इतना दूध नही पी सकूँगा।"

"अरे दादा, इतना तो मैं अब तक दो बार पी चुकी हूँ। तुम्हें इससे ज्यादा रोज पीना पड़ेगा।

कहकर पूनम मुसकाई। दूध की तरह अजस्र धाराओ से धुले हुए उसके दन्त मुक्ता चमक उठे नगर और पुरो की राजधानियो और पाटनगरों की कृत्रिम सभ्यता के जजालो से मुक्त यह ग्रामबाला प्रकृति की पुण्यवती प्रतिमा-सी स्नेह और आनन्द के अमरित का वपण करने वाली देवगगा-सी, साँगा को प्रतीत हुई।

गडरिया गोचरभूमि और चरागाहो की ओर चला गया।

भाई और बहन बैठकर बातें करते रहे।

बहन को क्या मालूम था कि उसके सम्मुख बैठा हुआ भोला और भला यह नवयुवा, मेदपाट के महाबलशाली सम्राट महाराणा रायमल्ल का राजकुमार सग्रामसिह है? वह तो उसे किसान या गडरिए के बेटे से अधिक अकित न कर सकी और उसका अकृत्रिम मन इसी भावना से विभोर होकर अपने बहनापे की रसगगा को अरोक बहता रहा।

दिन बीतने लगे।

पछी डाली से उडकर पुन' जिस प्रकार लौट आते हैं और आकर फिर से उड जाते हैं, उसी प्रकार दिन और रात के पछी समय की डाली पर आते जाते रहे।

"पत्र यह परममट्टारक महाराणाजी का है।" इतना कहकर पुरोहित ने पत्र का सारांश सुना दिया। महाराज ने लिखवाया था कि बेटा तुमने टोडा की विजय के महान् कार्य से मेर को सुख और हर्ष दिया है। मैं तुम्हारे पराक्रम से प्रसन्न हूँ। और तुम्हारे शुभ विवाह के लिए मंगल कामना करता हूँ। मैंने तुम्हारे सभी अपराध क्षमा कर दिए हैं और अब तुम अवश्य चित्तौड़ लौट सकते हो।"

इस पत्र के समाचार सुनकर राव सुरताण, उसकी रानी और तारा को बहुत हर्ष हुआ।

रानी साँवली ने टोडा विजय के उपरान्त भीमा मुखिया को एक बड़ी जागीर देकर बसा दिया था। अब तो राजो और सीता बड़े ठाठ से रहती थीं। रूपा पूरे टोडा के दीन-दुखियों की सेवा करती थी।

राजवन्ती ने रानी साँवली से कहा—

"अब तो अवश्य युवराज मेवाड़ के महाराणा बनेंगे और हमारी तारा महारानी बनेगी।"

"प्रभु की कृपा है।" रानी बोली।

"अब यह कार्य अवश्य सिद्ध होगा, क्योंकि राजकुमार जयमल नहीं रहे।

"रहते तो भी वे पृथ्वीराजजी से छोटे थे।"

"और साँगा का पता नहीं।"

"ईश्वर करे उनका पता ही न लगे।"

राजो को हँसी आ गई। साँवली ने पूछा—

"क्या हँसती है री ?"

"माँजी, मैंने सोचा यदि साँगा की सास भी यही कह रही हो कि दूसरे राजकुमारों का पता न चले, तो कितना अच्छा हो। मनुष्य अपने लिए जो कामना करता है, वही, दूसरे मनुष्य के लिए नहीं करता। इसीलिए मनुष्य दुखी रहता है।"

रानी साँवली चुप रह गई।

राजो फिर बोली—

"आओ, आओ भाँजी चारण के गीत सुने।"

दोनो महल के एक जालीदार झरोखे मे आईं। राजो एक ओर खड़ी रह गई।

दोनो ने देखा, तारा सिर झुकाए पृथ्वीराज के निकट बैठी थी।

सीता आई—

"देखती है राजो, तारा देवी शरमा रही है। कहाँ तो टोडा के आक्रमण मे युवराज के साथ गई थी, शत्रुओ से लड़ने के लिए।"

"अरी पगली, क्या रणभूमि, रगमच और विवाह-मडप मे स्त्री का स्वरूप एक ही रह सकता है? रणभूमि में वह दुर्गा और भवानी है। जीवन के रगमच पर वह शुद्ध ममतामयी नारी है। विवाह-मडप में लज्जाशीला रूप-सी है।"

"सच है, नारी अपनी इन विविध लीलाओ मे ही सुन्दर लगती है।"

"वह मूर्तिमती माया है। और माया अपने अनेक रूपो मे मोहमयी है।"

"सुन, सुन! चारण राज का आलाप—"

'भाग लल्ला प्रथिराज आयो
सिंह रे साथ ब्यायो।
द्रड चढ़ें पृथि मल्ल भाजे टोडो
लल्ला ताणें मर धारे लोह।"

तारा को लेकर पृथ्वीराज चित्तौड लौट आया।

महाराणा ने मोह मे पडकर अपने अति स्वार्थी पुत्र का स्वागत किया।

तारा और पृथ्वीराज के दिन रगरेलियो मे कटने लगे। तारा भी अपने सपनो मे खो गई।

दिन बीतने लगे। तारा वह तारा नही रह गई थी, जो एक दिन तलवार बाँधकर टोड़ा में लडी थी। चित्तौड के विलास-कक्षो की मादकता ने उसके मानस मे वासना के भीषण ज्वार भर दिए थे। आठो प्रहर आमोद-प्रमोद मे बीतने लगे।

पृथ्वीराज की न केवल विलास-वृत्ति ही बढ़ी, उसकी उद्दण्डता भी चतुर्मुख बनकर अपनी कठोरता का परिचय देने लगी।

इसके सबसे पहले शिकार सारंगदेव और सूरजमल हुए।

पृथ्वीराज और उसके अनुगामी साथियों ने सारंगदेव और सूरजमल के इलाके को लूटना, जलाना, बरबाद करना शुरू कर दिया। वे परेशान हो गये शस्त्र उठाने तो रक्त-सम्बन्ध आड़े आते। शस्त्र न उठाते तो आत्म-रक्षा असम्भव थी। राणाजी से शिकायत की, एक बार नहीं अनेक बार—कोई सुननेवाला नहीं था। सांगा के समर्थक सारंगदेव और सूरजमल को मिटा देने के लिए वे सरदार भी सहमत थे जो पृथ्वीराज के या तो मामा लगते थे, ससुराल की ओर से साले थे या उसे अपनी बेटी देने की इच्छा रखते थे।

इसके अतिरिक्त साम्राज्य के अपने कारण भी थे। जिनके आधार पर स्वयं महाराणा रायमल और उनके मन्त्रिगण भी नहीं चाहते थे कि सारंगदेव के अधिकार में विस्तृत क्षेत्र रहे अथवा सूरजमल जैसा पराक्रमी सूर्यवंशी विशाल राज्य की स्थापना करे।

इस समय सूरजमल के अधिकार में बड़ी सादड़ी से गिरवा तक का समस्त प्रदेश था। यही प्रदेश पृथ्वीराज और एक सीमा तक महाराणा रायमल की आँखों में खटकता था। उन्होंने यह नहीं सोचा, अपनी अदूरदर्शिता के कारण कि सूरजमल जैसा वीर, उनका समर्थक रहकर, यदि इसीप्रकार सीमान्त-प्रदेश पर प्रतिष्ठित रहता है तो मेवाड़ के राज्य की सुरक्षा बढ़ती है और इस ओर से वे सर्वथा निश्चिन्त होते हैं। वे सोच ही नहीं सके और बाप-बेटे की इस भूल का परिणाम न केवल आन्तरिक विग्रह में प्रकट हुआ अपितु एक सौ सालों में मालवा उनके साम्राज्य के विरुद्ध संकट का विकट कारण बन गया।

सूरजमल और सारंगदेव, इससे पूर्व के युद्धों में मेवाड़ के दाहिने और बायें भुजदण्ड साबित हो चुके थे। उनकी प्रामाणिकता स्वामि-भक्ति, मेवाड़ के प्रति उनके मनो के मोह—किसी में कहीं कोई कमी न थी। कमी थी तो महाराणा रायमल और युवराज पृथ्वीराज के

पृथ्वीराज की न केवल विलास-वृत्ति ही बढ़ी, उसकी उद्दण्डता भी चतुर्गुण बनकर अपनी कठोरता का परिचय देने लगी।

इसके सबसे पहले शिकार सारंगदेव और सूरजमल हुए।

पृथ्वीराज और उसके अन्यायी साथियों ने सारंगदेव और सूरजमल के इलाके को लूटना, जलाना, बरबाद करना शुरू कर दिया। वे परेशान हो गये शस्त्र उठाने तो रक्त-सम्बन्ध आड़े आते। शस्त्र न उठाने तो आत्म-रक्षा असम्भव थी। राणाजी से शिकायत की, एक बार नहीं अनेक बार—कोई सुननेवाला नहीं था। सांगा के समर्थक सारंगदेव और सूरजमल को मिटा देने के लिए वे सरदार भी सहमत थे जो पृथ्वीराज के या तो मामा लगते थे, ससुराल की ओर से साले थे या उसे अपनी बेटी देने की इच्छा रखते थे।

इसके अतिरिक्त साम्राज्य के अपने कारण भी थे। जिनके आधार पर स्वयं महाराणा रायमल और उनके मंत्रिगण भी नहीं चाहते थे। कि सारंगदेव के अधिकार में विस्तृत क्षेत्र रहे अथवा सूरजमल जैसा पराक्रमी सूर्यवंशी विशाल राज्य की स्थापना करे।

इस समय सूरजमल के अधिकार में बड़ी सादड़ी से गिरवा तक का समस्त प्रदेश था। यही प्रदेश पृथ्वीराज और एक सीमा तक महाराणा रायमल की आँखों में खटकता था। उन्होंने यह नहीं सोचा, अपनी अदूरदर्शिता के कारण कि सूरजमल जैसा वीर, उनका समर्थक रहकर, यदि इसीप्रकार सीमान्त प्रदेश पर प्रतिष्ठित रहता है तो मेवाड़ के राज्य की सुरक्षा बढ़ती है और इस ओर से वे सर्वथा निश्चित होते हैं। वे सोच ही नहीं सके और बाप-बेटे की इस भूल का परिणाम न केवल आन्तरिक विग्रह में प्रकट हुआ अपितु एक सौ साला में मालवा उनके साम्राज्य के विरुद्ध संकट का विकट कारण बन गया।

सूरजमल और सारंगदेव, इससे पूर्व के युद्धों में मेवाड़ के दाहिने और बाएँ भुजदण्ड साबित हो चुके थे। उनकी प्रामाणिकता स्वामि-भक्ति, मेवाड़ के प्रति उनके मनों के मोह—किसी में कहीं कोई कमी न थी। कमी थी तो महाराणा रायमल और युवराज पृथ्वीराज के

प्रेम में, उनके हृदयों में, अपने कुल-बन्धुओं को अपना 'बन्धु' न समझने की भारी भूल में।

राणाजी ने यह न सोचा कि पितृहंता उदयसिंह, उनके अपने भाई के पुत्र सूरजमल और सहसमल जब मालवा के सुलतान गयासुद्दीन को चित्तौड़ पर चढ़ा लाए थे, तब महारावत सूरजमल और सारंगदेव ने अभूतपूर्व वीरतापूर्वक उनका सामना किया था! सुलतान की हार हुई थी।

खिलजी वंश के मांडू के सुलतान महमूदशाह के शाहज़ादे ग़यासुद्दीन को यह हार चैन की नींद नहीं लेने देती थी! उसने फिर से आक्रमण की भारी तैयारी की और अपने सेनापति ज़फ़रख़ाँ को एक विशाल सेना के साथ, एकलिंग की भूमि को भस्म करने के लिए भेजा।

रायमल मैदान में उतरा। राजकुमार जो छोटे थे, उन्हें छोड़कर बड़े सभी आए। पृथ्वीराज, जयमल, संग्रामसिंह, प्रतापसिंह और रामसिंह ने अपनी वीरता दिखाई। कांधल चूड़ावत आया। सारंगदेव अज्जावत और महारावत सूरजमल भी आया।

भीषण युद्ध हुआ। ज़फ़रख़ाँ हारा ही नहीं, हार कर भागा।

सन् १४८९ में एक दिन, भगवान् एकलिंग के मन्दिर के दक्षिण द्वार पर एक प्रशस्ति की प्रतिष्ठा हुई—

"मेदपाट के अधिपति रायमल्ल ने मंडल दुर्ग, माडलगढ़ के निकट शत्रुसेना का नाश कर ग़ज़पति ग्यास के गर्वोन्नत सिर को सदा के लिए नीचा कर दिया—गलद्‌गर्वग्यासशकेश्वरम्।'

दिग्दिगन्ता में कीर्ति-कौमुदी की छटाएँ छिटकीं।

क्या इस कीर्ति की कमनीय रचना में सूरजमल बांका का हाथ नहीं था? सारंगदेव का साहस नहीं था?

फिर राणा रायमल ने सूरजमल को 'सूरजप्रसाद' नामक पवन का प्रतिद्वन्द्वी अश्व क्या कर भेंट किया था?

फिर भी एक बड़ी ऐतिहासिक भूल हो गई।

सूरजमल और सारंगदेव ने घावों पर मलहम लगाने की कोशिश की। उन्होंने रायमल से आवेदन किया कि दोनों को एक एक गाँव ही दे दिया जाए और अपनी पितृ भूमि में शांतिपूर्वक रहने दिया जाए, लेकिन पृथ्वीराज के षड्यन्त्र, महाराणा के मोह और मन्त्रियों की अदूरदर्शिता ने मेवाड़ ने अपने ही रक्त की बूँदों को अपने विशाल रत्नाकर से अलग रहने को बाध्यकर दिया।

प्राणों के भय से विवश सूरजमल रायमल का अपना भाई, पृथ्वीराज का अपना काका मालवा के सुलतान के पास माडू चला आया।

सारंगदेव भी आया।

दोनों महारथियों के आगमन से सुलतान बहुत खुश हुआ—

'खुश आमदीं !" उसने दोनों से गले मिलकर कहा।

सुलतान ने सूरजमल को उस स्थान पर अधिकार करने के लिए प्रेरित किया, जहाँ कालान्तर में देवलिया और प्रतापपुर जैसे नगर और गाँव बस गए। स्वयं सुलतान ने भी सूरजमल को बहुत-सा इलाका इनाम में दिया। राजपुर से घरियावद तक और नीमच से नायों तक का समस्त प्रदेश सूरजमल की स्वतन्त्र पताका की छाया में शरणागत हुआ।

सूरजमल के इस प्रकार चले जाने से और जाते हुए को न रोकने से अथवा जाने को उस मजबूर कर देने से मेवाड़ का जैसे एक दुर्गद्वार टूट गया, एक अंग कट गया।

नासिरशाह, मालवा का सुलतान सेना एकत्र करने लगा। खिलजी पठान और उजबक आए। गुजरात से, खानदेश से लड़ाके आए। राजपूतों की कमी नहीं थी। इस तरह एक विशाल सेना बन गई।

अपने बाप-दादा के अपमान का बदला लेने का यह अच्छा अवसर नासिरशाह को मिला था। उसकी आँखों के सामने वक्त की हवा से उड़ते हुए तवारीख के पन्ने, आए—

'राणा कुम्भ ने किस प्रकार सुलतान महमूद खिलजी (प्रथम) को हराकर चित्तौड़ के किले में छह मास तक बंद रखा था। न हुआ उस

वक्त नासिरशाह, वरना दुश्मनो को दो-दो हाथ दिखाता। आज राना कुम्भ के वारिसो से बदला लेने का अच्छा मौका हाथ लगा है। सबसे बड़ी खुशी की बात तो यह है कि एक भाई दूसरे भाई पर, एक राजपूत दूसरे राजपूत पर तलवार उठाएगा।'

नासिरशाह ने सूरजमल को उत्साहित किया—

'हम हार भी गए तो क्या? आपके पिता महारावत क्षेमकर्ण ने चित्तौड़ पर पाँच बार हमला किया। क्या हम दो-तीन बार भी चढ़ाई नहीं करेंगे?"

"बहुत खूब, बहुत खूब।' सूरजमल और सारंगदेव ने एक स्वर से कहा।

वे माण्डू आकर प्रसन्न नही थे परन्तु क्या करते? रायमल ने उन्हें एक एक गाँव भी नही दिया। उस दिन पृथ्वीराज ने कहा था—

'काकाजी मैं आपको भाले की नोक-जितनी जमीन भी नही दूँगा।"

और तब सूरजमल को भी क्रोध आ गया था। कह दिया—

"और कुमार, मैं तुम्हे एक पलग बिछाने जितनी भूमि पर भी चैन से शासन न करने दूँगा।

इतने पर भी दोनो के मन मे एक-दूसरे के प्रति कटुता नही आई थी।

दोनो वीर थे। दोनों राजपूत थे। एक ने दूसरे के स्वभाव की निर्भयता की मन ही मन सराहना की और उस दिन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे, जिस दिन रणागण म दोनो की तलवारें टकरा-टकरा कर बिजलियाँ गिराएँगी।

सूरजमल और सारंगदेव को मालवा गए दिन बीते।

पृथ्वीराज निश्चित हो गया।

मगर महाराणा रायमल को चैन नही था। यद्यपि उसकी शक्ति अपार थी और साहस और पराक्रम का अभाव नही था परन्तु विचारवान् मंत्रियो और साथियो की कमी थी। और जब से रावत और अज्जावत चले गए थे, यह कमी और भी खटकती थी।

इस गर्जन की गूँज ने मेवाड़ के महाराणा की नींद हराम कर दी थी। खाना-पीना, उठना-बैठना, राग-रंग, मेल-जोल, पुत्र-पत्नी और राज-काज कुछ भी अच्छा नहीं लगता था !

रात्रि में चित्तौड़ के सुरक्षित राज-प्रासादों में जब महाराणा रायमल अपने विलास-कक्षों की सर्वस्वमोहिनी सुगंधियों के मध्य सोने का उपक्रम करता, उसे नींद नहीं आती ! वह चौंककर वातायनों के पार दूरस्थ क्षितिजों की ओर देखता और काले अंधकार में महाबलवान सूरजमल और मस्तावत सारंगदेव के नेतृत्व में विशाल वीर-वाहिनी सेनाएँ सप्तसागर के महाज्वार की भाँति आगे—और आगे बढ़ती हुई प्रतीत होतीं।

एक दिन महाराणा रायमल अपने मनस्ताप के कारण मनोवेग को रोक न सका और उसने भरी सभा में कह दिया—

"क्या इस सभा में कोई ऐसा वीर है जो मेरी आज्ञा के अनुसार कार्यविशेष का बीड़ा उठाए ?"

"महाराणा, ऐसा दुर्विनय कौन है। आप आज्ञा दीजिए।" योद्धाओं ने उठकर झुक-झुककर अभिवादन करते हुए कहा।

महाराणा बोले—

"महाबली सूरजमल का नाम सुनने से ही मुझे कष्ट होता है।"

सुनकर सभासद स्तब्ध रह गए। उन्हें सूरजमल का नाम सुनकर चुप देखकर महाराणा कहने लगे—

"देवताओं में हनुमान के समान मैं महाबली हूँ। असुरों में सिर्फ रावण एक था, मनुष्यों में भीम था। किन्तु यह सूरजमल कहाँ से आ गया ? जब तक यह जीवित है मुझे कुछ भी रुचिकर नहीं लगता है।"

महाराणा की बात समाप्त हुई।

योद्धाओं में से कुछ ने महाराणा की बात सुनी-अनसुनी कर दी।

सामन्तों ने दूसरा प्रसंग चलाकर राणा के बचन को टालने का प्रयत्न किया। कुछ मंत्री और सरदार दूसरी ओर देखने लगे।

महाराणा बालक नहीं था।

वह समझ गया कि मेरे सामन्त, सरदार और योद्धा सूरजमल का नाम सुनते ही मौन रह गए हैं। यह सब देखकर उसे बहुत क्रोध आया और क्रोध से उसके लोचन एकदम लाल हो गए। वह बारम्बार अपने मूँछों पर ताव देने लगा। उस समय यदि कृतान्त यमराज भी राणा को देखता तो भयभीत होकर कांपने लगता !

तभी उस बलशाली महाराणा ने आक्रोश में भरकर अपनी जाँघ पर ताल का विस्फोट किया अपने भयंकर खड्ग को हाथ में उठाया और भरी सभा में निराश होकर सिंहासन पर हाथ दे मारा।

मेवाड़पति महाराणा रायमल की राजसभा में कंटिन के नरेंद्र सूरजमल के नाम मात्र के उच्चारण पर सन्नाटा छा गया।

पृथ्वीराज से यह दशा देखी न गई। उस रणगामी वीर पुत्र ने उठकर प्रणाम किया और बीड़ा माँगा—

'*अन्नदाता यद्यपि सूरजमल बहुत बलवान है*, मैं उसको अवश्य मार डालूँगा। यद्यपि मैं आपके पक्ष का एक साधारण जन हूँ फिर भी *अपना जौहर दिखाऊँगा। अन्नदाता, धनुष से छूटने के बाद अपने पक्ष* का एक छोटा सा तीर भी वैरी-वीर-वनिता को विधवा बना देता है।" उसी प्रकार स्वपक्ष का तुच्छ जन भी शत्रु का संहार कर सकता है।"

महाराणा ने निश्वास लेते हुए कहा—

'सूरजमल बहुत बलवान है और अब तो उसे हमारे सभी शत्रुओं का सहयोग सुलभ हो गया है।'

पृथ्वीराज उसी आवेग में बोला—

अन्नदाता, मैं कवि नहीं कि उपमा दे सकूँ किन्तु जिस प्रकार अर्द्धोदित अरुण अगम अंधकार को नष्ट कर देता है उसी प्रकार आपके प्रताप से मैं सभी शत्रुओं को नष्ट कर दूँगा।"

'धन्य है, धन्य है।' सभी सभासदों ने कहा। राणा ने उसे निकट बुलाया और गले से लगा कर उसकी कटि में अपनी तलवार बाँधी।

युवराज पृथ्वीराज चल पड़ा।

उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो रणभूमि की शोभा के समान स्वशरीर, मूर्तिमान क्रोध प्रस्थान कर रहा है।

नगाड़े बज उठे। रणभेरी योद्धाओं का आह्वान करने लगी। उस भयानक स्वर से भुवन व्याप्त हो गया।

सेना के चलने से धूल के गुब्बार उड़-उड़ कर आकाश में छा गए। वह सूखी और महीन पद रज उड़ उड़ कर दिशारूपी अगनाओं के लोचनों में गिरकर, उन्हें कष्ट देने लगी। सैन्य प्रयाण से उड़ती हुई इस धूल के कारण मित्र और शत्रु पक्ष के दर्शक-वृन्द की आँखें इस प्रकार जाधी मुँद गईं कि लोगों ने कुछ देखा कुछ नहीं देखा। परन्तु आगे बढ़ने पर कांठल प्रदेश में पृथ्वीराज के रथों की ध्वनियां सुनकर दर्शक कहते थे—

"ये रथ भी महारावत सूरजमल के भय से रो रहे हैं।"

कुछ दूर जाने पर एक उत्तम स्थान देखकर पृथ्वीराज ने सेनापतियों को रोकने का आदेश दिया और अपना एक दूत सूरजमल के पास भेजा। यह दूत लम्बे कद का ऊँचा पूरा, हृष्टपुष्ट और विनयवान था।

तेज से तेज घोड़े पर सवार होकर दूत सूरजमल के पास आया। सूरजमल ने शीघ्र ही उसे अपने सामने बुलाया। दूत ने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोला—

"महारावतजी! राज-सभा में साठ सहस्र स्वर्णमुकुट जन्म से ही जिसके चरणों में झुकते हैं, उसी प्रतापी रायमल के सुपुत्र पृथ्वीराज ने मुझे दूत पद देकर आपकी सेवा में भेजा है। महाराज कलह अधर्म का मूल है और इसी कारण सहस्रार्जुन की एक सहस्र भुजाएँ कटीं, रावण के सिरों का उच्छेद हुआ और कौरव-दल मिट्टी में मिल गए। महाराज, जब तक शत्रु से संधि होने का सुअवसर शेष रहता है तब तक विग्रह में रुचि नहीं रखनी चाहिए क्योंकि नाव के रहते भी बाढ़ पर आई हुई नदी को भुजाओं के बल पर तैरने का प्रयास करना बुद्धिमानी नहीं। मधु और घी जब समान परिमाण में होते हैं तो विष

बनता है। इसी प्रकार समान पद और प्रतिष्ठा वाले दो प्राणियों का गर्व और गौरव समान मात्रा मे मिश्रित होता है तो अहंकार की अभिवृद्धि होती है। वीरवर, इस अहंकार के वशीभूत होकर शरीर का त्याग करना उचित नही है क्योंकि सतत शरीर रक्षा ही धर्म की साधना है। समझदार लोग उसी प्रकार अपने कार्य की सिद्धि करते हैं जिस प्रकार शक्तिशाली त्रिविक्रम ने मानव रूप धरकर विनम्रतापूर्वक अपना काम बनाया।"

सूरजमल अबतक धैर्यपूर्वक दूत की बातें सुन रहा था, अब अचानक उसे क्रोध आया—

"दूतराज, आपका आशय है मैं भी वामन की तरह छोटा बनकर सासारिक सुखो की साधना के लिए कुमार से भीख मांगू।"

"श्रीमान्, *याचना और विनम्रता मे अन्तर है। समय की ओर* देखकर अपने कर्तव्य और कार्यक्रम का निर्णय करना चाहिए राजन्। जिस प्रकार घर मे घुसा हुआ चोर अवश्य हानि पहुँचाता है उसी प्रकार अपनी सीमा मे प्रविष्ट शत्रु-दल अपने प्रदेश और वीरो को हानि पहुँचाता है। महाराज, नीति का वचन है कि नष्ट हुए ऐश्वर्य को लक्ष्मी त्याग देती है। लक्ष्मी के जाने पर मित्र और स्वजन भी स्नेह-भाव छोड देते हैं और स्नेहहीन योद्धा को जयलक्ष्मी कभी वरमाला नही पहचानती और लक्ष्मी से रहित होने से मनुष्य को इस स्वार्थी समाज मे समादर नही मिलता। महाराज, अनुचित कहा हो तो क्षमा करें और उचित कहा हो तो मेरे विनम्र वचनो को अपने हृदय-सरोवर मे सरोज के समान स्थान दें।"

तब मुसकराकर सूरजमल ने कहा—

"दूतवर, आप मेरे अतिथि हैं तो मेरा मनोरथ पूरा करें और यदि मुझे जीतने की इच्छा से आए हो तो अपनी इच्छा पूर्ण करें।"

दूत समझ गया कि सूरजमल को वश मे करना बालू को पीसकर तेल निकालने के समान कठिन है। वह शान्त हो गया। सूरजमल ने उसका समुचित सत्कार किया और विश्रामोपरान्त जब वह जाने लगा तो बोला—

"दूत, अपने कुमार से कह देना, धरती रसातल में चली जाए, मेरु के मूल विचलित हो जाएँ और अपार पारावार सूख जाएँ किन्तु मेरे स्वाभिमान का सागर नहीं सूख सकता।"

दूत चला गया।

पृथ्वीराज ने अपने दूत के मुँह से सारी बातें सुनने के बाद सेना को प्रयाण का आदेश दिया।

इधर, सूरजमल भी तैयार बैठा था। उसने भी अपनी सेना के सहस्रों अश्वारोहियों को युद्ध के लिए प्रेरित किया और वे चित्तौड की ओर चले।

सेना के अश्वों की पीठ पर चाबुक पड़ते ही दिशा-सुन्दरियाँ जैसे मिलकर एकाकार हो गईं। रावत की पताका दूर-दूर से दृष्टिगोचर होने लगी और उसके नगाड़ा के निनाद से वीरों के वज्रहृदय भी दहल उठे।

तूफान से टकराने वाले दूसरे तूफान की तरह प्रलय से मिलने वाले दूसरे प्रलय-प्रवाह की भाँति सेनाएँ समर-क्षेत्र में मिली।

सूरजमल ने धर्मक्षेत्र में आते ही रणस्तम्भ रोप दिए और अपनी समस्त सेना को सम्बोधन करके कहा—

"वीरो, मेरे लिए इस स्तम्भ के पीछे पैर देना परम पाप है। धर्म्याणि वीरा धुरत पदानि पापानि पश्चादिति मामकानि ।"

इसके बाद दोनों ओर की रणभेरियाँ बज उठीं। घमासान युद्ध शुरू हो गया। रणक्षेत्र में मरकर वीर-गति पाने के लिए उतावले सहस्रों वीर क्षण क्षण में कटकर धरती पर गिरने लगे।

समर्थ और शक्तिशाली सूरजमल दड़े और सफेद घोड़े पर बैठकर अपना भीषण भाला लेकर अकेला ही शत्रुओं से भिड़ गया क्योंकि विजय की कामना रखने वाला योद्धा मित्र की अपेक्षा नहीं रखता। सूरजमल के पहले ही प्रहार से शत्रु सेना टूट गई।

भीषण युद्ध हो रहा था। घोड़े हिनहिना रहे थे। हाथी चिंघाड़ रहे थे। मतवाले हाथी शत्रु-पक्ष के वीरों को अपनी सूँड़ में उठाकर

आकाश मे उछाल रहे थे अथवा पृथ्वी पर पटककर अपने पैरो से कुचल रहे थे। भाले, बर्छी, तीर-कमान और तलवारें अपनी अपनी चमक दिखा रही थी। धोसा धमक रहा था। नगाड़े गूँज रहे थे और तुरही बज रही थी। चारण कवि वीर वेशभूषा मे सजे-धजे, रणरग मे रगे, लाल-लाल लोचन लिए, वीर वाणी मे वीरो की वीरता का विचित्र वर्णन कर रहे थे। वे सूरमाओ को ललकार रहे थे, देश के लिए बलि होने को उत्साहित कर रहे थे और कायरो को माँ के दूध स्मरण दिलाकर पत्नी की लज्जा का भान कराकर वापस मैदान मे ला रहे थे चारणो की युगवाणी सुनकर कायरो को वीरत्व चढ रहा था और वे बड़े-बड़े वीरो मे जूझ रहे थे।

इस युद्ध मे स्वय महाराणा रायमल भी उपस्थित था। यद्यपि उसके पास थोडी-सी सेना थी, फिर भी वह लोहा ले रहा था।

उस दिन पृथ्वीराज युद्धक्षेत्र मे उपस्थित नही था। वह कुम्भलगढ मे था, इसलिए सूरजमल की सेना निरन्तर आगे बढती गई। यहाँ तक कि उसकी विजय-वाहिनी गम्भीरी नदी के तट पर तलवारें चम काने लगी।

महाराणा रायमल बडी वीरता से लड़े। परन्तु लडते-लडते बेसुध हो गए। उनके शरीर से बहुत रक्त बह चुका था।

सध्या झुक आई थी। दोनो मे-से किसी पक्ष की विजय अभी निश्चित नहीं थी। सूरजमल सिर्फ आगे बढा था और इस समय जहाँ वह खड़ा था, वहाँ गम्भीरी नदी के निर्मल जल म झाँकते हुए अपराजेय दुर्गराज चित्तौड के उत्तुग प्राचीर उसे चुनौती दे रहे थे।

सूरज ढलने से पहले कुम्भलगढ की दिशा से आने वाले, बिजली की गति से दौडने वाले, एक हजार घोडो के खुरो से आकाश का सूरज छिप गया।

यह वीर राजकुमार पृथ्वीराज की सेना थी। दूर से उसने अपने पिता की दुर्दशा देखी और वह क्रुद्ध कार्त्तिकेय-सा शत्रु की सेना पर टूट पड़ा।

हारजीत के पासे, लडाई की शतरज के मैदान म जल्दी-जल्दी पलटने लगे।

कुमार पृथ्वीराज घिर गया। वह बहुत घायल हो गया। सूरजमल को भी कई घाव लगे। सारगदेव का सारा शरीर लहू से लाल था।

और तब वैसा ही लाल-लाल सूरज ढलकर क्षितिजो के पार छिप गया।

युद्ध ब द हो गया।

: २३ :

पूनम की सगाई के लिए बाहर से कई मेहमान आए।

पिछले दिनों साँगा ने प्रयत्नपूर्वक भेड़ों को भलीभाँति रखना चाहा, परन्तु रख न सका। एक राजकुमार म गडरिए के संस्कार कहाँ से आए ? संस्कार यदि न हो तो मनुष्य कमबल से भी सिद्धि प्राप्त कर सकता है परन्तु साँगा भेड़ों को दिन भर गिनते रहकर भी शाम को पूरी भेड़ें लौटाकर न ला सकता था।

रोज एक दो, चार पाँच भेड़ें खो जाती। जिस दिन गडरिया बाहर होता और पूनम ही सारे कामों की देखरेख करती उस दिन तो वह भेड़ों की कमी को हँसकर टाल देती और साँगा को चिढ़ाती—

"भेड़ें चराना, राज करने से भी कठिन है।

बेचारी उस भोली वनबाला को क्या पता था कि यह व्यक्ति सचमुच राज्य करने के लिए पैदा हुआ है ?

'कल से तुम रसोई सँभालो, मैं भेड़ें चराने जाऊँगी।"

निदान यही निश्चित हुआ।

गडरिए को भेड़ों की दिनोदिन घटती हुई संख्या देखकर बहुत दुःख हुआ। उसने अपने जीवन में आज तक एक भी भेड़ नहीं खोई थी। अब यदि वह अपने किसानों से कहे कि अमुक-अमुक भेड़ गायब

हो गई तो वे कहेंगे तो कुछ नहीं, किन्तु अपनी हानि पर दुःखी होंगे और इस तरह धीरे-धीरे बूढ़े गडरिए का विश्वास उठ जाएगा।

इस सोच विचार के परिणाम में साँगा बाजरे की मोटी रोटियाँ सेंकने लगा और पूनम गाय भैंस और भेड़ लेकर जंगल में जाने लगी।

लेकिन साँगा रोटियाँ भी न सेंक सका। या तो वे कच्ची रहतीं या जल जातीं। यदि उनकी किनारियाँ पक जातीं तो बीच का भाग कच्चा रह जाता और यदि बीच का भाग सौभाग्य से पक जाता तो किनारियाँ अवश्य जलकर काली पड़ जातीं।

यह अवस्था तब बहुत विकट बन गई, जब गडरिए के घर मेहमान आए। साँगा के हाथ की रोटियाँ खाकर उनके होश गुम हो गए! यदि वे अपने रसोइए की पहचान लेते तो भय के मारे भूख जाते परन्तु गडरिए, गडरियों के बीच में ही खुश रह सकते हैं और राजकुमार राजकुमारों में ही शोभा देता है।

दूसरी साँझ, गडरिए के लौटते ही मेहमानों ने सम्मिलित रूप से रसोइए की शिकायत की। पूनम को दुःख हुआ। एक भाई है वह भी दुर्भाग्य में घिरा हुआ। गडरियों में समझ कहाँ ? सहनशीलता कहाँ ? ये तो भाई को निकाल ही देंगे।

यही हुआ।

बूढ़े गडरिए ने साँगा को दिया-हुआ कम्बल छीन लिया और अपने मेहमानों की हँसी के बीच उसे धक्का देकर निकाल दिया।

साँगा का सूरवीरी रक्त उबल कर पूरे ज्वार पर आ गया किन्तु दूसरे ही क्षण अपने पहचाने जाने का भेद भी उभर कर सामने आया। उसने सोचा, यदि उसका अज्ञातवास टूट जाएगा तो मेवाड़ की भूमि बन्धु विग्रह से भस्म हो जाएगी। भाई की तलवार, भाई के कण्ठ पर नागिन की तरह लहराएगी और धरती से आकाश की तरफ रक्त के जलते हुए फव्वारे छूटेंगे।

वह चुपचाप सिर झुकाए चला गया।

पाण्डवों ने अज्ञातवास में अपमान के दुर्दिन नहीं देखे ? वनवास में

राम को कौनसा कष्ट नहीं हुआ ? लेकिन राम ने चाहा, भाई-भाई में विरोध की होलियाँ नहीं जलें और पाण्डवों ने कौरवों से छिपकर रहना स्वीकार किया परन्तु अपनी शक्तियाँ संगठन टूटने न दिया। एक गुरु के शिष्य, एवं पिता के पुत्र, एक माँ के बेटे इतिहास और पुराण साक्षी हैं, परस्पर लड़े और मिट गए।

मिटना साँगा का स्वभाव नहीं है। न मिटने के लिए वह भारी से भारी विपदा झेलने को तैयार है।

वह अनजानी दिशा में भूखा ही जा रहा था। रात का अँधेरा घिर आया था और वनों की भयानकता आकार ग्रहण करने लग गई थी।

अपने पीछे उसे किसी की दौड़ती हुई पगध्वनि सुनाई दी। पहले तो वह नहीं रुका, लेकिन फिर रुक गया। उसने मुड़कर देखा—पूनम थी। दौड़ते-दौड़ते साँस फूल गई थी। उसने काला कम्बल आगे बढ़ाया। साँगा को कुछ नजर न आया। कहने लगी—

"भैया, हमें क्षमा करना, हम गँवार गड़रिए हैं और तुम ...."
वह रुक गई।

पूनम का स्वर विचित्र है। आज उसमें एक अनोखा परिवर्तन आ गया है।

"और अपनी यह अँगूठी भी लो। आले में भूल गए थे।"

साँगा ने अँगूठी ले ली। पूनम ने कम्बल उसके कँधे पर डाल दिया। और बोली—

"जाती हूँ। मुझे जल्दी लौटना चाहिए। तुम्हारी ये जरूरी चीजें तुम्हें देने आई थी, और यह कहने आई थी कि अब राजगद्दी पर जब विराजमान् हो-ओ, तब अपनी इस गरीब बहन को न भूलना और तब भूल भी जाओ तो चिन्ता नहीं किन्तु अपने विवाह के समय अवश्य याद रखना। एक बार राजमहल में अपनी रानी-भाभी को देखकर, मुझे बहुत-बहुत खुशी होगी।

"पूनम, पागल हो गई है ?"

"क्यों ?"

"मैं एक साधारण आदमी हूँ। कहाँ राजगद्दी और कहाँ राजमहल ?"

"तो फिर भैया, इस अँगूठी पर क्या लिखा है—राजकुमार संग्रामसिंह !"

"तू क्या पढ़ना जानती है ?"

"नहीं, मैं नहीं जानती, मगर बमभोले बामन की बेटी बेला तो जानती है। उसी ने पढ़कर बताया है।"

"हाँ, यह अँगूठी मुझे राजकुमार ने दी थी।"

"तो, मैं यह मान लूँ कि मेरा भाई झूठ बोलता है। क्योंकि, उसे बहन पर विश्वास नहीं है !"

"पूनम !" उस अँधेरे में भी राजकुमार संग्रामसिंह गडरिए की इस इकलौती लड़की का गोरा चेहरा देखता रह गया ! इस लड़की का अनिंद्य स्नेह राजकन्याओं को कहीं पीछे छोड़ देता था, क्योंकि जहाँ यह स्वार्थ से परे थी, वे स्वार्थ की पुतलियाँ थीं। साँगा ने कहा—

"पूनम, सचमुच मैं राजकुमार हूँ, परन्तु भाई भाई के वैर को टालने के लिए वन में भटक रहा हूँ।'

"तो पहले झूठ क्या बोले थे ?'

"तुमसे चुहल करने के लिए।'

"भैया, मैं किसी से नहीं कहूँगी। तुम निर्भय होकर यात्रा करो। यहाँ से सीधे पूरब की ओर आगे बढ़ना, उत्तर की पगडंडिया से बचते रहना वे भयानक वनों की ओर जाती हैं। आगे जाने पर तुम्हें एक गाँव मिलेगा जहाँ करमचन्द मेसरी रहता है। उसका बड़ा काम-काज है। तुम्हें उसके यहाँ जरूर काम मिल जाएगा।"

और भाई की बलाओं को अपने सिर लेती हुई बहन की आँखें आँसुओं से भरकर बहने लगीं।

दोनों गले मिले।

फिर सांगा जल्दी-जल्दी पूरब की तरफ चलने लगा।

पूनम विपरीत दिशा में भारी पग, धीमे धीमे लौट गई।

सितारों की भेड़ों का रखवाला गडरिया चांद आकाश के चरागाहों में निकल आया था। सांगा ने कम्बल ओढ़कर लाठी कंधे पर रख ली।

कई दिन की यात्रा के पश्चात्, सांगा आमेर के राजा पृथ्वीराज के दरबार में आ पहुंचा। पृथ्वीराज बड़ा कुशल और अनुभवी योद्धा था। उसके पास वह निगाह थी, जो आदमी को पहचान लेती है। उसकी इस अचूक निगाह से सांगा का स्वरूप और सामर्थ्य छिपा न रहा और उसे अपनी सेना में उसने रख लिया—

"नौजवान, तुम अवश्य किसी अच्छे वंश के हो, यदि तुमने अपने कर्तव्यपालन के साथ-साथ स्वामिभक्ति दिखाई तो हम तुम्हें और भी अच्छा पद देंगे।"

लेकिन आमेर का राजा यह नहीं जानता था कि यह नौजवान और कोई नहीं, चित्तौड़ का राजकुमार संग्रामसिंह है और एक दिन आमेर का राजा इसकी कृपा-दृष्टि की कामना में दिन भर प्रतीक्षा करेगा। सेना में सांगा को अपनी स्वामिभक्ति और अपना जौहर दिखाने के कई अवसर मिले। धीरे धीरे उसकी पदवृद्धि होती गई और एक दिन ऐसा आया जब पृथ्वीराज ने उसे अपने निजी प्रासाद में रख लिया—

'अब तुम मेरे पास रहकर रात्रि में मेरे शयन-कक्ष के चारों ओर की सुरक्षा का प्रबन्ध करो।'

"जो आज्ञा।" सांगा ने आदेश स्वीकार किया।

उस दिन के बाद सांगा ने आमेर के राजा के शयनकक्ष की सुरक्षा का प्रबन्ध कार्य तत्परतापूर्वक संभाल लिया।

एक दिन की बात—

वर्षा काल था। अंधकारमयी रात्रि में घनघोर मेघ गरज-तरज रहे थे। आमेर की मरुभूमि में ऐसे अवसर यदा-कदा ही आते हैं, जब पावस ऋतु में आकाश घने मेघों से अपने रूप को संवार कर, बरस

"क्यों ?"

"मैं एक साधारण आदमी हूँ। कहाँ राजगद्दी और कहाँ राजमहल ?"

"तो फिर भैया, इस अँगूठी पर क्या लिखा है—राजकुमार संग्रामसिंह !"

"तू क्या पढ़ना जानती है ?"

"नहीं, मैं नहीं जानती, मगर बमभोले बामन की बेटी बेला तो जानती है। उसी ने पढ़कर बताया है।"

'हाँ, यह अँगूठी मुझे राजकुमार ने दी थी।"

"तो, मैं यह मान लूँ कि मेरा भाई झूठ बोलता है। क्योंकि, उसे बहन पर विश्वास नहीं है।"

"पूनम !" उस अँधेरे में भी राजकुमार संग्रामसिंह गडरिए की इस इकलौती लड़की का गोरा चेहरा देखता रह गया ! इस लड़की का अनिंद्य स्नेह राजकन्याओं को कहीं पीछे छोड़ देता था, क्योंकि जहाँ यह स्वार्थ से परे थी, वे स्वार्थ की पुतलियाँ थीं। साँगा ने कहा—

"पूनम, सचमुच मैं राजकुमार हूँ, परन्तु भाई भाई के वैर को टालने के लिए वन में भटक रहा हूँ।'

"तो पहले झूठ क्यों बोले थे ?"

"तुझसे चुहल करने के लिए।'

"भैया, मैं किसी से नहीं कहूँगी। तुम निर्भय होकर यात्रा करो। यहाँ से सीधे पूरब की ओर आगे बढ़ना, उत्तर की पगडंडियों से बचते रहना वे भयानक वनों की ओर जाती हैं। आगे जाने पर तुम्हें एक गाँव मिलेगा जहाँ करमचन्द मेसरी रहता है। उसका बड़ा काम-काज है। तुम्हें उसके वहाँ जरूर काम मिल जाएगा।"

और भाई की बलाओं को अपने सिर लेती हुई बहन की आँखें आँसुओं से भरकर बहने लगीं।

दोनों गले मिले।

फिर सांगा जल्दी-जल्दी पूरब की तरफ चलने लगा।

पूनम विपरीत दिशा में भारी पग, धीमे धीमे लौट गई।

सितारों की भेड़ों का रखवाला गडरिया चांद आकाश के चरागाह में निकल आया था। सांगा ने कम्बल ओढ़कर लाठी कंधे पर रख ली।

कई दिन की यात्रा के पश्चात् सांगा आमेर के राजा पृथ्वीराज के दरबार में जा पहुँचा। पृथ्वीराज बड़ा कुशल और अनुभवी योद्धा था। उसके पास वह निगाह थी, जो आदमी की पहचान करती है। उसकी इस अचूक निगाह से सांगा का स्वरूप और सामर्थ्य छिपा न रहा और उसे अपनी सेना में उसने रख लिया—

"नौजवान, तुम अवश्य किसी अच्छे वंश के हो, यदि तुमने अपने कर्तव्यपालन के साथ-साथ स्वामिभक्ति दिखाई तो हम तुम्हें और भी अच्छा पद देंगे।"

लेकिन आमेर का राजा यह नहीं जानता था कि यह नौजवान और कोई नहीं, चित्तौड़ का राजकुमार संग्रामसिंह है और एक दिन आमेर का राजा इसकी कृपा-दृष्टि की कामना में दिन भर प्रतीक्षा करेगा। सेना में सांगा को अपनी स्वामि भक्ति और अपना जौहर दिखाने के कई अवसर मिले। धीरे धीरे उसकी पदवृद्धि होती गई और एक दिन ऐसा आया जब पृथ्वीराज ने उसे अपने निजी प्रासाद में रख लिया—

'अब तुम मेरे पास रहकर रात्रि में मेरे शयन-कक्ष के चारों ओर की सुरक्षा का प्रबन्ध करो।'

'जो आज्ञा।' सांगा ने आदेश स्वीकार किया।

उस दिन के बाद सांगा ने आमेर के राजा के शयनकक्ष की सुरक्षा का प्रबन्ध कार्य तत्परतापूर्वक सँभाल लिया।

एक दिन की बात—

वर्षा काल था। अंधकारमयी रात्रि में घनघोर मेघ गरज-तरज रहे थे। आमेर की मरुभूमि में ऐसे अवसर यदा-कदा ही आते हैं, जब पावस ऋतु में आकाश घने मेघों से अपने रूप को सँवार कर, बरस

पढने को मातुल दिखाई देता हो। वहाँ तो सदैव धनिक के मन की तरह आकाश भी कृपणता धारण किए रहता है। कभी बूंद-बूंद बरस जाता है। यह नहीं कि धाराधर शत-शत धवल धाराओं में धीरे-धीरे धरती पर उतर आए जहाँ जैसी प्रकृति होती है, वहाँ वैसी ही मानव प्रकृति बन जाती है।

आमेर का राजा अपने शयनकक्ष में था। रानी जाग रही थी। बोली—

'शायद अब वर्षा बंद हो चुकी है।

'नहीं, अब भी हो रही है।

अच्छा, तो आओ हार-जीत हो जाए। रानी ने हाथ उठाया। राजा ने रानी के मेंहदी मण्डित हाथ पर अपना हाथ रख दिया। दोनों वचनबद्ध थे। रानी कहती थी वर्षा बंद हो गई। राजा का अनुमान था—बन्द नहीं हुई है। आमेर के राजसी-कक्ष में मना बाहर की प्रकृति का अनुमान बराकर लग सकता था जहाँ सर्दी-गर्मी और वर्षा के प्रकोप की तनिक भी पहुँच नहीं थी। यदि वनवासी कुटीर में होते तो उन्हें यह विदित होता कि वर्षा का आतंक कितना भयानक है और शीत का प्रकोप कितना भयकर है और गर्मी में कैसे झुलसा जाता है। किन्तु किसी राजा ने कभी अपनी प्रजा के दुःख का प्रत्यक्ष अनुभव किया ही नहीं।

बात यह थी कि जब मेह बरसने लगा, तब राजा के शयन-कक्ष के ऊपर के छोटे-से भाग में पानी चू रहा था और उससे एक विचित्र ध्वनि उठ रही थी। इस ध्वनि को पहरे पर खडे सांगा ने सुना। सोचा कि यदि यह आवाज राजा के कान तक पहुँची तो उसकी नींद खुल जाएगी और उसके विश्राम में बाधा पडेगी। यह सोचकर उसने अपने घोडे की घास फूस से उस स्थान को ढँक दिया जहाँ पर पानी चू रहा था। और रानी जो जग रही थी उसे यह ज्ञात न था कि सांगा के घास रख देने के कारण पानी चूने की आवाज बंद हो गई है और वह समझ रही है कि वर्षा रुक गई है। इसलिए उसने हार-जीत का दाँव लगाया।

राजा के शर्त स्वीकार करने पर रानी ने अपनी दासी झालर को बुलाया—

"झालर, जा देखकर आ, पानी बरस रहा है या बंद हो गया है ? पहले ऊपर छत पर कहीं पानी टपकने की आवाज आती थी, अब बंद हो गई है।"

दासी चली गई। राजा सोचता रहा, मैं जीतूंगा।

रानी का विश्वास था, विजय उसी की होगी।

दोनों इसी तरह मन-ही-मन खुश हो रहे थे कि झालर लौट आई। उसने प्रणाम कर निवेदन किया—

'अन्नदाता ! पानी तो बहुत जोर से बरस रहा है। अपने मरुदेश में ऐसी वर्षा पिछले दस वर्षों में देखी-नहीं, सुनी नहीं। छत पर जहाँ पानी टपक रहा है, पहरेवाले राजपूत सरदार ने घास रख दिया है। मैंने उसका कारण पूछा तो उसने बतलाया कि घास न रखता तो भय था, पानी टपकने की ध्वनि से अन्नदाता के विश्राम में बाधा पहुँचती।"

राजा-रानी चकित रह गए।

दूसरी ओर, राजा ने सांगा को अपने निजी-कक्ष में बुलाकर कहा—

"*तुम अवश्य किसी उच्च राजवंश के हो। मैंने पहले भी यही बात* कही थी। रात को मैंने तुम्हारी चतुराई देखी। रानीजी ने भी तुम्हारी बुद्धि की प्रशंसा की। अब तुम अपना सही-सही परिचय दो। हम इतना ही चाहते हैं कि अनजाने में कहीं तुम्हारा अपमान न हो।"

राजा के जोर देने पर सांगा को अपना सही परिचय देना ही पड़ा। राजा परिचय पाकर बड़ा चकित हुआ, उसने और सम्मान से रखा।

सांगा के विभाग में जो दूसरे सैनिक थे, उन्होंने इस प्रकार सांगा की पदवृद्धि देखी तो वे ईर्ष्या से जलने लगे और दिनोदिन नए-नए षड्यन्त्र रचने लगे। सांगा इस मामले में बड़ा कमजोर था—वह न तो षड्यन्त्र रच सकता था, न ही प्रपंच का प्रचार कर सकता था और न ही किसी को धोखा दे सकता था। अतएव षड्यन्त्र, प्रपंच और धोखे

पड़ने को व्याकुल दिखाई देता हो। वहाँ तो सदैव धनिक के मन की तरह आकाश भी कृपणता धारण किए रहता है। कभी बूँद-बूँद बरस जाता है। यह नहीं कि धारापर तन-तान भवन धाराओं में धीरे-धीरे धरती पर उतर आए जहाँ जैसी प्रकृति होती है, वहाँ वैसी ही मानव-प्रकृति बन जाती है।

आमेर का राजा भवन शयनकक्ष में था। रानी जाग रही थी। बोली—

"शायद अब वर्षा बंद हो चुकी है।"

'नहीं, अब भी हो रही है।'

'अच्छा, तो आओ हार-जीत हो जाए।" रानी ने हाथ उठाया। राजा ने रानी के मेंहँदी मण्डित हाथ पर अपना हाथ रख दिया। दोनों वचनबद्ध थे। रानी कहती थी, वर्षा बंद हो गई। राजा का अनुमान था—बन्द नहीं हुई है। आमर के राजमी-कक्ष में अपना बाहर की प्रकृति का अनुमान बाहर लगा सकना था, जहाँ सर्दी-गर्मी और वर्षा के प्रकोप की तनिक भी पहुँच नहीं थी। यदि वनवासी कुटीर में होते तो उन्हें यह विदित होता कि वर्षा का आतंक कितना भयानक है और शीत का प्रकोप कितना भयंकर है और गर्मी में कैसे झुलसा जाता है। किन्तु किसी राजा ने कभी अपनी प्रजा के दुःख का प्रत्यक्ष अनुभव किया ही नहीं।

बात यह थी कि जब मेह बरसने लगा, तब राजा के शयन-कक्ष के ऊपर के छोटे-से भाग में पानी चू रहा था और उससे एक विचित्र ध्वनि उठ रही थी। इस ध्वनि को पहरे पर खड़े सांगा ने सुना। सोचा कि यदि यह आवाज राजा के कान तक पहुँची तो उसकी नींद खुल जाएगी और उसके विश्राम में बाधा पड़ेगी। यह सोचकर उसने अपने घोड़े की घास-फूस से उस स्थान को ढँक दिया, जहाँ पर पानी चू रहा था। और रानी जो जग रही थी, उसे यह ज्ञान न था कि सांगा के घास रख देने के कारण पानी चूने की आवाज बंद हो गई है और वह समझ रही है कि वर्षा रुक गई है। इसलिए उसने हार-जीत का दाँव लगाया।

राजा के शर्त स्वीकार करने पर रानी ने अपनी दासी भालर को बुलाया—

"भालर, जा देखकर आ, पानी बरस रहा है या बंद हो गया है? पहले ऊपर छत पर कहीं पानी टपकने की आवाज आती थी, अब बंद हो गई है।"

दासी चली गई। राजा सोचता रहा, मैं जीतूंगा।

रानी का विश्वास था, विजय उसी की होगी।

दोनों इसी तरह मन-ही-मन खुश हो रहे थे कि भालर लौट आई। उसने प्रधान कर निवेदन किया—

'अन्नदाता! पानी तो बहुत जोर से बरस रहा है। अपने मरुदेश में ऐसी वर्षा पिछले दस वर्षों में देखी-नहीं, सुनी नहीं। छत पर जहाँ पानी टपक रहा है, पहरेवाले राजपूत सरदार ने घास रख दिया है। मैंने उसका कारण पूछा तो उसने बतलाया कि घास न रखता तो भय था, पानी टपकने की ध्वनि से अन्नदाता के विश्राम में बाधा पहुँचती।"

राजा-रानी चकित रह गए।

दूसरी ओर, राजा ने सांगा को अपने निजी-कक्ष में बुलाकर कहा—

"तुम अवश्य किसी उच्च राजवंश के हो। मैंने पहले भी यही बात कही थी। रात को मैंने तुम्हारी चतुराई देखी। रानीजी ने भी तुम्हारी बुद्धि की प्रशंसा की। अब तुम अपना सही-सही परिचय दो। हम इतना ही चाहते हैं कि अनजाने में कहीं तुम्हारा अपमान न हो।"

राजा के जोर देने पर सांगा को अपना सही परिचय देना ही पड़ा। राजा परिचय पाकर बड़ा चकित हुआ, उसने और सम्मान से रखा।

सांगा के विभाग में जो दूसरे सैनिक थे, उन्होंने इस प्रकार सांगा की पदवृद्धि देखी तो वे ईर्ष्या से जलने लगे और दिनोदिन नए-नए षड्यन्त्र रचने लगे। सांगा इस मामले में बड़ा कमजोर था—वह न तो षड्यन्त्र रच सकता था, न ही प्रपंच का प्रचार कर सकता था और न ही किसी को धोखा दे सकता था। अतएव षड्यन्त्र, प्रपंच और धोखे

से भरे हुए संसार में साँगा अभागा ही था, क्योंकि इन तीनों के प्रयोग के बिना, सांसारिक स्वार्थों की पूर्ति नहीं होती और न ही तात्कालिक पदोन्नति होती है।

परेशान होकर साँगा ने आमेर छोड़ने का निश्चय किया। उसने सोचा कि अब और उसके आमेर में रहने से उच्च अधिकारियों में विद्वेष ही बढ़ेगा और इससे उसके शरणदाता की हानि ही होगी। अपने उपकारी के प्रति साँगा अपकार कैसे कर सकता था? यह उसकी परम्परा, स्वामिभक्ति और आत्मा के विपरीत था।

वह चुपचाप आमेर से चल दिया।

राजा की दी हुई सारी बहुमूल्य चीजें उसने मालर के हाथ लौटा दी और बहुत ही विनम्र और प्रेम भरे शब्दों में धन्यवाद का पत्र लिखकर उसे दे दिया।

एक मजबूत और तेज घोड़े पर एकदम सादे कपड़े पहने साँगा, जिस दिशा की ओर घोड़ा बढ़ गया, उसी दिशा में चला गया।

अपनी पुरानी परिपाटी के अनुरूप वह दिन में किसी पेड़ के नीचे बैठा रहता अथवा किसी देवालय में अपना समय काटता और रात्रि में मजे से घोड़ा दौड़ा देता।

एक रात घने बियाबान जंगल में वह जा रहा था कि अचानक कुछ डाकुओं ने उसे घेर लिया। पास में कुछ था नहीं। ले-देकर वही अँगूठी थी, जिस पर उसका नाम लिखा था। साँगा ने पहले वह अँगूठी घोड़े के अयाल में छिपाकर बाँध दी थी।

डाकुओं को साँगा से जब कुछ न मिला तो उन्होंने उसका डीलडौल देखकर उसे अपने मुखिया के दरबार में ले जाना उचित समझा।

साँगा के मन में भय तो था नहीं। वह चुपचाप डाकुओं के साथ हो लिया। उसके मन में नया कौतूहल था।

इस गिरोह का अगुआ था जयसिंह बालिया। उसने साँगा की शक्ति पहचानने में गलती नहीं की है, यह शीघ्र ही मुखिया के निर्णय से ज्ञात हो गया।

मुखिया करमचन्द मेगरी था। दूर-दूर तक डाके डालना उसका काम था और इस काम के परिणामस्वरूप वह बहुत धनवान हो गया था। लोग उसका नाम सुनकर ही थरति थे। कई बड़े-बड़े सामन्त और अधिकारी भी उसे देखना अपने हित मे प्रतिकूल समझते थे।

करमचन्द ने सांगा को बहुतेरा समझाया—

"अन्यायी की सम्पदा छीन लेने में कोई हानि नहीं है और छीनकर हम अपने ही काम मे तो नहीं लेते। कई मरथिया का उदर-पोषण उससे होता है और कई गरीब विधवाओ और दरिद्र ब्राह्मणा को सहायता मिलती है। अपने लिए नही, समाज के लिए हमारा यह कर्म है—अब दुनियाँ इसे डाका कहे, लूट कहे, चाहे जो कहे। बड़े-बड़े राजा दूसरे की जमीन बलपूर्वक छीन लेते हैं क्या वह डाका नहीं है ? उसमे क्या हिंसा नहीं होती ? और वे तो अच्छे-बुरे का भी भेद नहीं रखते। फिर, केवल धन का हरण ही लूट और डाका क्यो कहा जाता है ?

सांगा ने उत्तर दिया—

"आपका विचार अपनी दृष्टि मे सत्य भी हो सकता है परन्तु मेरी आत्मा गवाह नहीं देती कि मैं इस कार्य म आपका साथ दूँ।"

'सोच लो ! इस क्षेत्र मे तुम्हारा भाग्य और भविष्य चमक उठेगा। तुम बड़े धनवान् और साहसी नवयुवा प्रतीत होते हो और यदि मरा अनुमान गलत नहीं है तो अवश्य तुम इस ससार मे सताए हुए-से लगते हो, हमारे साथ रहकर, तुम्हें अपने शत्रुओ से प्रतिशोध लेने का भरपूर अवसर मिलेगा। प्रतिशोध के बिना शक्ति को शान्ति नही मिलती और न ही उसे सुगति प्राप्त होती है।"

मुखिया इतना कह कर मौन रह गया।

सांगा को सोच विचार की अवधि मिल गई।

चुप-चाप वह डाकुओ की लीलाएँ देखने लगा।

अजमेर प्रान्तर के गहन कान्तारो, घनी घाटियों और ऊँची पहाडी चोटियो के बीच, इधर से उधर भटकते हुए सांगा को कभी अपने

संरक्षक काका सूरजमल की याद आती। कभी अपने भ्राता सारंगदेव की। कभी रूपनारायण के मन्दिर के अजिर में तलवार चमकाते हुए बीदा जैतमालोत की स्मृति आती! रूपनारायण के वृद्ध पुजारी, असिवाहिनी वह छबीली छायामूर्ति—एक-एक कर सभी अपना चित्र-विचित्र स्वरूप दिखाते!

दो पल के लिए साँगा का मन चित्तौड लौटने के लिए व्यग्र हो जाता, जहाँ वह अपने पिता के दर्शन करना चाहता था। उनके मधुर बोल सुनने का अभिलाषी था। बहन आनन्दी मोनियो की राखी लेकर आई होगी। और चित्तौड म दुर्ग मे, प्रासाद म, गम्भीरी नदी के तटवर्ती क्षेत्र म कितना परिवर्तन आया होगा।

उस परिवर्तन को एक बार अपनी आँखो से देखने के लिए देखकर हर्षित, रोमांचित होने के लिए साँगा का निष्कलुष तरुण मन बेचैन हो जाता और उसकी आँखो से दो बूँद ढुलक जाती!—चित्तौड लौटने मे सिवाय गृह-कलह के और कुछ न था। शस्त्र उठाने में सिवाय गृह-युद्ध के और कुछ न था! कही कुछ न था!

'सहन करना होगा—सब कुछ सहन करना होगा। मनुष्य के धैर्य की परीक्षा लेने के बाद ही भाग्य और भगवान् उसे कुछ देता है।'—यही सोचकर वह अपने मन को समझाता और पुन अपने आस पास के वातावरण म खो जाता, जहाँ डाकू नित्य-नए तरीको से लूटमार के आयोजन करते! अकारण ही किसी की हत्या वहाँ साधारण बात थी। तनिक-सी धका पर राहगीर को कत्ल कर दिया जाता। फिर साँगा की देखती आँखो दस्यु अश्वारोही अँधेरी रातो मे बाहर निकल जाते और दीन-दरिद्र माताओ के कुटीरों में रुपया, पैसा और आभूषण फेंक जाते। लूटना और बाँटना यही, उनका आनन्द था। छीनना और देना—यही, उनका परितोष था। मानवीय परितोष की कोई परिभाषा कोई सीमा नही, वह बिंदु और सिन्धु की भाँति सीमित भी है और असीम भी!

उष्ण दोपहरी थी।

करमचन्द का दल अपनी यात्रा पर जा रहा था।

एक स्थान पर छाया देखकर, दल ने पडाव डाला। साँगा एक वटवृक्ष की शीतल छाया में लेट गया। उसके साथी—जयसिंह बालिया और जैमू 'दाल-बाटी की रसोई की तैयारी कर रहे थे। सिरहाने नागिन-सी तलवार धरे बडी-बडी मूँछोवाला, प्रत्यक्ष काल-सा करमचद, वही, समीप ही विश्राम कर रहा था।

अचानक करमचन्द की दृष्टि साँगा की ओर गई। पत्तों की जाली में-से सूरज की तेज किरणें उसके चेहरे को तपा रही थी। लेकिन अब सोए हुए साँगा के सिर पर एक भयकर विषधर नागराज ने अपने फन से छाया कर दी है और फन पर बैठकर खजन पक्षी उच्चस्वर से गा रहा है।

यह विचित्र दृश्य देखकर करमचन्द स्तब्ध रह गया!

उसने अपने जीवन में कई दृश्य देखे थे लेकिन ऐसा दृश्य आज पहली बार देख रहा था! उसने साँप और नाग तो कई देखे थे पर उन्हे फन फैला कर किसी राहगीर के सिर पर छाया करते नही देखा था! फिर साँप और छाया! वह तो तत्काल शिकार खेलता है!

पक्षियो के गीत भी उसने सुने थे। दिनरात वह वनो मे विचरण करता था, बहुत कुछ देखा था, परन्तु साँप के फन पर बैठे खजन को अपने गीत-स्वरो से वातावरण का रजन करते नही देखा था!

करमचन्द धीमे-धीमे उठा। उसने जैमू को बुलाया और पास के शिवालय के पुजारी, शकुन विचारक मारू को जल्द वहाँ लाने का आदेश दिया।

जैमू चला गया।

मारू कुछ ही क्षणो मे आ गया।

करमचन्द ने सकेत से उसे वही, अद्वितीय और अलौकिक दृश्य दिखाया।

देखकर शकुन-विचारक विस्मय मे पड गया। अपने जीवन में जिस दृश्य के दर्शन की कामना उसे थी, वह आज साकार सम्मुख प्रस्तुत था! उसने कई दृश्य देखे थे और कई बार भीषण से भीषण और

विचित्र भविष्य वाणियाँ की थीं परन्तु जैसे, वे सभी, मरणशील, साधारण और नगण्य व्यक्तियों के लिए थीं। आज वह भारत का जगमग देदीप्यमान, आलोकमय, अति विस्तीर्ण भावी प्रत्यक्ष देख रहा था।

उसे तन्मय देखकर, करमचन्द ने संकेत किया। वह इस भाग्यशाली नवयुवा का परिचय पाने को उत्सुक था।

हर्षवारि से परिपूर्ण विलोचनों से मारु ने करमचन्द की ओर देखा और पुन अपने दृश्य के दर्शन में लग गया।

सहसा वह रो पड़ा और उसके गद्गद कण्ठ से निकला—

"भारत-सम्राट्! भारत-सूर्य!! त्याग के देवता!!!"

कुछ समय तक सब शान्त रहे।

मारु ने आनन्द के अश्रु पोंछते हुए करमचन्द से कहा—

"सेतरीजी, यह नवयुवा अवश्य किसी उच्च कुल का है और भाग्य के फेर से, न्याय के अँधेरे से भटकता हुआ यहाँ आ गया है! जिस प्रकार आकाश की ओर फेंके गए ढेले का धरती पर आना निश्चित है, जिस प्रकार गुफा से निकले हुए सिंह का गर्जन निश्चित है, उसी प्रकार उसका सम्राट् होना निश्चित है,उसी प्रकार इसका चक्रवर्ती होना निश्चित है। इसके पुण्य प्रताप का प्रभाकर भारतीय इतिहास में प्रकाश की अपूर्व छटा छिटकाएगा।"

डाकू और अपराधी कहलाने वाले करमचन्द के मुँह से दो ही शब्द निकले—

'धन्य, धन्य!"

जयसिंह वालिया और जैमू विस्मयान्वित थे। दोनों हाथ जोड़कर मौन खड़े थे।

जैमू बोला—

"इन्हें भूख लगी होगी। सरदार की आज्ञा हो तो, जगाऊँ?"

"नहीं, नहीं! इन्हें सोने दो, थके हुए हैं।" मारु बोला।

अब मारु, करमचन्द, जैमू और जयसिंह वालिया चुपचाप बैठकर भारत-सम्राट् के जागने की प्रतीक्षा करने लगे।

जैमू और जयसिंह, दोनो परस्पर एक-दूसरे की ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे और आँखो ही आँखो में बात कर रहे थे कि अपने जिस नवयुवा साथी को उन्होंने कभी 'तू' से 'आप' नहीं कहा, वही सोने के सिंहासन पर विराजमान होगा और उन्हें चँवर डुलाने पड़ेंगे। कौन जाने हमें पाँच-दस गाँव की जागीर ही मिल जाए।

जैमू और जयसिंह के सकेत चलते रहे।

करमचन्द और मारू साँगा के पैरों के निकट बैठकर उसके और अपने भाग्य की विचित्रताओं पर विचार करते हुए, उसके निद्रामुक्त होने की राह देखते रहे!

विविध भविष्य वाणियाँ की थीं परन्तु जैसे, वे मर्मी, मरणशील, साधारण और नगण्य व्यक्तियों के लिए थीं। आज वह भारत का जगमग देदीप्यमान, आलोकमय, अति विस्तीर्ण भावी प्रत्यक्ष देख रहा था।

उस तन्मय देखकर, करमचन्द ने संकेत किया। वह इस भाग्यशाली नवयुवा का परिचय पाने को उत्सुक था।

हर्षवारि से परिपूर्ण विलोचनों से मारू ने करमचन्द की ओर देखा और पुन उसके दृश्य के दर्शन में लग गया।

सहसा वह रो पड़ा और उसके गद्‌गद कण्ठ से निकला—

"भारत-सम्राट्! भारत-सूर्य!! त्याग के देवता!!!"

कुछ समय तक सब शान्त रहे।

मारू न आनन्द के अश्रु पोंछते हुए करमचन्द से कहा—

"मिस्त्रीजी, यह नवयुवा अवश्य किसी उच्च कुल का है और भाग्य के फेर से, न्याय के अँधेरे से भटकता हुआ यहाँ आ गया है! जिस प्रकार आकाश की ओर फेंके गए ढेले का धरती पर आना निश्चित है, जिस प्रकार गुफा से निकले हुए सिंह का गर्जन निश्चित है, उसी प्रकार इसका सम्राट् होना निश्चित है, उसी प्रकार इसका चक्रवर्ती होना निश्चित है। इसके पुण्य प्रताप का प्रभाकर भारतीय इतिहास में प्रकाश की अपूर्व छटा छिटकाएगा।"

डाकू और अपराधी कहलाने वाले करमचन्द के मुँह से दो ही शब्द निकले—

"धन्य, धन्य!"

जयसिंह बानिया और जैमू विस्मयान्वित थे। दोनों हाथ जोड़कर मौन खड़े थे।

जैमू बोला—

"इन्हें भूख लगी होगी। सरदार की आज्ञा हो तो, जगाऊँ?"

"नहीं, नहीं! इन्हें सोने दो, थके हुए हैं।" मारू बोला।

अब मारू, करमचन्द, जैमू और जयसिंह बानिया चुपचाप बैठकर भारत-सम्राट् के जागने की प्रतीक्षा करने लगे।

जैमू और जयसिंह, दोनो परस्पर एक-दूसरे की ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे और आंखो ही आंखो मे बात कर रहे थे कि अपने जिस नवयुवा साथी को उन्होंने कभी 'तू' से 'आप' नहीं कहा, वही सोने के सिंहासन पर विराजमान होगा और उन्हें चँवर डुलाने पड़ेंगे। कौन जाने हमे पाँच-दस गाँव की जागीर ही मिल जाए।

जैमू और जयसिंह के संकेत चलते रहे।

करमचन्द और मारू साँगा के पैरो के निकट बैठकर उसके और अपने भाग्य की विचित्रताओ पर विचार करते हुए, उसके निद्रामुक्त होने की राह देखते रहे।

: २४ :

अस्ताचल की पहाड़ियों में टकराकर सिंदूरी सूरज गंभीरी नदी में गिरकर, डूब गया था।

युद्ध समाप्त नहीं हुआ था, सिर्फ बंद हो गया था। दोनों ओर की सेनाओं के खेमों में, दिन भर के मरण व्यापार के कोलाहल के पश्चात अब जीवन का कलरव मुखरित था।

दोनों ओर स्थान-स्थान पर छोटी-छोटी अंगीठियाँ जल रही थीं और अपनी अपनी रुचि की रसोई की तैयारियाँ चल रही थीं। स्वादिष्ट भोजन की आशा में मग्न चारण और भाट वीरों की वीरता का बखान कर रहे थे।

घायल सूरमाओं की मरहमपट्टी हो रही थी। शासन की ओर से उन्हें पारितोषिक दिए जाने की घोषणा वृद्ध और श्वेतकेशी आमात्यगण कर रहे थे।

अम्बर की अटारी पर चन्द्रवंशसर्वस्व चंद्रमा का पदार्पण हो चुका था।

महारावत सूरजमल अपने डेरे में लेटा था। उसने अनेक घावों पर पट्टियाँ बँधी थीं। अभी कुछ ही समय पूर्व, राज्य चिकित्सक ने उसके कई घावों को सीकर अलभ्य औषधियों का लेपन कर दिया था। उसके अगणित टाँके कसक रहे थे। अपनी कल्पना में वह दिवस भर के,

अपने वीरो के, प्रचड कर्म का लेखा-जोखा लगा रहा था, इस विचार कल्पना मे उसकी अपनी वेदना विस्मृत हो गई थी।

सहसा सशस्त्र एक सेवक भीतर आया—

"अन्नदाता।"

"सूरजमल ने आँखें खोली। बडी-बडी, लाल-लाल आँखें देखकर सदैव समीप रहने वाला सेवक भी सहम गया। उन आँखो मे दुर्जेय युद्धो को अपने पराक्रम से पददलित कर विजय का वरण करने वाले वीरोत्तम वीर की प्रतिहिंसा की लालिमा लहक रही थी।

"अन्नदाता के विश्राम मे विघ्न पहुँचाने के कारण सेवक क्षमा का *प्रार्थी है, किंतु कर्त्तव्य की प्रेरणा ने मुझे यहाँ प्रस्तुत होने को बाध्य* किया है। स्वामि, आयुष्मान् महाराजकुमार पृथ्वीराज खेमे के बाहर खडे आपके दर्शन की आज्ञा चाहते हैं।"

"अरे तू होश मे है, पागल।"

"अन्नदाता की जय हो, राजकुमार अकेले ही पधारे हैं। घोडे पर सवार हैं और आदेश की प्रतीक्षा मे हैं।"

"*उन्हे सादर लिवा लाओ।*"

ज्योही पृथ्वीराज ने शिविर में प्रवेश किया, सूरजमल उसके स्वागत के लिए बिछौने से उठ खडे हुए। अपने भतीजे से गले मिलते हुए महारावत ने कहा—

"*वत्स, तुम्हारा स्वागत करता हूँ।*"

"अरे, रे! काकाजी, आप खडे क्यो हो गए? आपके टाँके टूट गए हैं, देखिए फिर से घावो से रक्त बहने लगा है।" इतना कहकर पृथ्वीराज ने सूरजमल को अपनी भुजाओ मे भरकर, धीरे-धीरे बिछौने पर लिटा दिया। वैद्यराज दौडकर आए और फिर से घावो की देख रेख करने लगे।

पृथ्वीराज ने पूछा—

"काकाजी, आप प्रसन्न तो हैं?"

सूरजमल ने बहुत ही मधुर स्वर मे उत्तर दिया—

: २४ :

अस्ताचल की पहाड़ियों से टकराकर सिंदूरी सूरज गंभीरी नदी में गिरकर, डूब गया था।

युद्ध समाप्त नहीं हुआ था, सिर्फ बंद हो गया था। दोनों ओर की सेनाओं के खेमों में, दिन भर के मरण-व्यापार के कोलाहल के पश्चात् अब जीवन का कलरव मुखरित था।

दोनों ओर स्थान-स्थान पर छोटी-छोटी अंगीठियाँ जल रही थीं और अपनी अपनी रुचि की रसोई की तैयारियाँ चल रही थीं। स्वादिष्ट भोजन की आशा में मग्न चारण और भाट वीरों की वीरता का बखान कर रहे थे।

घायल सूरमाओं की मरहमपट्टी हो रही थी। शासन की ओर से उन्हें पारितोषिक दिए जाने की घोषणा वृद्ध और श्वेतकेशी आमात्यगण कर रहे थे।

अम्बर की अटारी पर चक्रवाकनवंशस्थ चंद्रमा का पदार्पण हो चुका था।

महारावल सूरजमल अपने डेरे में लेटा था। उसके अनेक घावों पर पट्टियाँ बँधी थीं। अभी कुछ ही समय पूर्व, राज्य चिकित्सकों ने उसके कई घावों को सीकर अलभ्य औषधियों का लेपन कर दिया था। उसके मर्माणित टाँके कसक रहे थे। अपनी कल्पना में वह दिवस भर के,

अपने वीरो के, प्रचड कर्म का लेखा-जोखा लगा रहा था, इस विचार कल्पना से उसकी अपनी वेदना विस्मृत हो गई थी।

अचानक सशस्त्र एक सेवक भीतर आया—

"अन्नदाता !"

"सूरजमल ने आँखें खोली। बडी-बडी, लाल लाल आँखें देखकर सदैव समीप रहने वाला सेवक भी सहम गया। उन आँखो मे दुर्जेय युद्धो को अपने पराक्रम से पददलित कर विजय का वरण करने वाले वीरोत्तम वीर की प्रतिहिंसा की लालिमा लहक रही थी।

"अन्नदाता के विश्राम मे विघ्न पहुँचाने के कारण सेवक क्षमा का प्रार्थी है, किंतु कर्त्तव्य की प्रेरणा ने मुझे यहाँ प्रस्तुत होने को बाध्य किया है। स्वामि, आयुष्मान् महाराजकुमार पृथ्वीराज खेमे के बाहर खडे आपके दर्शन की आज्ञा चाहते हैं।'

"अरे तू होश मे है, पागल !"

"अन्नदाता की जय हो, राजकुमार अकेले ही पधारे हैं। घोडे पर सवार हैं और आदेश की प्रतीक्षा में हैं।"

"उन्हें सादर लिवा लाओ।"

ज्योही पृथ्वीराज ने शिविर मे प्रवेश किया, सूरजमल उनके स्वागत के लिए बिछौने से उठ खडे हुए। अपने भतीजे से गले मिलते हुए महारावत ने कहा—

"वत्स, तुम्हारा स्वागत करता हूँ।"

"अरे, रे ! काकाजी, आप खडे क्यो हो गए ? आपके टाँके टूट गए हैं, देखिए फिर से घावो से रक्त बहने लगा है।" इतना कहकर पृथ्वीराज ने सूरजमल को अपनी भुजाओ मे भरकर, धीरे-धीरे बिछौने पर लिटा दिया। वैद्यराज दौडकर आए और फिर से घावो की देख रेख करने लगे।

पृथ्वीराज ने पूछा—

"काकाजी, आप प्रसन्न तो हैं ?"

सूरजमल ने बहुत ही मधुर स्वर मे उत्तर दिया—

: २४ :

अस्ताचल की पहाड़ियों से टकराकर सिंदूरी सूरज गंभीरी नदी में गिरकर, डूब गया था।

युद्ध समाप्त नहीं हुआ था, सिर्फ बंद हो गया था। दोनों ओर की सेनाओं के खेमों में, दिन भर के मरण-व्यापार के कोलाहल के पश्चात् अब जीवन का कलरव मुखरित था।

दोनों ओर स्थान-स्थान पर छोटी-छोटी अँगीठियाँ जल रही थीं और अपनी अपनी रुचि की रसोई की तैयारियाँ चल रही थीं। स्वादिष्ट भोजन की आशा में मग्न चारण और भाट वीरों की वीरता का बखान कर रहे थे।

घायल सूरमाओं की मरहमपट्टी हो रही थी। शासन की ओर से उन्हें पारितोषिक दिए जाने की घोषणा वृद्ध और श्वेतकेशी *अमात्यगण* कर रहे थे।

अम्बर की अटारी पर चन्द्रवाक्सवरक्त चन्द्रमा का पदार्पण हो चुका था।

महारावत सूरजमल अपने डेरे में लेटा था। उसके अनेक घावों पर पट्टियाँ बंधी थीं। अभी कुछ ही समय पूर्व, शल्य चिकित्सकों ने उसके कई घावों को सीकर अलभ्य औषधियों का लेपन कर दिया था। उसके अगणित टाँके कसक रहे थे। अपनी कल्पना में वह दिवस भर के,

'काकाजी, प्रणाम।'

"दीर्घायु हो महाराज कुमार! पान लेते जाओ, बेटा। यह पान बहुत स्वादिष्ट है।"

"धन्यवाद, काकाजी।" कहकर पृथ्वीराज ने पान का बीडा मुँह में दबाया और अपने विराट् अश्वराज को ऐड लगाकर हवा में उड गया।

दूसरे दिवस, प्रभात होते ही दोनो ओर की सेनाएँ धर्मक्षेत्र में आ डटी। गगन को गुँजायमान करने वाले 'हर-हर महादेव' और 'जय मेवाड' तथा 'हर हर महादेव' और 'जय कांठर' के नारो के साथ भाइयो की तलवारें भाइयो के ही कठ का रक्तपान करने लगी।

कुछ ही देर में भीषण रणरग जमा। वीर बढने लगे अधीर कटने लगे और कायर मैदान छोडकर भागने लगे। परन्तु उन्हें, उच्च स्वर से पुकार कर, उनके सेनापति चिल्लाने लगे—

"मूढा, पलायध्वमितो न युद्धात्! मूर्खो, युद्ध भूमि से न भागो! जय होने पर जयलक्ष्मी का लाभ होगा और मरने पर अमर लक्ष्मी से मिलन होगा! मत भागो! जीने और मरने का अवसर केवल एक बार आता है!'

दोनो ओर के योद्धा अपनी-अपनी सेना की कीर्ति के लिए, शीश को हथेली पर रखकर, लड रहे थे। सूरजमल और सारगदेव अपने भीषण भाले की चोटो से शत्रु दल को निरन्तर पीछे हटा रहे थे। उडने वाला पृथ्वीराज स्वय आज अपनी तलवार उडा रहा था।

परन्तु पूर्वाकाश में सूर्य बादलो की ओट छिप गया था—अपने वशजो को परस्पर लडते देखकर। उसे खेद था कि वीर का वीर ही वैरी है! राजपूतो की अपराजेय शक्ति राजपूतो के हनन में ही लग रही है! भाई भाई के ही शोणित की पिपासा लेकर समर-क्षेत्र में उसे खोज रहा है।

रणागण देखकर भ्रम की प्रतीति होती थी—तमाल के विशाल तरुओ से सुशोभित विन्ध्य गिरिराज के मध्य में निकली हुई, गेरुआ

"कुमार, तुम्हारे शुभागमन से मेरा मन प्रसन्न है। तुम्हें देखने से मेरे घावों की पीड़ा दूर हो गई है। बेटा, तुम्हें गले लगाकर मुझे अपार आनन्द मिला है।"

"मैं आभारी हूँ।"

"वत्स अचानक आये ! मेरे भाग्यशाली भाई तो सकुशल हैं ? मेरे स्वामी, मेवाडपति का मेरे लिए क्या आदेश है ? क्या मेरी मेवाड माता का वैरी तुरुष्काधिपति बादशाह कुपित हुआ है ? मैं अभी उससे लोहा लेने को प्रस्तुत हूँ ! बेटा, कैसे आए ?'

'काकाजी, विश्व में जो वीर-जननी है वह तो केवल आपकी ही जननी है, जिसने सूरज को जन्म दिया है। यदि कोई जननी पुत्र जने तो, केवल आप-सा ही जने ! मैंने अभी ही महाराणाजी को पालकी में उठवाकर, डेरे पर पहुँचाया है। अभी मैंने उनके दर्शन नहीं किए हैं, पहले आपके दर्शन करने के लिए यहाँ आया हूँ।"

"कुमार, चिरंजीवी हो।"

"काकाजी, मुझे बहुत भूख लगी है। आपके पास भोजन की जो सामग्री हो मँगवाइए।"

तदनन्तर, सूरजमल ने, तुरन्त, भोजन का विशाल थाल लाने का आदेश दिया। पल भर में राजसी थाल सामने सजा दिया गया। काका भतीजे ने उस एक ही थाल में साथ-साथ भोजन किया। भोजन करते-करते पृथ्वीराज बोला—

"काकाजी, कल प्रातःकाल ही हम (मैं और आप) युद्ध का निर्णय कर देंगे।"

'बहुत अच्छा, कुमार, जल्दी पधारना।" सूरजमल ने मुसकराकर कहा।

पृथ्वीराज ने पूर्व संवाद फिर से दुहराया—

'काकाजी, मैं आपको भाले की नोक बराबर जमीन भी नहीं दूँगा।"

"बेटा, मैं तुमको पलक-भर भूमि पर भी चैन से राज्य शासन न करने दूँगा, यह स्मरण रखना।"

'काकाजी, प्रणाम।"

"दीर्घायु हो महाराज कुमार! पान लेते जाओ, बेटा। यह पान बहुत स्वादिष्ट है।"

"धन्यवाद, काकाजी।" कहकर पृथ्वीराज ने पान का बीड़ा मुँह मे दबाया और अपने विराट् अश्वराज को ऐड लगाकर हवा मे उड गया।

दूसरे दिवस, प्रभात होते ही दोनो ओर की सेनाएँ धर्मक्षेत्र मे आ डटी। गगन को गुँजायमान करने वाले 'हर-हर महादेव' और 'जय मेवाड' तथा 'हर हर महादेव' और 'जय काठिन' के नारो के साथ भाइयो की तलवारें भाइयो के ही कंठ का रक्तपान करने लगी।

कुछ ही देर मे भीषण रणरंग जमा। वीर बढने लगे, अधीर कटने लगे और कायर मैदान छोडकर भागने लगे। परन्तु उन्हें, उच्च स्वर से पुकार कर, उनके सेनापति चिल्लाने लगे—

"मूढा, पलायध्वमितो न युद्धात्। मूर्खो, युद्ध भूमि से न भागो! जय होने पर जयलक्ष्मी का लाभ होगा और मरने पर अमर लक्ष्मी से मिलन होगा! मत भागो! जीने और मरने का अवसर केवल एक बार आता है!"

दोनो ओर के योद्धा अपनी-अपनी सेना की कीर्ति के लिए, शीश को हथेली पर रखकर, लड रहे थे। सूरजमल और सारंगदेव अपने भीषण भाले की चोटो से शत्रु-दल को निरन्तर पीछे हटा रहे थे। उडने वाला पृथ्वीराज स्वयं आज अपनी तलवार उडा रहा था।

परन्तु पूर्वाकाश में सूर्य बादलो की ओट छिप गया था—अपने वशजो को परस्पर लडते देखकर। उसे खेद था कि वीर का वीर ही वैरी है! राजपूतो की अपराजेय शक्ति राजपूतो के हनन में ही लग रही है! भाई-भाई के ही शोणित की पिपासा लेकर समर-क्षेत्र में उसे खोज रहा है।

रणागण देखकर भ्रम की प्रतीति होती थी—तमाल के विशाल तरुओ से सुशोभित विन्ध्य गिरिराज के मध्य से निकली हुई; गेरुआ

माटी में लाल-लाल जल वाली ये नदियाँ हैं अथवा मदमत्त गजराजों के फटे हुए कुम्भस्थल के मध्य भाग से, अरुण रुधिर की धाराएँ बह रही हैं!

कहीं कहीं दो वीर मल्ल-युद्ध कर रहे हैं—उनके शरीरों पर केसर-कुंकुम का लेपन है। एक-दूसरे की गर्दन एक दूसरे की बगल में दबी हुई है और परस्पर एक-दूसरे की कलाई हाथ से पकड़े हुए हैं!

सूरजमल की देह पर ५० से ऊपर घाव लग चुके थे।

महाराणा रायमल के शरीर पर २२ घावों के चिह्न देखकर पृथ्वीराज के प्रचण्ड प्रकोप की सीमा नहीं थी!

हाथी चिंघाड रहे थे। घोड़े हिनहिना रहे थे। किन्तु कुछ भी सुनाई न दे रहा था, क्योंकि धनुषों के घोर-कठोर टंकारों से धरती और गगन का अन्तराल आपूरित था! कहीं-कहीं अस्त्रशस्त्र टूट जाने या विनष्ट हो जाने पर योद्धा, शत्रु सिर के केश पकड़ कर, एक दूसरे को ऊँचा उठाकर, घूँसे और मुष्टिका से लड रहे थे! इस विचित्र संग्राम को देखकर सभी सराहना कर रहे थे—"धन्य है, वीरो!! वीर योद्धा साधनों की अपेक्षा नहीं रखते! कर्महीन कायर ही कामनापूर्ति की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं!'

वीरों द्वारा अभिनंदित महारावत सूरजमल ने देखा—अनेक वीर वायुधर्वविशेष के उपयोग-समय उस आयुध के अधिपति देवता का स्मरण कर रहे हैं! सूरजमल का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा, उसने पुकार कर, ललकार कहा—

"वीरो, अपनी शक्ति से लड़ो। दैवीशक्ति का आह्वान करने से क्या होगा? जबतक देवता हमारी सहायता के लिए आएँगे, तबतक, हम युद्ध जीत चुके होंगे!"

इतना कहकर महारावत ने अपने आसपास देखा—पृथ्वीराज उड़ा-आ रहा था पलभर में महारावत ने अर्द्धचन्द्राकार बाण से उसका छत्र छिन्न कर दिया!

पृथ्वीराज को पल मात्र के लिए विस्मय हुआ—कौन है, ऐसा परम बली जो महीमहेन्द्र मेवाड़पति के युवराज का छत्र उड़ा दे! उसने इधर देखा, उधर देखा—"काकाजी!" उसके मुँह से विस्मयादिबोधक शब्द निकला। और तत्क्षण कहा—"अपने प्यारे भतीजे का प्रणाम स्वीकार कीजिए", और प्रलय का वक्ष विदीर्ण कर देने वाले अति भीषण बाण छोड़े। सूरजमल बच गया, परन्तु उसका विशाल धवनारण ध्वज ध्वस्त हो गया। ध्वज का विध्वंस देखकर सूरजमल के अपार क्रोध का पार न रहा! उसने अपनी शक्ति समेट कर पृथ्वीराज की छाती पर शस्त्र-प्रहार किया। पृथ्वीराज लड़खड़ाया और बेसुध होकर गिरा-गिरा और तभी भाले का एक वार उसने काकाजी की ओर फेंका!

अब काका सूरजमल की देह के घावों की संख्या चौरासी तक पहुँच गई। परन्तु अटूट साहस की चट्टान पर वह अविचल खड़ा रहा!

पृथ्वीराज को सात घाव लगे। सारंगदेव का शरीर पैंतीस घावों से सुशोभित हुआ।

सूरजमल और सारंगदेव के सहायक उन्हें डोली में डालकर, पहाड़ों की ओर ले गए। पृथ्वीराज ने पीछा किया, परन्तु उधर से जो प्रतिकार और आक्रमण हुआ तो उसे लौटने को बाध्य होना पड़ा। इस समर में सूरजमल के सेनानायक, राजपूत बन्ना देवड़ा के हाथ से पृथ्वीराज का सरदार महिया भाखरोत मारा गया!

इस युद्ध में दो सैनिकों ने अपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया। लेकिन युद्ध-निरत सूरजमल और उसके साथी यह न जान पाए कि उसके ये अनामा सहायक कौन हैं? कैसी और किसकी है वह पुण्य प्रभावत प्रेरणा, जिसके किरण प्रकाश से प्रकाशित इनका मानस इन्हें मरने को प्रोत्साहित कर रहा है?

कोई उन वीर वेशधारी योद्धाओं को, नहीं, वीरांगनाओं को नहीं जानता था? लेकिन वे एक दूसरे को जानती थी।

सूरजमल की डोली पहाड़ों की ओर चली तो बड़ी वीरांगना अपना

धैर्य सहेज कर न रख सकी। उसकी तलवार शत्रु के रक्त की धाराओं और अपनी अश्रुबूंदों—दोनों से धुलने लगी। उसकी यह दशा देखकर छोटी वीरांगना ने कहा—

'दीदी, जीजाजी की पालकी देखकर ही रो पड़ीं क्या ?"

"नहीं कर्मा ! मैंने सोचा मेरी भी डोली उठे और मैं गुनगुनाऊँ—
'धीरे रे, उठाओ मेरी पालकी—

मैं हूँ—सोहागन गोपाल की !'

कर्मवती की आँखें भर आईं—

"जीजी, यदि हम युद्ध में विजयी न हुए तो ? "

"कर्मा, जहाँ आशकाएँ हैं, वहीं वीरों की गति का परीक्षण होता है !

"युद्ध-समाप्ति की भेरी बज रही है। धौंसा शान्त हो गया है। चारणराज चुप हो गए हैं !" कहते-कहते कर्मवती ने दूर-दूर तक धर्म-क्षेत्र पर दृष्टि डाली। सटी-सटी लाशों से सारी ज़मीन पटी-पटी पड़ी थी !

'हाँ कर्मा तलवार म्यान मे ! एक और दिन बीत गया। लगता है—शत-शत वीरों की बलि लेकर भी, माँ का मन तृप्त नही हुआ !"

"कौन शृ गारकुँवर ! रावल सूरजमल की रानी ! सुहाग अमर हो ! तुम्हारी विजय हो बेटी !'

"गुरुदेव ! रूपनारायण के भक्तराज, मैं आपको इस परिवेश मे पहचान न सकी। क्षमा करें !' घोड़े से उतरकर शृ गारकुँवर ने वृद्ध पुजारी की चरणरज ली।

कर्मवती कुछ बोली नही। श्वेत भौंहों मे मंडित उनकी आँखों को ओर देखती रही !

"पता नहीं चला !"—पुजारी ने संकेत में कर्मवती से इतना ही कहा।

शृ गारकुँवर ने कहा—

"चलो, कर्मा घोड़ा बढ़ाओ ! गुरुदेव आज्ञा दीजिए।"

दोनों पुन: प्रणाम कर, अपने अपने अश्वों पर आरूढ हुईं।

"जीजी, किधर ?' कर्मा ने पूछा।

'बूंदी बूंदी ! माताजी चिंतित होंगी !" शृंगार ने अपने विराट् अश्व की वल्गा खींची। वह पहले उछला, फिर दौड़ा, फिर हवा हो गया।

कर्मवती का घोड़ा बराबर साथ दे रहा था।

दिनभर अपने वक्ष की बहती-शोणित धाराओं को देखकर खिन्न, म्लान मन सूर्य पश्चिम दिशा में जाकर, अम्बर से सागर में उतरता हुआ, अपनी दस-दस हजार किरणों का सहारा लेता हुआ भी, गिरता गिरता गिरता अस्त हो गया।